

ATISHAY KALIT

A Referred International Bilingual Research Journal of
Humanities, Social Science & Fine-Arts

LOTUS (July-December) Vol. 2, Pt. B Sr. 4 Year 2013
ISSN 2277-419X
RNI-RAJBIL01578/2011-TC

Chief Editor :

Dr. Rita Pratap (M.A. Ph.D.)

Co-Editor :

Dr. Shashi Goel (M.A. Ph.D.)

Mailing Address :

DR. Rita Pratap

ATISHAY KALIT

C-24, Hari Marg, Malviya Nagar, Jaipur-302017

Phone - 0141-2521549 Mobile : 9314631852

INDIA

Editor Writes

Dear Friends,

I wish you all a very Happy Deepawali and Prosperous New Year-2014.

With this issue “Lotus” (July-Dec. 2013), Atishay Kalit completes its 2nd successful year of publication. An overwhelming response by scholars of all streams has made this issue very important and informative. Articles are also invited for “Rose” issue by 30th March 2014.

Suggestions are also welcome by our readers.

- Dr. Rita Pratap

CONTENTS

1. Editor Writes		2
2. राजस्थान में आधुनिक कला के बढ़ते कदम	डॉ. अभित वर्मा	5-14
3. चित्र एक काव्यमयी रचना है (कोटा भित्ति चित्र)	डॉ. कृष्णा महावर	15-19
4. विज्ञापन कला एवं संगीत	प्रो. किरन सरना कु. पूनम	20-29
5. पर्यटकों को लुभाता बालाजी का मंदिर, सालासर (चूरु)	श्रीमती चन्द्रकला स्वामी	30-33
6. दृश्य चित्रण कला का उत्तरोत्तर विकास	अर्शी खान	34-43
7. राजस्थान की मूर्तियों में सांस्कृतिक समन्वय	तमेघ राम	44-47
8. तबले के घराने व उनकी वादन शैली	अंकित पारीक	48-57
9. विश्व परिदृश्य में हिंसा के संदर्भ में अहिंसा परमोधर्म: की आवश्यकता	भावना शर्मा	58-65
10. राजस्थान में शैव धर्म (750 ए.डी. – 1000 ए.डी.)	ज्योति श्रीवास्तव	66-68
11. भारतीय मूर्तिकला में श्री गणेश	डॉ. बीना जैन	69-78
12. 19 वीं शताब्दी एवं परवर्ती भारतीय जन आंदोलनों में कला की भूमिका	डॉ. ममता रोकना	79-84
13. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में कला सृजन	डॉ. त्रिलोकी नाथ गौतम	85-91
14. झुंझुनू स्थित चिड़ावा के प्रमुख मन्दिरों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक परिदृश्य	डॉ. श्री कृष्ण यादव	92-96
15. सिटी पैलेस – एक अध्ययन	रितिका कुमारी मीना	97-102
16. प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्य में भित्ति चित्रांकन परम्परा : एक दृष्टि	राजेश कुमारी	103-108
17. आमेर क्षेत्र के मंदिरों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक स्वरूप	डॉ. शालिनी गोयल	109-117
18. प्राचीन भारत में बौद्धकालीन शिक्षा एवं आयुर्विज्ञान के प्रमुख केन्द्र	ममता यादव	118-126
19. भारतीय समाज में नारी का स्थान एवं भूमिका वर्तमान परिदृश्य में	अनिता जांगिड़	127-129
20. 'पुतल कला' समसामयिक समय में बदलते उद्देश्य व तकनीक	लोकेश कुमावत	130-133
21. महाभारत में वर्णित पाप और पुण्य	सीमा सैनी	134-137
22. ऐतिहासिक काल की चित्रकला में वाद्य यंत्रों की उपयोगिता	डॉ. नीरू कल्ला	138-142

23. गीता में प्रतिपादित दर्शन योग का विश्व रूप	डॉ. ज्योत्स्ना वशिष्ठ	143-146
24. श्री भूर सिंह शेखावत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	प्रियंका माहेश्वरी	147-149
25. जोगीमारा गुफा चित्रों का कलात्मक स्वरूप	अजय घासिया	150-153
26. पुलिस जनता परस्पर सहयोग	सीमा कुण्डारा डॉ. शिप्रा वर्मा	154-160
27. भारतीय शिक्षा में विरासत का समावेश क्यों नहीं? (एक विवेचनात्मक अध्ययन)	अमिता सिंह	161-165
28. तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' की कथावस्तु का काण्ड-अनुसार विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ. ज्योति शर्मा	166-174
29. भारतीय व्यंग्य चित्रकार : सुधीर तैलंग	डॉ. वीना बंसल	175-178
30. राजा रवि वर्मा के चित्रों में नारी रूप : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. इतिका चौहान	179-182
31. राजस्थानी कला में कुमावत समाज के प्रमुख कलाकार : एक परिचयात्मक विवेचन	आशा चौधरी	183-186
32. भारत में परम्परागत लघु शैली चित्र : अर्थ, परिभाषा, उद्भव एवं विकास	रमेश चन्द मीणा	187-193
33. मीणा जनजाति की महिलाओं की रचनात्मकता के विविध आयाम : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. निधि मीना	194-200
34. कलाविद् डॉ. आर. सी. भावसार की कलाकृतियों में पोर्ट्रेट	डॉ. आलोक भावसार	201-205
35. भारतीय संघ में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं	कीर्ति सुधा मुद्गल	206-212
36. राजस्थान में पत्रकारिता का उद्भव और विकास	सत्य नारायण	213-221
37. संत दादूदयाल के साहित्य में दार्शनिक तत्त्व	डॉ. स्मृति सिंह	222-225
38. Environment of Finance Business Organizations and Public Sector	Dr. Chitra Rathore	226-238
39. The Mc Carthy Years: A Reflection of the Dark Period of American Democracy in The Deer Park	Dr. Arun Soule	239-246
40. Gender Discrimination: From Womb to tomb	Dr. Shashi goel	247-255
41. Vagad Circuit - A Tourist Paradise (Banswara and Dungarpur)	Dr. Rita Pratap	256-261
42. India - South Africa Economic Relations in Post-Apartheid Era	Rajveer Yadav	262-272
43. "Rajiv Gandhi Grameen Vidyutikaran : A Policy Study"	Kamal Singh	273-277
44. Idea and Image of Lotus	Dr. Ritu Johri	278-286
45. Doll Museum- A unique collection	Mahendra Singh Surela	287-289
46. Claims Settlement in Life Insurance	Khushbu Kumawat	290-296
47. Corporate Planning and Environment Analysis	Dr. Shobha Chaturvedi	297-304

डॉ. अमित वर्मा

विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग
स्टेनी मेमोरियल पी.जी. कॉलेज,
जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

राजस्थान में आधुनिक कला के बढ़ते कदम

चित्रकला का प्रचलन मानव समाज में आदिकाल से है। गुफाओं में निवास करने वाला आदिमानव भी अपने मनोभावों को भित्ति चित्रण के माध्यम से अभिव्यक्त करता था। विश्व की प्रत्येक जागरूक सभ्य जाति ने चित्रकला के विकास में योगदान दिया। जैसे भारत में भारतीय कला सेवियों ने अपनी कला में आधिदैविक शक्तियों की अवधारणा की।

आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सामन्जस्य से उत्पन्न कला का पवित्र रूप यदि कहीं अपनी समृद्ध स्थिति में मिलता है तो वह भारत में मिलता है। कला चाहे प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन वह समाज में प्रचलित होती है। वहीं उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है तथा उससे समाज की ही घटनाओं, परिस्थितियों तथा चरित्रों का दिग्दर्शन होता है। कला में सामूहिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन करना वस्तुतः कलाकार की मजबूरी भी है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अचानक अपने युग से उठकर पिछली सदी में नहीं जा सकता। उसमें अनुभव तथा अभिव्यक्ति का यही तकाजा है कि वह अपने समकालीन समाज की तरफ देखें तथा उसी काल में रहकर सृजन करें। यह सृजन यथार्थ स्थितियों का भी हो सकता है तथा कल्पनाजन्य भी।

आधुनिक कला का इतिहास मुख्य रूप से आधुनिक कलाकारों के कला संबंधी दृष्टिकोणों में हुए परिवर्तनों का इतिहास है। जीवन के दार्शनिक मूल्यों में परिवर्तन होते ही उसका जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था व कलाक्षेत्र इसमें अपवाद नहीं हो सकता था। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में परम्परागत सामाजिक व धार्मिक निष्ठाएं टूट रही थीं, व आधुनिक दर्शन की स्वीकृतियों में मानव का स्वतंत्र स्वयंपूर्ण व बहुरंगी व्यक्तित्व, उसकी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा एवं ऐंद्रिय अनुभूतियों के पीछे छिपे हुए रहस्य की खोज ये तत्व बाह्य उद्देश्यों के बन्धनों से मुक्त होकर कार्यान्वित हो रहे थे। कलाकार का व्यक्तित्व स्वतंत्र होते ही सृजन क्षेत्र में कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति व विशुद्ध सौन्दर्य की खोज के बीच द्वन्द्व शुरू हुआ, ऐसी द्वन्द्वात्मक अवस्था में आधुनिक कला गतिमान हो गयी।

आधुनिक कला का अध्ययन करते समय 'आधुनिक' शब्द को केवल काल-निर्देशन मानना भ्रममूल होगा। वस्तुनिरपेक्ष सौन्दर्य, आत्मिक अनुभूति, अतियथार्थ कल्पना आदि कलांतर्गत

तत्त्वों का स्पष्ट व विशुद्ध रूप आधुनिक कला की जिन कलाशैलियों में दृष्टिगोचर हो गया है उन सभी कलाशैलियों को आधुनिक कला में सम्मिलित करते हैं।¹

आज के कला परिदृश्य में मोटे रूप से भारत में ही नहीं, विश्व में भी दो तरह की प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं। एक तो वे कलाकार हैं जो इस तरह की कलाकृति रचने में लगे हैं जिनमें बाजार, रेल्वे स्टेशन, नदी, पुल, लोगों से भरे पार्क, शोषित पीड़ित मजदूर, गरीबी, बदहाल जिंदगी से लथपथ मानव आकृतियां वस्तुपरख चित्र इत्यादि शामिल हैं। दूसरी ओर उपरोक्त ब्यौरों से परे जाने वाले चित्र दिखाई देते हैं जिनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक वस्तुओं का संकेत नहीं होता यानि की भौतिक तत्वों से रहित वस्तु निरपेक्ष चित्र दिखाई देते हैं जो सहज ज्ञान या अन्तर्मन की क्रिया एवं सहयोग से जनित एवं जिसमें विद्यमान क्षण में उपलब्ध ऐंद्रिय अनुभूति से प्रेरित और अत्यधिक संवेदनशीलता के साथ किया जाने वाला चित्रण है। कलाकार वस्तु सादृश्य के बाह्य लक्षणों से मुक्त होकर अपने सौन्दर्याभिव्यक्ति के स्वाभाविक सामर्थ्य को प्राप्त करने की चेष्टा में रत रहते हैं। ये वस्तु निरपेक्ष गुणों यानी रंग, रेखा, सतह आदि मूल तत्वों के निजी विचार को ध्यान में रखकर कार्य कर रहे हैं। इनका मानना है कि वस्तु के बाह्य रूप से सुख प्राप्त होता है तो आन्तरिक चैतन्य से जीवन।²

आधुनिक भारतीय चित्रकला की पूर्वपीठिका के रूप में यह उल्लेखनीय है कि 20वीं सदी पूर्वार्द्ध से ही देशी रियासतों में चित्रकारों ने रूढ़िवादिता से जकड़ी परम्परागत शैलियों से हटकर नवीन विधाओं एवं पद्धतियों में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। राजस्थान में इस युग से जिस नवीन चेतना का उदय हुआ जिसके परिणामस्वरूप चित्रकला की मौलिक अभिव्यक्ति में नये आयाम प्रस्फुटित हुए। यह सृजनशीलता ही शताब्दियों से निर्मित परम्परागत चित्रकला एवं आधुनिक भारतीय चित्रकला के बीच की ऐसी कड़ी है जिसका कला के इतिहास में भी अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। राजस्थान में सृजित प्रारम्भिक कलाकृतियों से स्पष्ट है कि 20वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में यहां के कुछ चित्रकारों द्वारा जो पूर्व प्रचलित परम्पराओं से हटकर कला कर्म सम्पन्न किये गये, वे देश के अन्य क्षेत्रों में होने वाले बहुविज्ञापित आधुनिक चित्रकला के कार्यों से किसी कदर कम महत्व के नहीं थे। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में नवकला तत्वों तथा लक्षणों का बीजांकुर उत्तरोत्तर विकसित हुआ।

19वीं सदी के अंतिम दशाब्दियों में राजपूताना के एक भाग में कला शिक्षा का संस्थान विकसित हो रहा था तो दूसरी ओर कुछ स्वतंत्र कलाकार स्वतंत्र रूप से स्वयं अपने कला व्यक्तित्व का विकास कर कला के क्षेत्रों में नवीन सोपानों को लांघते हुए आधुनिकता की ओर अग्रसर हो रहे थे। चित्रकार **'घासीराम'** (1870-1930ई.) नाथद्वारा के विशेष प्रतिभासम्पन्न चित्रकार थे जिन्होंने तत्कालीन कला के सभी मानदण्ड परिवर्तित कर चित्रकारों को नवीन प्रेरणा प्रदान की। आपने चित्रकार **'कुन्दनलाल मिस्त्री'** से कला का विशेष आदान-प्रदान किया तथा नाथद्वारा में तत्कालीन आधुनिक कला का एक वातावरण बनाया। चित्रकार **औंकार लाल**

(1877–1929ई.) घासीराम जी के पश्चात् झालावाड़ के चित्रकार नियुक्त किये गये। तत्कालीन विदेशी अधिकारियों ने भी उनकी कलाकृतियों में भारतीय पक्ष को सराहा। इनके चित्रों में 'शीत की प्रातः' तथा 'समाधि स्थल के समीप सैनिक' ये चित्र भारतीय पुनर्जागरण बंगाल के वाश चित्रण की पूर्व शृंखला के प्रतिनिधि चित्र है।³

मेवाड़ की लघुचित्रण पद्धति के विस्तार में राज्य चित्रकार '**पन्नालाल गौड़**' (1880–1950 ई) उदयपुर राजप्रासादों में 'चित्तेरों की ओवरी' के मुखिया नियुक्त हुए। आपने राजप्रासाद उदयपुर में सुरक्षित बापा रावल की हरित ऋषि का आशीर्वाद 30 22 (1925 ई.) कृति तथा 'हीरों की आंगी' (1942 ई.) नामक एकलिंग जी के चित्र एवं प्रताप संग्रहालय उदयपुर में संरक्षित 'परिक्रमा' में 22 महाराणाओं के व्यक्ति चित्र एवं शिकार के चित्रों से विशेष ख्याति अर्जित की। तेल चित्रण की यथार्थवादी नवकला पद्धति इस समय बीकानेर तथा जयपुर रियासतों में, केरल के कोयम्बटूर कस्बे से आये चित्रकार **ए. हरमन मूलर** (1878–1969 ई.) के तेल चित्रों में परिलक्षित हुई। चित्रकार मूलर की प्रारम्भिक कला शिक्षा ग्रीक चित्रों के अभ्यास से हुई। ऐतिहासिक कारणों से राजस्थान में परम्परागत कला शैलियों का असर इतना प्रच्छन्न था कि पांचवें दशक के अन्तिम बरसों में जा कर कहीं 'प्रयोगवाद' के नाम पर कला में आधुनिक या नई संवेदनाओं ने जगह बनाई। परम्परा का नये संदर्भों और मायनों में रूपान्तरण, राजस्थान की वर्तमान कला-प्रवृत्तियों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। प्राचीन परम्पराओं को नवीन स्वरूप प्रदान कर कला की मुख्य धारा में सम्मिलित होने का प्रयास आरम्भ हो गया। राज्य के कलाकार देश-विदेश की महत्वपूर्ण कला संस्थाओं जैसे 'स्लेड स्कूल' (लंदन), शान्ति निकेतन, सर जे.जे. स्कूल आदि में प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे जिसका प्रभाव उनकी कलाकृतियों के माध्यम से राजस्थान के कलाकारों पर पड़ा।⁴

राजस्थान में कला में नई संवेदना का दाखिला सन् 1960 के बाद ही कहना चाहिए। परम्परा के बहुत गहरे और अक्षुण्ण असर के कारण राज्य में 'नएपन' को ग्रहण करने का आवेग या परम्परा को पूरी तरह अस्वीकृत करने का 'साहस' अपेक्षाकृत देर से जागा, तो वह सकारण था और इसमें कुछ आश्चर्यपूर्ण नहीं! यही वह दौर था जब एक तरफ तो परम्परावादी चित्तेरे अपने कला-आग्रहों या व्यावसायिक तकाजों से परम्परा की लीक को मिटने से बचाने के लिए काम कर रहे थे, तो दूसरी ओर 'अन्तराष्ट्रीयतावाद' के परिणाम स्वरूप कला में नई संवेदना प्रवेश कर रही थी। बंगाल घराने की कला ने भी राजस्थान के अपेक्षाकृत वरिष्ठ चित्रकारों पर गहरा असर डाला, पर यह प्रभाव प्रकारांतर से परम्परागत मूल्यों का ही पोषक रहा। सन् 1960 से कही पहले यहां **रामगोपाल विजयवर्गीय** (1905), **बी.सी. गुई** (1910), **एल.आर. पोद्दार** (1910–1994), **मोनी सान्याल** (1912–1989), **भूरसिंह शेखावत** (1914–1966), **देवकीनंदन शर्मा** (1919), **कृपाल सिंह शेखावत** (1922), और **पी.एन. चौयल** (1924) जैसे चित्रकार थे जो परम्परा की राह से ही दाखिल हुए थे। किन्तु इस सब में अपवाद रहे — **आर.वी.**

साखलकर (1918) जिन्होंने कला संबंधी आलोचनात्मक लेखन और 'आधुनिक चित्रकला' दोनों में उल्लेखनीय कार्य किया। रत्नाकर विनायक साखलकर के चित्रों में हम जलरंगों के कुछ बेहतरीन संयोजन देखते हैं। इन चित्रों में उन्होंने अर्द्ध-अमूर्त आकृतियों का चित्रांकन किया। रंगों के आकर्षक प्रयोग, विशेष रूप से गहरे रंगों में, यहां आकृतियों को बाहरी गतिमान रेखाओं के माध्यम से उभारा गया है। उनके कुछ प्रसिद्ध चित्रों में चरागाह, प्रातः किरणें, आवारा और वापसी जैसे बहुत से चित्र शामिल हैं। 1989 में राज्य अकादमी ने इन्हें 'कलाविद्' की सर्वोच्च उपाधि से भी सम्मानित किया। अपनी रचनात्मकता से विषय में आपने कहा है, "मुझ से अपना चित्र तब तक पूरा नहीं होता, जब तक उसमें अपने जीवन का कोई अनुभव प्रतिबिम्ब न हो। अतः मेरे काल्पनिक से काल्पनिक व अमूर्त चित्र भी मेरे जीवन से संबंध रखते हैं।"⁵

इसी दौर के दूसरे चित्रकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है **ज्योतिस्वरूप**। नएपन की अविकल खोज और माध्यम के प्रति प्रयोगशीलता के अनुराग ने ज्योतिस्वरूप (1939) को एक ऐसे चित्रकार के रूप में अपनी पहचान बनाने में मदद की, जिसका मुहावरा अपने अन्य समकालीन चित्रकारों के मुकाबले अग्रगामी था। उन्होंने एक ऐसे काल-खण्ड में मनोविज्ञान तंत्र और नई वस्तुओं को लेकर चित्रों की रचना की जबकि अमूर्त रचने और सोचने वाले चित्रकार बहुत कम थे। 1961 में दिल्ली की "आइफैक्स दीर्घा" में इन्होंने अपने चित्रों की पहली एकल प्रदर्शनी भी की। सर्वप्रथम ज्योतिस्वरूप के चित्रों में अनौपचारिक रूपाकारों का प्रयोग हुआ है। इसमें आरम्भ में टेक्सचर के अत्यधिक तथा अप्रासंगिक प्रयोग ने स्वरूप के उठान में बाधा उत्पन्न की थी। पर उनकी बाद की कृतियों में काफी परिवर्तन आया है। उनमें अधिक संतुलन व स्पष्टता है। इनमें स्प्रे के झिलमिल प्रयोग से धरातलीय आकर्षण बढ़ गया है तथा अमूर्त बिम्ब उभरने लगे हैं। कहीं उनके किनारे तीखे हो स्पष्टता ग्रहण करने लगे हैं।⁶

आधुनिक चित्रकला के विकास में और बातों के साथ-साथ जिसका योगदान उल्लेखनीय रहा, वह थी 1958 में "**राजस्थान ललित कला अकादमी**" की स्थापना, जिसकी वार्षिक प्रदर्शनियों के माध्यम से बहुत से चित्रकारों और मूर्तिकारों को रचनाएं करने और उन्हें प्रदर्शित करने का अवसर मिला। 1958 में ही अकादमी के तत्वाधान में ही 'आधुनिक शैली के चित्रों और मूर्तिशिल्पों की एक समूह प्रदर्शनी आयोजित की गई, जिसमें 168 कृतियां शामिल थी। मार्च 1958 में ही 181 चित्रों तथा 42 मूर्तिशिल्पों की वार्षिकी भी जयपुर में आयोजित की गई। जिसमें अपेक्षाकृत वरिष्ठ और परम्परागत शैली में काम करने वाले चित्रकारों के अलावा रणजीतसिंह, नारायण आचार्य जैसे चित्रकार और एयाज़ मोहम्मद जैसे मूर्तिकार भी थे। तिलकराज, सरला, राजेन्द्र मेहता, रमेश गर्ग आदि भी उसी दौरान सामने आए। यह देखना रोचक होगा कि इन्हीं वर्षों के आसपास अपेक्षाकृत छोटे शहरों में भी युवा कलाकारों में कुछ 'नया' करने का अनुराग जागने लगा, जहां कुछ बरसों पहले तक कला की दुनिया ठहरी और रूढ़ नजर आती थी। उदयपुर के पी.एन. चोयल ने लंदन प्रवास के दौरान, ओमदत्त उपाध्याय और आबू के 'पी.

मनसाराम' ने बम्बई के अपने छात्र जीवन में, अजमेर के आर.बी. साखलकर ने, बीकानेर में द्वारका प्रसाद शर्मा, नारायण आचार्य, प्रेमचन्द गोस्वामी, आर.बी. गौतम और रंजन गौतम आदि ने कई संवेदना का काम रचने में पहल की। यद्यपि उस दौर में इनमें से बहुतों की रचनाओं पर समकालीन भारतीय और विदेशी चित्रकारों के 'प्रख्यात' काम और शैलियों का असर था, पर इसकी आड़ में उनकी महत्वपूर्ण पहल को नकारा जाना उनके साथ 'ज्यादती' ही होगी।

सन् 1960 ई. से 2000 के चार दशकों में राजस्थान की आधुनिक कला के लिए दो कारणों से बहुत महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। एक तो यह कि इस अन्तराल में बहुतेरे उल्लेखनीय चित्रकारों का काम सामने आया और दूसरे यह कि यहां के कुछ चित्रकारों ने राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाने के लिए निहायत मौलिक अपनी निजी चित्र भाषा भी ईजाद की। इन्हीं वर्षों के दौरान विश्वविद्यालय स्तर पर कला के अध्ययन-अध्यापन की भी शुरुआत हुई। आज राजस्थान में छोटे-बड़े शायद तीन सौ से भी ज्यादा चित्रकार हों। स्थान की सीमा के कारण अधिकांश के काम पर टिप्पणी पाना यहां संभव नहीं, किन्तु सरसरे तौर पर ऐसे कलाकारों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनकी रचनाओं में अपनी निजता है।

परम्परा का नये संदर्भों और मायनों में रूपान्तरण, यहां की वर्तमान कला-प्रवृत्तियों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। इसी खूबी को **शैल चोयल** (1945) के चित्रों में भी देखा जा सकता है। उनके चित्रों में वर्ण विन्यास अनूठा है तथा उद्भूत गतिमय परम्पराएं तथा आधुनिकता का आस्वादन भी उपलब्ध है।⁷ बहुत रुढ़ वर्गीकरण करना चाहें तो उनकी कृतियों में हमें 'मेवाड़ शैली' के सृजनात्मक रूपान्तरण देखने को मिल जाते हैं। वह परम्परागत कलम के भवन-शिल्पों, वनस्पतियों और उनकी आन्तरिकता को (और जरूरत पड़ने पर तो पात्रों को भी) अपने यहां उतार लेना चाहते रहे हैं। इनके काम में जो आकर्षण रंग-योजना और संयोजन क्षमता है उसका सबब यह है कि शैल ने परम्परा को एक सीढ़ी की तरह इस्तेमाल किया है। चाहे वह (सुमहेन्द्र की तरह) परम्परागत तरह के चित्रांकन में निरत कलाकार न भी हों, शैल चोयल लघु चित्रों की सी कमनीयता, ऐंद्रिय आकर्षक और विषयबद्धता के आधार पर हमें अधिकतर अपने व्यावसायिक तकाजों तक ले जाते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनके चित्रों की अनिवार्य शर्त है – दृश्यात्मकता चाहे नायक-नायिका के अभिसार-क्षण हों, या शयन-कक्ष की अन्तरंगताएं शैल अपने चित्रों में अक्सर एक प्रशस्त एकांत की सर्जना करने वाले कलाकार के रूप में सामने आते हैं। शैल ने मिक्स मीडिया में काम किया है। नये प्रयोगों के साथ ताजगी देते उनके चित्र, उड़ने का अवसर देते, कुछ सोचने का समय देते हैं, निर्धारित केनवास की सीमा तोड़ने का उन्होंने साहस जुटाया है जो निःसंदेह कला के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग है।⁸

लगभग इसी विषयवस्तु के आसपास **प्रभा शाह** के तैल चित्र प्रेक्षक के लिए लाते हैं—गरिमामय गुम्बजों, छतरियों और नफीस राजमहलों के बिम्ब। ज्यामिति का सघन कल्पनापूर्ण उपयोग प्रभा शाह में खूब है। एक या दो रंगों की रंगतों का अधिकाधिक प्रयोग करते हुए वह

रचती है – राजस्थान, जो अपने शिल्प, टेढपन और स्थापत्य के लिहाज से अप्रतीम है। उदयपुर उनके चित्रों में कहीं न कहीं जरूर छिपा रहता है। प्रभा शाह के रंगतों में खोए प्रासाद और भवन, प्रशांत और स्तब्ध है। कहने को तो **किरण मुर्डिया** के चित्रों में भी मेवाड़ी पर्वतमालाओं, रास्तों, पेड़ों और महलों की मौजूदगी है, पर किरण की संवेदना उतनी सरल और रचनापूर्ण नहीं। चित्रों में किरण मुर्डिया बहुत कुछ अनौपचारिक और देशज हैं। पर्वत खण्डों और उन पर बसे हुए ढावल भवनों, गुथावपूर्ण पेड़-पौधों और दृश्यावली के चित्रण में वह अन्यों से सघन व भिन्न है। उदयपुर ने एक चित्रोपम शहर के बतौर बहुतेरे चित्रकारों को चित्र रचना की प्रेरणा दी है। किरण भी प्रभा शाह, शैल चोयल और चरण शर्मा की तरह ही अपने पैतृक शहर, उदयपुर के भवन-भूगोल से प्रभावित है, पर उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से हर चित्रकार का नजरिया एक-दूसरे से भिन्न है। सांकेतिक तौर पर चरण शर्मा के प्रारम्भिक रेखांकनों और तैल चित्रों में भी नाथद्वारा कस्बे का तमाम परिवेश उपस्थित था। उनके काम में मेवाड़ी बावड़ियों, कुण्डों और ठसाठस बसे मकानात देख सकते हैं। ठीक वैसे ही जैसे 'भवानीशंकर' के चित्रों में राजस्थानी मेले-ठेले या वनस्थली के मोर।

शैल चोयल में जितनी व्यवसाय सुलभ सजावट है, उसके विपरीत इनके चित्रकार पिता पी. एन. चोयल की 1970 और उसके बाद की रचनाओं में आकारों को रंगमय तरलता के सहारे धूमिल करने का उपक्रम। चोयल ने चित्रों के माध्यम से सामाजिक उत्पीड़न के मध्य जीवन संघर्ष के साक्ष्य उपस्थित किए हैं।^१ यहां की समकालीन कला-प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए ऐसे चित्रकार की चर्चा शायद अप्रासंगिक न हो प्रभाववादी सैरों और प्राकृतिक दृश्य-चित्रों के सृजक है। **राम जैसवाल, ओ.पी. अग्रवाल, स्व. सुरेश राजोरिया, राजीव गर्ग और प्रदीप वर्मा** आदि ऐसे ही कुछ कलाकार हैं जिनके यहां दृश्यात्मक बिम्बों की उपलब्धता है। वाश तकनीक में **मोनी सान्याल, राम जैसवाल, ओ.पी.** और **राजोरिया** प्रकृति के अलग-अलग मूड्स और संवेदनशीलता को प्रभाववादी ढंग से पकड़ते रहे हैं। **स्व. सुरेश राजोरिया** रेखांकनों और जलरंगों में वृक्षों, बादलों, चट्टानों, घास और बरसात के सरलीकृत बिम्ब पैदा करते हैं। उनकी कृतियों में कहीं भूरे पहाड़ हैं, तो कहीं हरे-भरे खेत, बहते हुए झरने, गहरे जंगल और धूप के पीले धब्बे। झौपड़ियों, कार्यशील ग्राम्याओं कस्बे की कम चहल-पहल वाली गलियों और मार्च में पत्ते झराकर उदास खड़े पेड़ों से राजोरिया ने अपनी ग्राम्य-ग्रन्थ के सहारे कागज पर उतारने की कोशिश की।

अजमेर के कथाकार-चित्रकार **राम जैसवाल** के जलरंग चित्रों में (बंगाल शैली के प्रभाव के साथ) प्रकृति के भिन्न-भिन्न स्वरूप आकार ग्रहण करते हैं। **मोनी सान्याल** भी वरिष्ठ पीढ़ी के ऐसे असाधारण चित्रकार हुए हैं, जिनकी रचनाओं में धरती, वृक्षावलियां, ऋतुओं के मिजाज और कार्यरत स्त्रियों का कमनीय किन्तु अत्यन्त मनोहर चित्रण मिलता है। **द्वारका प्रसाद शर्मा** परम्परागत चित्रकला के दरवाजे से कला में आए हैं। उनके रेखांकनों और तैलचित्रों में यर्थाथवादी कला की खूबियों का सजीव प्रतिफल है। द्वारका प्रसाद के युद्ध विषयक चित्र,

गाड़िया-लुहारों के रेखांकन और उंटों का अध्ययन, विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें वे चित्रांकन की रूढ़ शैलीबद्धता से विलग हुए जान पड़ते हैं; उनकी निजी विशेषता उनके द्वारा चित्रित 'व्यक्ति चित्रों' में पाई गई हैं।¹⁰

विद्यासागर उपाध्याय (1949) राजस्थान के सब से नियमित और सुपरिचित आधुनिक चित्रकारों में से है जिन्होंने पेंसिल, तैलरंग, एक्रिलिक और जलरंगों के अलावा ग्राफिक माध्यम में चित्रित करते हुए उन्मुक्त प्राकृतिक रूपों का नवीकरण करते आ रहे हैं। ज्योतिस्वरूप की रचनाएं अपने स्वभाव के अलबेलेपन के लिए जानी जाती हैं। रचनात्मक ताकत और असाधारण मौलिकता की वजह से वह समकालीन चित्रकारों की भीड़ में अलग दिख पड़ते हैं। मानव मन के अंदरूनी जंगल से अपनी बात शुरू करते हुए ज्योतिस्वरूप सैरमिक की सीढ़ियां पार कर आज तैलचित्रों की उस दहलीज पर खड़े हैं जहां रोशनी की मायावी संवेदना है, अंधेरे का आत्मालाप, सतह की गहराई और उसकी तमाम अनुभूतियां।

स्व. मोहन शर्मा प्रकृति के दृश्य चित्रों (मरुस्थल, रेगिस्तान और समुद्र) का सरलीकरण करते हुए एक ज्यामितीय अमूर्तन रचते थे। अलग जीवन भी उनका एक प्रिय विषय रहा। स्व. मोहन शर्मा के चित्र प्रकृति व काल्पनिक रूपाकारों से बने हैं, जो आयताकार, गोलाकार, त्रिकोणात्मक व अन्य ज्यामितीय आकारों के इन्द्रधनुषी रंगों द्वारा बिम्बों के आकर्षक संसार में ले जाते हैं।¹¹ कैनवास की सतह के टैक्सचर का यदा-कदा उपयोग करते हुए उत्कृष्ट स्पेस रचना कौशल का नमूना मोहन शर्मा के तैलचित्र हैं, जिन्हें व्यापक ख्याति मिली। वे रंगों और उनकी रंगतों के प्रति आग्रहशील थे।

प्रेमचन्द गोस्वामी के चित्रों में रंगों से भरा अमूर्तन है। रंगों का निकट मिलन, उसके कारण पैदा होने वाली गति और संपूर्ण कैनवास पर अमूर्तन की हलचलें इनके काम की विशेषता हैं। मूल रंगों का प्रयोग और फलक पर उपजाई गई गहरी बोल्डनेस इनकी कला में देखी जा सकती है। 'रंग-शयन' इनकी एक सुप्रसिद्ध चित्र-शृंखला है।

शब्बीर हसन काजी, जिन्होंने अपनी कला का प्रारम्भ ज्यामिति से किया था, अब विशुद्ध अमूर्त रूपाकारों को बड़े आकार के कैनवासों पर प्रकट कर रहे हैं। हरा रंग इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में एक गहरी धार्मिक भावना के तौर पर रहा करता था, किन्तु बाद की रचनाओं में वह काले रंग की अमूर्त चेतना और रहस्य के निकट जा रहे हैं। 'सूफीवाद' की भावना पर आधारित इनके चित्रों में कैलीग्राफी का उपयोग चित्र रचना की विलक्षणता के लिए किया गया है। वह अपने कुछ एक चित्रों में अध्यात्म और इस्लाम दर्शन के नजदीक जा रहे चित्रकार के रूप में दिखलाई पड़ते हैं।

राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स, 'फेस', जयपुर

तुलिका कलाकार परिषद्, रंग बोध, कोटा, (1958)

टखमण – 28, उदयपुर, (1968)

प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप, जयपुर, (1970)

मयूर – 6, वनस्थली, (1980)

कलावृत्त, जयपुर

धोरा, जोधपुर

'आज', 'कैनवास', अजमेर

'आदर्शलोक' (बीकानेर) जैसी बहुत सी संस्थाएं आज राजस्थान में सक्रिय हैं। कोटा में 'वीनू कुमार' द्वारा संयोजित **'आर्ट अवेयरनेस'** का योगदान उल्लेखनीय है।

प्रमुखतम कला संगठन सक्रिय रहे, जिन्होंने अपने सदस्य चित्रकारों के माध्यम से समसामयिक कला-चेतना को विकसित करने में उपयोग भूमिका अदा की।

“आदर्शलोक” तो सिर्फ बच्चों की कला प्रदर्शनियों और तटस्थलीय बाल चित्र प्रतियोगिताओं का आयोजन करने की दिशा में अपने तरह की पहली और एकमात्र कला संहति रही है। इन कला इकाईयों की वार्षिकी प्रदर्शनियों और कलाकार शिविरों के आयोजनों ने कला परिवेश को सक्रिय बनाया है।

राजस्थान की परम्परागत चित्रकला आज भी चित्रकारों के रचना की प्रेरणा बनी हुई है। नाथूलाल वर्मा, कन्हैयालाल वर्मा, फूलचन्द वर्मा, कैलाश शर्मा, शहजाद अली शीरानी, घनश्याम शर्मा, बी.पी. शर्मा, तेजसिंह, वीरेन्द्र शर्मा, रमेश ग्रामीण, ललित शर्मा, चन्दूलाल चौहान, लालचंद मारोठिया, रमेश वर्मा और हेमन्त चित्रकार (उदयपुर) कुछ ऐसे चित्रकार हैं जिन्होंने पारम्परिक चित्रांकन को अपनाते हुए भी कुछ परिवर्तित ढंग से रचनाएं बनाई हैं। इनकी कृतियों में निजी संयोजन, शैलीकरण एवं रंगतों का प्रयोग और नवीनता का मार्ग है।¹²

आधुनिक कला और कलाकारों की चर्चा करते हुए यहां प्रसंगवश कला-आलोचना की स्थिति के बारे में टिप्पणी करना भी उपयुक्त है, यह सही है कि राजस्थान में चित्रकारों की संख्या तो अच्छी खासी है पर कला-समालोचना के क्षेत्र में उतना उत्साहवर्धक काम नहीं हुआ।

प्रो. आर.वी. साखलकर ने यहां प्रारम्भ में आधुनिक चित्रकला पर आलोचनात्मक लेखन की पहल की थी। कुछ चित्रकार कला समीक्षा की स्थिति से 'असंतुष्ट' होकर इस क्षेत्र में उतरे। ऐसे लोगों में प्रकाश परिमल, प्रेमचन्द गोस्वामी जैसे लेखकों के नाम शामिल हैं। अखिल भारतीय स्तर पर भी कला समालोचना, खास तौर पर हिन्दी में कला पर लेखन, अपेक्षाकृत देर से शुरू हुआ, पर 'दिनमान', 'ललित कला कन्टैम्पेरी', 'समकालीन कला', 'कला वार्ता', 'धर्मयुग', 'मार्ग', 'वृश्चिक' जैसी पत्र पत्रिकाओं की उपस्थिति से कला पर राजस्थान में आलोचनात्मक लेखन की प्रक्रिया को बल मिला। राजस्थान ललित कला अकादमी की पत्रिका 'आकृति' विगत 28

वर्षों से भी ज्यादा समय से प्रकाशित हो रही है। लेकिन सच्चाई यह भी है कि आज भी राज्य में केवल ललित कलाओं पर केन्द्रित कोई पत्र या पत्रिका है ही नहीं। यहां कला से संबंधित पुस्तक प्रकाश की हाल भी बहुत चिन्ताजनक है। 'कला प्रयोजन' त्रैमासिक ने इस कमी को बड़ी हद तक पूरा किया है। किन्तु ऐसे निस्पन्द प्रकाशन परिवेश में जिस सम्पादन की ऐतिहासिक भूमिका कही जा सकती है, वह थे – स्वर्गीय श्री गोपाल पुरोहित। वे राजस्थान की कलाओं और सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रचारक और पोषक थे। राज्य के प्रसिद्ध दैनिक समाचार पत्र 'राजस्थान पत्रिका' और बाद में 'इतवारी पत्रिका' (साप्ताहिक) में प्रकाशित होने वाली संस्कृति संबंधी सामग्री के नियमित प्रकाशन का श्रेय स्व. श्री गोपाल पुरोहित को ही है। राजस्थान में प्रकाशित होने वाली कला संबंधी सामग्री यदा-कदा 'कलावृत्त' (सम्पादक: सुमहेन्द्र), 'नवभारत टाइम्स' (दैनिक) और 'नवज्योति हैरल्ड' आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होती रही है।

प्रकाश परिमल, प्रेमचन्द गोस्वामी, आर.बी. गौतम, हर्षवर्धन, सुमहेन्द्र, रामकुमार और अशोक आत्रेय भी चित्रकला के विभिन्न पक्षों पर लिखने वालों में रहे हैं। परम्परागत चित्रांकन के विषय में कुंवर संग्राम सिंह, रीता प्रताप, रविन्द्र पंड्या, आर.के. वशिष्ठ, स्व. जय सिंह नीरज, स्व. अशोक कुमार दास आदि पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं, परन्तु आधुनिक कला के विभिन्न शास्त्रीय पक्षों पर सटीक गंभीर सामग्री तैयार करने वालों में कवि-आलोचक "प्रकाश परिमल" का नाम सबसे प्रमुख समीक्षकों में लिया जा सकता है।

राजस्थान का समसामयिक कला आन्दोलन पारम्परिक की भांति एक निश्चित दिशा के समान न होकर वैविध्यपूर्ण है जहां कलाकार सृजन के लिए संघर्ष करता हुआ अपने आपको स्थापित कर राष्ट्रीय स्तर पर राजस्थान की कला को परिचित करा रहा है। राज्य का नव कला आन्दोलन स्थापित हो चुका है एवं आने वाली सदी में राज्य की विविध कला अकादमी के प्रयासों से यह परम्परा और भी महत्वपूर्ण स्थान बना लेंगी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. र.वि. साखलकर, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, (रा.हि.ग्र.अ.) जयपुर, 1985, पृष्ठ संख्या-02
2. यूसूफ, समकालीन कला की प्रवृत्तियाँ, समकालीन कला, ललित कला अकादमी, अंक 17, नई दिल्ली, मई 1996, पृष्ठ संख्या-30
3. आर.के. वशिष्ठ, बीसवीं सदी पूर्वार्द्ध की चित्रकला एवं चित्रकार, आकृति, राजस्थान ललित कला अकादमी, (विशेषांक) 2000-2001, पृष्ठ संख्या-33
4. विद्यासागर उपाध्याय, 'राजस्थान की समसामयिक चित्रकला' सुजस सांस्कृतिकी, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय, राजस्थान सचिवालय परिसर, जयपुर, (विशेषांक) 1997, पृष्ठ संख्या-109
5. सुमहेन्द्र, प्रो. र.वि. साखलकर, आकृति, समाचार, बुलेटिन, वर्ष 10, अंक 9, सितम्बर 1987, पृष्ठ संख्या-5
6. परमानन्द चोयल, राजस्थान में पुनर्जागरण, राजस्थान की समसामयिक कला, रा.ल.क.अ., जयपुर, 1989, पृष्ठ संख्या-25

7. आर.डी.लाटा, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2003, पृष्ठ संख्या-89
8. नरेन्द्र कुमार, कैनवास की सीमा तोड़ने का उपक्रम, एक लेख, आकृति, अंक 12, रा.ल.क.अ., जयपुर, 1991, पृष्ठ संख्या-7
9. बसंत कश्यप, आकृति, समाचार, बुलेटिन (रा.ल.क.अ.), वर्ष 9, अंक 6, 1986, पृष्ठ संख्या-19
10. विद्यासागर उपाध्याय, द्वारका प्रसाद शर्मा, मोनोग्राफ (रा.ल.क.अ.), जयपुर 1977, पृष्ठ संख्या-8
11. भवानीशंकर शर्मा, मोहन शर्मा, मोनोग्राफ, रा.ल.क.अ., जयपुर, 1990, पृष्ठ संख्या-13
12. विद्यासागर उपाध्याय, राजस्थान की समसामयिक चित्रकला, सुजस सांस्कृतिकी, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय, राजस्थान सचिवालय परिसर, जयपुर, (विशेषांक) 1997, पृष्ठ संख्या-110



डॉ. कृष्णा महावर
व्याख्याता चित्रकला विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
कोटा

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

चित्र एक काव्यमयी रचना है (कोटा भित्ति चित्र)

सौन्दर्य के शास्त्रीय गुणों से सम्पन्न और पारम्परिक सांस्कृतिक क्षितिज को विस्तार देती हुई लघु चित्रण तकनीक का अगर जिक्र हो तो हाड़ौती क्षेत्र में स्थित कोटा शहर अपने में अभूतपूर्व खजाना समेटे हुए है। अनेक सामन्तों के कला प्रेम, अभिरुचि तथा संरक्षण में कोटा के विख्यात चित्रों की महान परम्पराओं का जन्म हुआ। लघु चित्रण और भित्ति चित्रण दोनों ही विधाओं की श्रृंखला में कोटा की कला एक संवेगात्मक व भावनात्मक अभिव्यक्ति है, एक सृजना है एवं सत्य की अनुकृति है।

कोटा राज्य पश्चिम में मेवाड़, दक्षिण में मालवा तथा उत्तर में जयपुर की रियासतों से घिरा हुआ है जो कि चित्रकला की दृष्टि से समृद्ध माने जाते हैं। 1625 ई. के लगभग हाड़ौती क्षेत्र का ही रमणीय सुरम्य पहाड़ियों से घिरा शहर बूंदी-कोटा सम्मिलित रहे किन्तु मुगलों की राजनीति में दोनों राज्यों को पृथक कर दिया फिर भी चित्रकला की दृष्टि से दोनों राज्य एक ही वर्ग में रखे जाते हैं। दोनों स्थानों में बहुत कम अन्तर है।

कोटा व बूंदी शैली के पेन्टिंग में पशुओं की लड़ाइयों व शिकार के चित्रण अधिक हुये हैं। (अंग्रेजी से अनुवादित)¹

दीवार के चित्र को भित्ति चित्रण कहते हैं। यह दो प्रकार के होते हैं आद्र भित्ति चित्र शुष्क भित्ति चित्र। आद्र भित्ति चित्र में गीली दीवार पर ही अंकित किया जाता है और शुष्क भित्ति चित्र में दीवार के सूखने पर चित्र की रचना की जाती है। शुष्क दीवार पर चित्र रचना बहुत प्राचीन है। हर दशा में रंगों का प्रयोग समान और जल रंगों का ही होता है।²

बूंदी शैली के अनुकरण पर कोटा में चित्रकला का आरम्भ सत्रहवीं शती के अन्तिम दशकों में हुआ था। शासक **रामसिंह** प्रथम 1665-1707, **भीमसिंह** 1707-20, **अर्जुन सिंह** 1720-23 के शासन काल में रुक्मिणी हरण के कथानक, रागमाला आदि का अंकन किया गया। 1724 के पश्चात् से 17 में तक का चित्रकला का इतिहास बहुत विश्रृंखला है। 1791 में युवराज **उम्मेदसिंह** 10 वर्ष की आयु में सिंहासनासीन हुआ उस समय कोटा की बहुत उन्नति हुई। उसे किशोरावस्था से ही घुड़सवारी तथा आखेट का शौक था। जंगलों में आखेट हेतु मचान बना

रखे थे। वह अपनी रानियों को भी साथ ले जाता, उन्हें छत पर चढ़ा देता और स्वयं शिकार करता। रानियाँ कारतूस देती रहतीं। इसी तरह के चित्र उपलब्ध भी हैं जिसमें वह सुअर, चीते, शेर के शिकार की मुद्रा में हैं। इस समय यहाँ की कला में आखेट दृश्यों का ही साम्राज्य छाया रहा इन चित्रों से एक विशेष ओजपूर्ण लय, आकृतियों में नवीन उद्भावना तथा भावात्मक आकर्षण है। रूपों में सरलता की प्रवृत्ति है और वे बहुत सुन्दर प्रतीत होते हैं। वन के दृश्यों की अद्भुत कल्पना है। इन चीजों की तुलना यदि किसी से हो सकती है तो वह आधुनिक यूरोप के कलाकार रूसों से हो सकती है जिनमें जंगल के दृश्यों को छाया प्रकाश व रंगों के साथ इसी ढंग से प्रभाव के साथ संयोजित किया गया है। लगभग 50 वर्ष तक कोटा की कला में यह प्रवृत्ति बलवती रही। सिंहों का अंकन बहुत यथार्थ एवं ओजपूर्ण हुआ है इनमें यूरोपीय पद्धति पर यथार्थवादी शैली में इनका अंकन करने की चेष्टा की गयी थी। सम्भवतः कोटा के चित्रकारों ने मॉडल पद्धति काफ़ी उपयोग किया था। कोटा के **रामसिंह द्वितीय** (1827—1865) ने अपने जीवन की अनेक घटनाओं का काफ़ी चित्रण करवाया। रामसिंह के पश्चात् यहाँ ब्रिटिश प्रभाव बहुत प्रबल हो गया। **शत्रुसाल द्वितीय** (छतरसिंह 1865—1888) के समय उम्मेदसिंह के युग की कला की अनुकृति की गयी जिसमें परिणामस्वरूप एक बार फिर कोटा में बहुत समय के लिए निखार आ गया।

इसमें मुख्यतया चमकीले रंगों का इस्तेमाल होता था, मुख्य रंग लाल था जो पृष्ठभूमि में रहता है। इस क्षेत्र की कला से आसपास के क्षेत्र जैसे उणियारा, इन्दरगढ़, सेरोला आदि भी प्रभावित हुए। (अंग्रेजी से अनुवाद)⁹

कोटा के भित्ती चित्रों में नारी की भावाभिव्यक्ति अतुलनीय है। कोटा श्रीकृष्ण का एक पुनीत स्थल है फलस्वरूप कृष्ण के अनन्य रूपों की झाकियाँ विविध रूपों में चित्रित मिलती हैं। नारी को दर्शक व अराधिका के रूप में साधारणतया देखा जा सकता है। अराध्य को अपने नयनों में भर लेने की उत्कण्ठित नारी कही भी मीरा से कम नहीं लगती। साधारणतया कोटा की शैली चित्रित नारियों भक्ति भाव में श्रद्धा से ओतप्रोत है। स्त्रियों की एकाकी चित्रण बड़े देवताजी की हवेली के अतिरिक्त अर्जुन महल, बड़ा महल के अलावा झाला हवेली के अर्वाशिष्ट चित्रों में देखा जा सकता है।

शिकार चित्र कोटा चित्रशैली की एक विशिष्टता के साथ ही परम्परा भी कहे जा सकते हैं। कोटा के शिकार चित्रों में महाराजा के साथ महारानी को भी चित्रित किया गया है कमनीय देहलता और दुग्ध सदृश्य रंग वाली महारानियाँ मेहंदी रचे हाथों से तीन-कमान खींचे हैं पर उनके मुख मण्डल की दृढ़ता और पैनी दृष्टि सीधे ही शिकार पर स्थित है। शुद्धलाल झेनी वस्त्र, गहन वनों में काले सन्नाटे में एक विरोधी सैन्दर्य की सृष्टि करते हैं। इन भित्ति चित्रों में कही भी फूहड़ता नहीं जा पाई है चाहे वह हास हो या नृत्य।

अधिकतर चित्र कोटा के गढ़ में अवशिष्ट है जिनमें कि अधिकांशत, आलों में या उनके मध्य में बने हैं। संयोजन शैली और विशेष कर विषय के चुनाव में ये चित्र लघुचित्रों का ही विस्तृत रूप हैं। इनको इस प्रकार संजोया गया है कि हर चित्र किसी घटनाक्रम का एक अंश प्रतीत होता है। जिसमें पहले बहुत कुछ बीत चुका है और अब उसकी चरम परिणति है। हर चित्र अपने आप में जैसे एक कविता है और दर्शक बरबस थमकर उन्हें निहारने तथा समझकर सिहरने लगता है। इन पारम्परिक शैली के चित्रों में प्रकृति का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है। बारहमासा और षडयंत्र वर्णन चित्रों में प्रकृति को मूल आकारों के भावों के साथ-साथ ही प्रतिष्ठ वनित दिखाया गया है। एक ही वस्त्र को ओढ़कर दुबके हुए शीत से बचने का प्रयास करते प्रेमी युगल, कड़कती हुई बिजली और नाचते मयूर को देखकर तरसती हुई विरहिन, शिशिर के बाद सुवासित मलय पवन जब आसमान को पीला करने लगती हैं, झर-झर गिरते सूखे पीले पात, आम की डाल पर कूकती कोयल और हृदय को दग्ध करते हैं तो कहीं मृदंग और चंग की थाप पर गौरी की पायल मचल जाती है और तब आत्मिक-सा सुख और तृप्ति समूचे चित्र में रच बस जाती है। लगता है सारी सृष्टि गीत, संगीत, नृत्य, ताल, उमंग, रंग में डूब गई है अन्य पशु-पक्षी तक श्रोता बन गये हैं।

नायक-नायिका श्रृंखला धीरे-धीरे व्यक्तिगत जीवन दर्पण और मनोविज्ञान पर टिकी है तथा पूर्ण रूप से अन्य समस्त भावों के योग से भी भारी जो भाव है वह है प्रेमाभिव्यक्ति। उसकी समस्त मनः स्थितियाँ चाहे संयोग हो या वियोग, श्रृंगार हो या विरह, सभी कुछ कोटा के मित्ति चित्रों में सुंदरता, सहजता, भावुकता से संयोजित और समर्पित है। नायक की उपस्थिति कभी कल्पनाओं में है, कभी साक्षात्।

नायिका भेद का चित्रण भी एक प्रमुख विषय है वात्सायन के कामसूत्र के आधार पर नारी की विविध मनोदशाओं का बड़ा ही मनोहारी और स्वप्निल चित्रण पाया जाता है। टॉल्स्टाय ने भावपूर्ण क्रिया या अभिव्यक्ति को जो देखने वाले को उसी भाव में विलीन कर दे, कला कहा है। प्रसाद के शब्दों में ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का संकुचित रूप जो हमको बोध के लिये मिलना है, वही कला है। कोटा भित्ति चित्र में सारी कला की परिभाषाएँ हर अर्थ में पायी जाती हैं। ये चित्र फ्रायड की परिभाषा को भी यदाकदा रूपायित करते हैं उनका कहना है कि कला मानव की दयित भावनाओं का उभरा हुआ रूप है। यहाँ मन की उन गुप्त स्थितियों को भी चितेरा गया है जब नारी कामदेव के आघात से तड़फ और प्रिय के वियोग से तरस जाती है उसका विवेक उसकी कामग्नि में भस्म हो जाता है तब नारी को नारी के साथ कामरत दिखाया गया है।

भावों का प्रदर्शन आकृतियों की भांगिमा से होता है चित्र की अचित्रित बातें व्यंजना के द्वारा पहचानी जाती हैं सुंदर चित्र की व्याख्या यही है कि उसमें माधुर्य ओज व सजीवता है।

जीवित प्राणी की भांति चित्र में भी एक प्रकार की चेतना होनी चाहिए। **भरत मुनि** कहते हैं **“रसादूते नहि कश्चिदर्थ प्रवर्तते”** अर्थात् रस के बिना अर्थ का उद्भव नहीं होता। चित्र को रेखाबद्ध कविता होना आवश्यक है।

"A mental Project or Scheme in which the means to an end are laid down".⁴

कोटा शैली में रागमाला के चित्र भी पाये गये हैं, परन्तु बूंदी चित्रशैली में ये बहुतायत में मिले हैं। पारम्परिक लघुचित्रण भी कोटा शैली में प्रचुर मात्रा में बने है। कागज की तैयारी, तूलिका निर्माण, रंग बनाने की विधि, रेखांकन, उद्वेक्षण, आकृतियाँ का परिरूपण, छायाकरण, परदाज मृदकरण तकनीक, खनिज रंगों का प्रयोग, वानस्पति रंगों का उपयोग एवं रासायनिक रंगों के चमत्कार सभी इन प्राचीन शैली के चित्रों को और अधिक अद्भुत रूप प्रदान करत देते हैं। कलाकार के लिए रंग का महत्व सर्वधिक है, रंग उसकी प्रेरणा को साकार करता है, सृजनात्मकता को बल मिलता है।⁵ प्रस्तर के रूप में पाए जाने वाले रंग फूल और काठ खड़िया, काजल निर्मित काला रंग, सिंगरक रामरज, लाजवर्द, जड़ी-बूटियों के रंग, गौगोली के अतिरिक्त देसज नामों से जाने-पहचाने जाने वाले बादमी, मूंगिया, पिस्तई, चेरई, सब्जी रंग तोतई, तरबूजी, जामुनी, गुलाबी मोरपंखी रंगों से आते-जाते लिपटे चित्र दर्शक के सम्पूर्ण अंक प्रतयंग को भी रंगों के सरोवर कर देते हैं। इनमें समय बहुत लगता है इन चित्रों की जितनी घुटाई की जाती है उसमें उतनी ही चमक आती है।

इस शैली में मेवाड़ की चित्रकला के आधार पर आकृतियों का विकास हुआ। आकारों में मुगल पद्धति की बारीकी लाने की चेष्टा गई। फलतः कोमल रेखांकन एवं खत परदाज के साथ गला रंगा योजना, संगति एवं मिठास व नाटकीय मुद्राओं का प्रयोग किया गया। दक्षिण शैली के प्रभाव से गोल मुखाकृतियाँ में परवल की फाके जैसे नेत्र, नुकीली नासिका एवं भारी चिबुक का चित्रण हुआ है। बादमें लम्बे चेहरे की बनने लगे। गौर वर्ण से प्रारम्भ होकर यहाँ की नारी मुखाकृतियाँ में लाल मिश्रित बादामी रंग व मुगल प्रभाव से हल्के गुलाबी रंग भी भरे गये हैं। सघन वनस्पति इस शैली की प्रधान विशेषता है। मुखाकृतियों के पीछे छाया अमिट करके रिलीफ जैसा प्रभाव उत्पन्न किया गया है। जल का अंकन करने हेतु काला और नीला रंग मिलाकर भरा है उसे पर श्वेत रंग से आवतमिय लहरें अमिट की गई है। कोटा के भित्ति चित्रों में अनेक प्रकार की आकृतियों वाले नाटकीय बादलों का चित्रण हुआ। कोटा शैली के भित्ति चित्रों व लघुचित्रों की ख्याति भारत ही नहीं, विश्व स्तर पर है।

यह अमूल्य धरोहर है, एक खजाना है जिसे सहेज कर रखना हर कलाप्रेमी का कर्तव्य है, वरना समय की शक्ति के आगे इन चित्रों पर यमराज की काली छाया भी मंडराने लगती है। वक्त की धूल इन्हें नष्ट भी कर देती है। इस महान् कोटा शैली के चित्रों की काव्यमयी रचना सदैव स्मरणीय रहने वाली सत्ता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. Swami Chidatman Jee, "Art forms of India", Anmol Publications Pvt. Ltd., New Delhi-02, Pg.-202.
2. डॉ. रेनू शर्मा, "अजन्ता के भित्ति चित्रों का कलात्मक पहलू", प्रथम अध्याय, प्रकाशक—राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजती गेट, जोधपुर, पृष्ठ—11—12
3. Swami Chidatman Jee, "Art forms of India", Anmol Publications Pvt. Ltd., New Delhi-02, Pg.-202.
4. Encyclopaedia, Britannica INC, Vol-1, Page-611.
5. डॉ. उमेश मिश्र, "कला सौरभ", कला—सिद्धांत विशेषांक, रंग : मूलभूत सिद्धांत एवं नवीन दिशाएँ, पृष्ठ—36



प्रो. किरन सरना
कु. पूनम (शोध छात्रा)
चित्रकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

विज्ञापन कला एवं संगीत

विज्ञापन का सामान्य अर्थ है – सूचना देना, जानकारी देना एवं सार्वजनिक रूप से घोषणा करना। विज्ञापन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द Advertiser से हुई है, जिसका अर्थ है – ‘टू टर्न टू’ अर्थात् किसी ओर मुड़ना यानी किसी विशेष वस्तु की ओर ध्यान आकर्षित करना या आकर्षित होना ही विज्ञापन है।¹ अंग्रेजी में यह Advertisement है अर्थात् attention to draw attention, to publish, to announce a public notice, make known to people by printing notices in newspapers or by other methods.²

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार – “विज्ञापन, विज्ञापक द्वारा चाही गई वह भुगतान की गई घोषणा है, जो किसी वस्तु अथवा सेवा के विक्रय को प्रोत्साहित करने के लिए अथवा कोई अन्य प्रभाव उत्पन्न करने से की गई हो।”

विज्ञापन डिजाइन (आलेख) कई तत्वों से मिलकर बना होता है। मुद्रित विज्ञापन के आलेख में मुख्य शीर्षक (Headline), उपशीर्षक (Sub-Headline), बॉडी कॉपी (Body Copy), स्लोगन (Slogan), टैगलाइन (Tag-Line), व्यापारिक चिन्ह (Trade Mark) आदि तत्व सीमित रहते हैं। श्रव्य व दृश्य श्रव्य विज्ञापनों में भी इन्हीं तत्वों का प्रयोग किया जाता है लेकिन उनकी शैली व प्रस्तुतीकरण का ढंग भिन्न हो जाता है।³ विज्ञापन डिजाइन के मुख्य तत्वों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है –

1. मुख्य शीर्षक (Headline) – मुख्य शीर्षक डिजाइन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है जो किसी भी विज्ञापन के लिखित संदेश में सबसे बड़े आकार टाईप फेस में आकर्षक रंग के साथ, मुद्रित होता है।⁴ मुख्य शीर्षक का सृजन काफी सोच विचार कर किया जाता है। इसी में सम्पूर्ण विज्ञापन संदेश का सारांश समाहित होता है। श्रोता जो सम्भावित उपभोक्ता है, की स्मृति को प्रभावित करने के लिए संक्षिप्त, संगत, तार्किक प्रासंगिक, आकर्षक व रुचिकर शीर्षक का प्रयोग किया जाता है। मुख्य शीर्षक ही श्रोता को विज्ञापन की कथावस्तु देखने, पढ़ने के लिए प्रेरित करता है।⁵

2. उपशीर्षक (Sub – Headline) – मुख्य शीर्षक उपभोक्ता की रुचि को उत्पाद के बारे में जानने की उत्कण्ठ इच्छा में बदल देता है। इसे मुख्य शीर्षक का विस्तारित रूप भी कहा जाता

है। कभी-कभी मुख्यशीर्षक में कुछ प्रश्न उठाए जाते हैं जिनका उत्तर, उपशीर्षक में देने का प्रयत्न किया जाता है। इसका आकार मुख्य शीर्षक के समान या उससे छोटा तथा बॉडी कॉपी से बड़ा होता है।⁶

3. बॉडी कॉपी (Body Copy) – उपशीर्षक और चित्र द्वारा दिये गये संदेश के सार की विस्तार से जानकारी उपभोक्ता को बॉडी कॉपी द्वारा दी जाती है। जैसे – उत्पाद प्रयोग करने के तरीके, प्रयोग द्वारा होने वाले लाभ, निर्माण में प्रयोग की गई सामग्री आदि। बॉडी कॉपी सबसे छोटे आकार में लिखी जाती है जो सामान्यतः 8-10 लाइनों या इससे कम एवं अधिक भी हो सकती है।⁷

4. चित्र (Illustration) – डिजाइन में चित्र उपभोक्ता के ध्यानाकर्षण का सबसे सशक्त माध्यम है। चित्र, प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित-अशिक्षित, किसी भी आय-वर्ग, आयु-वर्ग, स्त्री-पुरुष सभी को आकर्षित कर लेते हैं। चित्र भाषा द्वारा दिए गए संदेश को पूर्णता प्रदान करते हैं।⁸

5. व्यापारिक चिन्ह (Trade - Mark) – किसी भी कम्पनी की सामूहिक छवि व्यापारिक चिन्हों से बनती है जिसमें कम्पनी का प्रतीक चिन्ह, मोनोग्राम एवं लोगोटाइप शामिल होते हैं। ये व्यापारिक चिन्ह सुदृश्य एवं सुपादय होते हैं तथा इनमें आकर्षक रंगों का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः व्यापारिक चिन्ह को लोगो (Logo) के नाम से भी इंगित किया जाता है।

विज्ञापन डिजाइन के उपरोक्त सभी तत्वों का प्रयोग, विज्ञापन के उद्देश्यों व विज्ञापन रणनीति पर निर्भर करता है।⁹

विभिन्न तत्वों के समावेश से तैयार एक विज्ञापन की सफलता बहुत अंशों में विज्ञापन माध्यम पर निर्भर करती है। विज्ञापन माध्यम का तात्पर्य उन तरीकों, विधियों से है जिनके द्वारा विज्ञापनदाता उपभोक्ता को आकर्षित करने, उनके विचारों एवं मनोवृत्तियों को प्रभावित करने और उनके व्यवहारों को अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। विज्ञापन माध्यमों को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है¹⁰ –

1. दृश्य माध्यम (Visual Medium) – विज्ञापन प्रकाशित करने का ऐसा माध्यम जिसे उपभोक्ता सिर्फ देख सकता है, सुन नहीं सकता, दृश्य माध्यम कहलाता है। दृश्य माध्यमों में निम्नलिखित माध्यम महत्वपूर्ण हैं –

- | | | | |
|---------------|--------------|--------------------|-------------------|
| i समाचार पत्र | ii पत्रिकाएं | iii विजिटिंग कार्ड | iv लैटर हैड |
| v पोस्टर | vi होर्डिंग | vii बैनर | viii कियोस्क |
| ix साइन बोर्ड | x कैलेण्डर | xi डायरी | xii भित्ति चित्रण |

2. श्रव्य माध्यम (Audio Medium) – विज्ञापनदाता विज्ञापन के लिए जिन साधनों का उपयोग करता है उन्हीं में से एक श्रव्य माध्यम भी है। विज्ञापनदाता व्याख्यान अथवा भाषण,

लाउडस्पीकर, रेडियो एवं सीधे उपभोक्ता से मिलकर उत्पाद एवं सूचना के प्रति उपभोक्ता को आकर्षित करने, उनकी आवश्यकताओं को जगाने तथा उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल बनाने का प्रयास श्रव्य माध्यम की सहायता से करता है।¹¹

3. दृश्य-श्रव्य माध्यम (Audio-Visual Medium) – वर्तमान समय में विज्ञापन के लिए श्रव्य दृश्य साधन सबसे अधिक प्रचलित हैं। इसकी विशेषता यह है कि यह उपभोक्ता के श्रवण ग्राहक तथा दृष्टि ग्राहक को साथ-साथ प्रभावित करता है जिसके कारण विज्ञापित वस्तु की छवि उपभोक्ता के मन पर स्पष्ट तथा सापेक्ष स्थायित्व के साथ पड़ती है। ऐसे माध्यमों में चलचित्र, दूरदर्शन, व्याख्यान-सह-प्रदर्शन, मेले, खेल तमाशे इत्यादि प्रमुख हैं।¹²

विज्ञापन कला का मुख्य दायरा संगीत से जुड़ा है। आधुनिक युग में विज्ञापन कला पूर्ण रूप से सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक आदि माध्यम के रूप में स्थापित हो चुका है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी वर्ग विशेष से जुड़ा हो संगीतयुक्त विज्ञापनों से ही मंत्रमुग्ध किया जा सकता है।

विज्ञापनों में उत्कृष्ट शब्द संयोजन यानि अक्षर अथवा शब्दों को उपक्रमों के उपरांत सजाने एवं संवारने की नीति तय कर विज्ञापन प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें संगीत सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। कोई भी रचना ध्वनि के बिना अपूर्ण है और सुरीली ध्वनियां ही श्रवणीय है तथा यही संगीत है।¹³

अब सर्वाधिक क्रांतिकारी संचार साधन है – इण्टरनेट एवं इलैक्ट्रॉनिक समाचार-पत्र, टी. वी., रेडियो एवं मोबाइल आदि। ये विज्ञापन की आधुनिक तकनीक हैं। रेडियो, मैग्जीन, टी. वी. और आउटडोर आदि सब विज्ञापन माध्यम मिलकर उपभोक्ता का सामना दिनभर में 3000 विज्ञापन संदेशों से करवाते हैं,¹⁴ जो संगीत ध्वनि से परिपूर्ण होते हैं।

अधिकांश विज्ञापन जो हमें याद रह जाते हैं वो अक्सर संगीतमय रूप में ही प्रस्तुत होते हैं¹⁵ जैसे –

- * ले लो, ले लो
- * चेहरा है या चाँद खिला है,
जुल्फ घनेरी शाम है क्या,
सागर जैसी आँखों वाली,
ये तो बता तेरा नाम है क्या ?
- * वाशिंग पाऊडर निरमा,
वशिंग पाऊडर निरमा,
दूध सी सफेदी निरमा से आए,

रंगीन कपड़ा भी खिल-खिल जाए,
सब की पसंद निरमा,
वाशिंग पाऊडर निरमा,
निरमा। (देखिये चित्र सं. - 1)

* अरे भाई, वाह उस्ताद, नहीं
वाह ताज बोलिये। (देखिये चित्र सं. - 2)



चित्र सं. - 1



चित्र सं. - 2

ऐसी बहुत सी विज्ञापन रचनाएं प्रस्तुत होती हैं जो मानव के कोमल हृदय को सहज ही आकर्षित कर लेती हैं। प्रतिदिन प्रातः काल की गर्म-गर्म चुस्कियों के साथ व्यक्ति समाचार-पत्र, पत्रिकाओं में विज्ञापनों को देखता-पढ़ता है।¹⁶ घर के बाहर निकलने पर सड़क पर लगे पोस्टर, होर्डिंग एवं घर कार्यालय आदि के अन्दर अपने-अपने कार्यों में व्यस्त दिनचर्या में अकस्मात् ज्यों ही विज्ञापन ध्वनियां हमारे कानों में पड़ती हैं, हम सहसा ही उसकी ओर खींचे चले जाते हैं कि देखें तो सही क्या सूचना है, क्या बिक रहा है? और अपने योग्य जानकारी प्राप्त होते ही हम उसे क्रय एवं ग्रहण कर लेते हैं और उक्त विज्ञापनकर्ता का उद्देश्य पूरा हो जाता है।¹⁷

विज्ञापन एवं संगीत का इतिहास मानवीय सभ्यता और संस्कृति से जुड़ा है।¹⁸ पौराणिक आख्यानों के देवर्षि नारद जिन्होंने लोक मंगल की कामना से वार्ता एवं संदेश शुरू करने से पहले वाद्य यंत्र का प्रयोग कर सूचना संदेशों के सम्प्रेषण का क्रम पहले पहल निभाया था। महाभारत के संजय जिन्होंने दूर हस्तिनापुर में बैठकर कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़े जा रहे महाभारत का आँखों देखा हाल नेत्रहीन कुरुराज धृष्टराष्ट्र को सम्प्रेषित किया।¹⁹ विज्ञापन का एक दृश्य कुछ प्रतीक चिन्हों और द्विद्वोरा पीटकर मुनादी करने वालों का था। प्राचीन यूनान और मिस्र में भी यही परम्परा रही। मुद्रण व्यवस्था के आरंभ होने से पूर्व लगभग सभी देशों में विज्ञापन का यही रूप था। प्रतीक चिन्ह प्रायः दुकानों के दरवाजों पर टंगे रहते थे। इनका उद्देश्य व्यापार की प्रकृति एवं स्थान के विषय में सूचना देना था और राज-सत्ता तथा प्रशासन की सूचनाओं को आम

आदमी तक पहुँचाना था। भारत में भी सम्राट अशोक के राज्यकाल से सूचना-सम्प्रेषण की इस विधि के प्रयोग के उल्लेख मिलते हैं।²⁰ राजा-महाराजाओं के समय में जोर-जोर से ढोल नगाड़ा या डुग-डुगी या तुरही बजाकर व्यक्ति को सूचित करना विज्ञापन का संगीतमय रूप ही था।

सन् 1141 ई0 में फ्रांस में ऐसे लोगों के होने की सूचना मिलती है जो ट्रैवर्न में जाकर व्यावसायिक प्रचार करते थे। भारत में भी ऐसी विज्ञापन कला के कुछ रोचक उदाहरण मिलते हैं। बहुत लम्बे समय तक गली-गली जाकर सामान बेचने वालों की पहचान उनके उन गीतों से होती थी जो वे गाते हुए आते थे। इन सभी गीतों में बेची जा रही वस्तु की विशेषताएं बताने के साथ-साथ अपने अनोखे अन्दाज में खरीददारों को लुभाने की कोशिश भी रहती थी। भारतेन्दु के नाटक 'अन्धेर नगरी' तथा हबीब तनवीर के नाटक 'आगरा बाजार' में इनकी झलक देखी जा सकती है।²¹

15वीं सदी में प्रिंटिंग प्रेस के अविष्कार के साथ पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ,²² प्रिंटिंग की नई-नई तकनीकों के साथ पोस्टर, बैनर, होर्डिंग, स्टीकर आदि विज्ञापन माध्यमों का प्रयोग किया जाने लगा। सन् 1841 में अमेरीका में वाल्नी पामर ने पहली विज्ञापन एजेंसी की स्थापना की। फिर 1869 में फिला डेलफिया में एन. डब्ल्यू. आचर एंड सन नामक आधुनिक विज्ञापन एजेंसी की स्थापना की गई।²³ सन् 1907 ई0 में बम्बई में एलायंस एसोशिएसन लिमिटेड नामक पहली विज्ञापन एजेंसी का उदय हुआ।²⁴ इस समय विज्ञापन की कलात्मक प्रस्तुति पर भी ध्यान दिया जाने लगा था।²⁵

विज्ञापन के ये प्रारम्भिक रूप आधुनिक विज्ञापन से काफी भिन्न हैं, ये विज्ञापन का सरलतम रूप है, जहाँ विक्रेता का उपभोक्ता से सीधा सम्पर्क होता है। पूंजी निवेश और विशेषज्ञता की दृष्टि से आज विज्ञापन की दुनिया में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। उसके नित नए माध्यम ईजाद हो रहे हैं लेकिन दो बातें जो इसके प्रारंभिक मूल रूप में थी, वे आज भी बनी हुई हैं। प्राचीन युग के प्रतीक चिन्ह, आधुनिक युग के 'ट्रेडमार्क' या 'लोगो' के रूप में आज भी विज्ञापन का अनिवार्य हिस्सा है। दूसरे जो नाटकीयता और लोकप्रिय संगीत तब भीड़ इकट्ठी करने या मजमा सजाने के काम आता था, वह आज भी दिलों को छू रहा है।²⁶

ग्लोबलाइजेशन ने जहाँ संसार की दूरियां कम की हैं वहीं विज्ञापन कला ने भी विचारों के आदान-प्रदान व प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक विज्ञापन कला के उद्भव व विकास में पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों के प्रकाशनों ने तथा फिल्म स्लाइड्स, रेडियो, टी. वी., कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मोबाइल आदि आधुनिक विज्ञापन माध्यमों ने दूरी को बहुत कम कर दिया है।²⁷

सन् 1967 ई. में रेडियो एवं 1976 ई. में टेलीविजन को भी कमर्शियल रूप दिया गया लेकिन 1982 ई. में एशियाई खेलों के साथ रंगीन टी.वी. की सज-धज में विज्ञापन क्षेत्र में नए प्रयोग शुरू हुए और धीरे-धीरे प्रायोजित कार्यक्रम, धारावाहिक, फिल्मी गीतों के कार्यक्रमों के

बीच संगीतात्मक पंक्तियों से परिपूर्ण विज्ञापन की बाढ़ सी आ गई।²⁸ आजकल विज्ञापन के लिए संगीत की व्यवस्था दो तरह से की जाती है। बड़ी कम्पनीयां अच्छी खासी रकम खर्च कर एकदम मौलिक संगीत का निर्माण करती हैं जबकि छोटी कम्पनीयां विज्ञापन पर कम पैसा खर्च कर मौजूदा संगीत का ही उपयोग करती हैं।

दृश्य श्रव्य माध्यमों ने तो विज्ञापनों में प्राण फूँक दिये और उनमें संगीत का साहचर्य — वाह, क्या कहने!

उदाहरणस्वरूप —

15 अगस्त 1988 को लोक सेवा संचार परिषद् द्वारा निर्मित और दूरदर्शन पर प्रकाशित विज्ञापन —

* मिले सुर मेरा तुम्हारा

तो सुर बने हमारा

सुर की नदिया हर दिशा से

बहकर सागर में मिले

बादलों का रूप लेकर

बरसे हल्के—हल्के

मिले सुर मेरा तुम्हारा

सभी देशवासियों के लिए जागरण गीत बन गया। 'विविधता में एकता' के मूल स्वर को गुंजायमान करने के उद्देश्य से इस विज्ञापन में भारत की विविधमयी प्राकृतिक संपदा, संस्कृति, भाषा, क्षेत्र की आंतरिक एकसूत्रता को दर्शाया गया है।²⁹ मुख्य स्वर भीमसेन जोशी और सुश्री लता मंगेशकर ने भी इसमें स्वर दिया था। चौदह भाषाओं में एकता का संदेश देने वाले इस गीत को विज्ञापन की दुनिया की प्रसिद्ध हस्ती पीयूष पाण्डे ने लिखा था।³⁰ धर्म के नाम पर इंसान को बांटने वाली ताकतों के विरुद्ध मानवीय दर्द की कहानी को व्यक्त करते हुए पूरी टीम मिलकर गाती है —

सुर दा दरिया बहके सागर में मिले

बदलां दा रूप लै के

बरसे हौले—हौले

और तब सन्देश, एकता, अमन, शांति का व्यंजक हो उठता है। विज्ञापन के अंत में यही सन्देश स्क्रीन पर दिखाई पड़ता है जिसमें लिखा है — 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा'। यह विज्ञापन 'विविधता में एकता' जो हमारी संस्कृति की विशेष पहचान रही है एवं देश की तरक्की एवं खुशहाली का संदेश देता है जो वर्षों से भारतीयों के मन में गुंजता रहा है।³¹

26 जनवरी, 2010 को इसी विज्ञापन का नया संस्करण जूम टी.वी. पर प्रसारित हुआ जिसका शीर्षक है "फिर मिले सुर"। इस नये विज्ञापन ने यादों को ताजा कर दिया है। पहला विज्ञापन छह मिनट का था जबकि नया संस्करण सोलह मिनट का है। नये संस्करण में इक्कीसवीं सदी के भारत की झलक दिखाई पड़ती है।³² (देखिये चित्र सं. - 3)



चित्र सं. - 3

लक्ष्य देशी घी का एक विज्ञापन -

* वो कौन है, वो कौन है,

जो खुशबू लाता है,

स्वाद बढ़ाए खाने में,

और सेहत बनाता है,

तो बोलो-बोलो

पापा,

मम्मी

खाने को टेस्टी बनाता है, लक्ष्य शुद्ध देशी घी,

खुशबू और स्वाद में है हिट, सेहत को रखे फिट,

लक्ष्य शुद्ध देशी घी, स्वाद और सेहत की बात शुद्धता के साथ।

प्रस्तुत विज्ञापन पंक्तियों में उत्पाद की प्रत्येक गुण, खुशबू, स्वाद आदि को संगीतात्मक तरीके से प्रस्तुत करते हुए सेहत को भी ठीक रखने का संदेश दिया जाता है। आज के युग में प्रस्तुत यह विज्ञापन जन-जन की जुबान पर चढ़ गया है। (देखिये चित्र सं. - 4)



चित्र सं. - 4

- * जे.पी. पॉवर का एक विज्ञापन –
- टिम-टिम ताना-ताना, रे रे ना ना रे – रे
- टिम-टिम ताना-ताना रे रे
- हम रोशनी को ख्वाबों के पर लगाके लाएंगे-लाएंगे
- हम अपनी जमीं को सितारों से सजाएंगे
- रोशन जमीं को कर जाएंगे
- हम हैं जे पी ग्रुप No Dream too Big

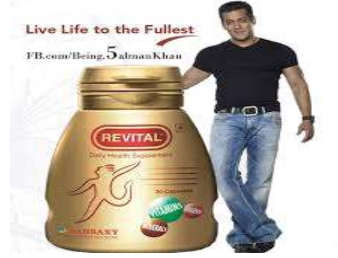
प्रस्तुत पंक्तियां शब्दों की चित्रात्मक शक्ति के माध्यम से अंधेरे से रोशनी का बिंब रचती है। यहां गीत की तरलता, भावनात्मकता, कल्पना आदि सब मिलकर एक अनुभव की सृष्टि करते हैं। पॉवर यानि बिजली – यहां रोशनी को बिजली का प्रतीक मान लिया गया है। वह रोशनी जो ख्वाबों से सजी हुई है, जो सितारों को जमीं पर लाकर अंधेरा दूर कर सकती है। यह विज्ञापन मात्र उत्पाद से बढ़कर कम्पनी की प्रतिष्ठा और देशवासियों की उमंगो से जुड़ जाता है।³³ (देखिये चित्र सं. - 5)

ऐसे कितने ही अनगिनत गीत एवं संगीत ढले स्लोगन अपनी ध्वनि तरंगों एवं दृश्य-बिंबो से लोगों के मन-मस्तिष्क पर छाए रहते हैं।

- * “जियो जी भर के” (रिवाइटल) (देखिये चित्र सं. - 6)
- * “छोड़ो लाइन / हो जाओ / ऑन लाइन” (इन्टरनेट बैंकिंग)
- * “सोने से भी सोना लगे, सलोना मेरा यार है



चित्र सं. - 5



चित्र सं. - 6

रेशम – सी खुली है यारा दिलदार है :” (लक्स) (देखिये चित्र सं. - 7)

* “कुछ मीठा हो जाए” (कैडबरी डैरी मिल्क) (देखिये चित्र सं. - 8)



चित्र सं. - 7



चित्र सं. - 8

विज्ञापनों में संगीत का तो वर्चस्व है ही, संगीतज्ञों का भी वर्चस्व बना; यथा, ताज चाय के साथ प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद जाकिर हुसैन, टोरेक्स दवा के साथ प्रसिद्ध गजल गायक जगजीत सिंह तो अब झण्डू के ब्राण्ड-एम्बेसडर प्रख्यात कथक नर्तक पण्डित बिरजू महाराज।³⁴

संगीत के माध्यम से प्रस्तुति इतनी मोहक हो जाती है कि उत्पाद की गुणवत्ता के साथ जुड़ जाता है, प्रस्तुतिकरण और उत्पाद, सार्थक प्रतीत होने लगता है। संगीत का यह साहचर्य उत्पाद, उत्पादक एवं ग्राहक के साथ-साथ विज्ञापनादाताओं को भी लाभान्वित करता है। संगीतयुक्त विज्ञापनों में संगीत से चतुर्दिक लाभ समाहित है।³⁵

संगीत का प्रयोग विज्ञापन को एक नया आयाम प्रदान करते हैं। शब्दों के अनुसार विज्ञापन में संगीत का उत्तार-चढ़ाव उसे उपभोक्ता की ओर अधिक अनुकूल बनाता है। मधुर-ललित संगीत सुकून देता है और आशवस्त करता है जबकि तेज गति का रॉक म्यूजिक जश्न का माहौल बनाता है।³⁶

इस प्रकार स्पष्ट है कि विज्ञापनों में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. www.wikipedia.org/wiki/advertising.

2. Mahamaya Advance Perfect Disctionery, English-English-Hindi, Page No. 24
3. सिंह, डा. निशांत, जनसम्पर्क और विज्ञापन, पृ. सं. — 146
4. Chunawala S.A., Sethia K.C., Foundation of Advertising, Page No. 371
5. www.rockettheme.com
6. Chunawala S.A., Sethia K.C., Foundation of Advertising, Page No. 383
7. Ibid
8. www.vidyaprep.com
9. Chunawala S.A., Sethia K.C., Foundation of Advertising, Page No. 381
10. सुलेमान, डॉ. मुहम्मद, चौधरी, डॉ. विनय कुमार, आधुनिक औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान, पृ. सं. 350
11. वही, पृ. सं. 351
12. वही पृ. सं. 353
13. छायानट, अप्रैल-जून 2012, पृ. सं. — 84
14. भास्कर लक्ष्य, सितम्बर-2012, पृ. सं. — 15
15. सेठी डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. — 146
16. समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त — 2011, पृ. सं. — 89
17. छायानट, अप्रैल — जून, पृ. सं. — 78
18. वही, पृ. सं. — 78
19. श्रीधर विजय दत्त, भारतीय पत्रकारिता कोष, पृ. सं. — 2
20. सेठी डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. — 28, 29
21. वही, पृ. सं.— 29
22. छायानट, अप्रैल — जून, पृ. सं. — 79
23. सेठी डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. — 29
24. संचार माध्यम, जुलाई — सितम्बर — 1995, पृ. सं. — 24
25. सेठी डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. — 29
26. वही, पृ. सं. — 28
27. मधुमति, जून — 2012, पृ. सं. — 15
28. सेठी डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. — 31
29. वही, पृ. सं. — 297
30. छायानट, अप्रैल — जून, पृ. सं. — 85
31. सेठी डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. — 298
32. वही, पृ. सं. — 299
33. वही, पृ. सं. — 299
34. छायानट, अप्रैल-जून, पृ. सं. — 85
35. वही, पृ. सं. — 84
86. सेठी डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. — 146

पर्यटकों को लुभाता बालाजी का मंदिर, सालासर (चूरु)

श्री रामपायक हनुमान जी का यह मंदिर शेखावाटी अंचल के सीकर जिले की सीमा पर स्थित सालासर नामक गाँव में स्थित है, इसलिये ये मंदिर 'सालासर वाले बालाजी' के नाम से लोकविख्यात है। बालाजी की यह प्रतिमा बड़ी ही प्रभावशाली है। यह प्रतिमा दाढ़ी-मूँछ युक्त है। मंदिर काफी बड़ा है। चारों ओर यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशालाएँ बनी हुई हैं, जिसमें हजारों यात्री एक साथ ठहर सकते हैं। काफी दूर-दूर से यात्री अपनी मनोकामनाएँ लेकर आते हैं और इच्छित फल पाते हैं। यहाँ सेवा-पूजा तथा आय सम्बन्धी व्यय सम्बन्धी, आदि सभी अधिकार स्थानीय दायमा ब्राह्मणों को है, जो मोहनदासजी के भांजे उदयरामजी के वंशज हैं।

मोहनदासजी ही इस मंदिर के संस्थापक थे। यह बड़े वचनसिद्ध महात्मा थे। असल में मोहनदासजी रूपयाणी (जो कि सालासर से 16 मील दूर है) के रहने वाले थे। इनके पिताश्री का नाम लच्छीराम था। लच्छीराम जी के छः पुत्र व एक पुत्री थी। पुत्री का नाम कानीबाई था। मोहनदासजी सबसे छोटे थे। कानीबाई का विवाह सालासर ग्राम के सुखराम जी से हुआ था पर पाँच साल बाद उदयराम नामक पुत्र प्राप्ति के बाद सुखराम जी का देहान्त हो गया, तब कानीबाई अपने पुत्र उदयराम सहित अपने पीहर रूल्याणी चली गई। कुछ पारिवारिक परिस्थितियों के कारण अधिक समय तक वह वहाँ नहीं रुक सकी और वापस सालासर आ गई। यह सोचकर कि विधवा बहन कैसे जीवन निर्वाह करेगी, मोहनदासजी भी साथ चले आये। इस प्रकार कानीबाई, मोहनदासजी व उदयराम साथ-साथ रहने लगे। श्री मोहनदासजी प्रारम्भ से ही विरक्त वृत्ति वाले आदमी थे और श्री हनुमान जी महाराज को अपना इष्ट मानकर पूजा करते थे। यही कारण था कि यदि वे किसी को कोई बात कह देते तो वह अवश्य ही पूरी होती। इस तरह उनको सभी लोग जानने लगे थे। इसी तरह कुछ दिन गुजरते रहे। एक दिन मोहनदासजी व उदयराम जी अपने खेत में काम कर रहे थे। मोहनदासजी बोले उदयराम मेरे पीछे कोई देव पड़ा है, जो मेरा गंडासा छीनकर फेंक देता है। उदयराम बोले कौन देव है। तो मोहनदासजी बोले बालाजी हैं। उदयरामजी को यह बात कुछ कम समझ में आई। घर लौटे तो उन्होंने कानीबाई से कहा 'माँ, मामाजी के भरोसे से तो खेत में अनाज ही नहीं होना। और यह कहकर खेत वाली सारी बात कह सुनाई।

सुनकर कानीबाई ने सोचा कहीं मोहनदासजी सन्यास न ले ले यह सोचकर उसने एक स्थान पर मोहनदास के लिये लड़की तय कर सम्बन्ध पक्का करने हेतु नाई को कुछ कपड़े व जेवर देकर लड़की वाले के घर भेजा। पीछे से जब थोड़ी देर बाद ही मोहनदास घर आये तो कानीबाई ने विवाह की सारी बात उन्हें कहीं, तब वे हंसकर बोले “पर बाई वह लड़की तो मर गई है।” कानीबाई सहम गई क्योंकि वह जानती थी कि मोहनदासजी के वचन सिद्ध हैं। दूसरे दिन नाई लौटा तो उसने बताया कि लड़की तो मर गई इस तरह मोहनदासजी ने विवाह नहीं किया और पूरी तरह से श्री बालाजी बजरंग बली की भक्ति में प्रकट हो गये। एक दिन मोहनदासजी, कानीबाई व उदयरामजी तीनों अपने घर में बैठे थे कि दरवाजे पर किसी साधु ने आवाज दी पर कानीबाई जब आटा लेकर द्वार पर गई तो वहाँ कोई नजर नहीं आया, इसलिए इधर उधर देखकर वापस आ गई और बोली, वहाँ पर तो कोई नहीं था। तब मोहनदासजी बोले बाई वे खुद बालाजी थे। पर तू देर से गई। तब कानीबाई बोली भाई मुझे भी बालाजी के दर्शन करवायें। मोहनदासजी हाँ भर ली। दो महीने बाद ही फिर उस दरवाजे पर वही आवाज सुनाई दी। इस बार मोहनदासजी खुद द्वार पर गये। देखा बालाजी स्वयं हैं और वापिस जा रहे हैं। मोहनदासजी पीछे हो लिये आखिर बहुत निवेदन करने पर बालाजी वापिस आये। पर वह शर्त रखकर कि खीर—खांड का भोजन खिलाओ और सोने के लिये बिना काम में ली हुई खाट दोगे तो चलूंगा। मोहनदास ने उनकी बात मान ली। बालाजी महाराज घर पधारे। दोनों बहिन—भाई ने बहुत सेवा की। कुछ ही दिन पूर्व ठाकुर सालमसिंह के लड़के का विवाह हुआ था। उसके दहेज में आई हुई बिल्कुल नई खाट थी, सो वह बालाजी के सोने के वास्ते लाई गई तात्पर्य यह है कि मोहनदासजी बालाजी के अनन्य भक्त थे और बालाजी की भी उन पर असीम कृपा थी।’

इसी तरह एक दिन मोहनदासजी के मन में आया कि यहाँ एक बालाजी का मंदिर बनवाना चाहिए। यह बात ठाकुर सालमसिंह जी तक पहुँची पर बात विचाराधीन ही चल रही थी कि तभी गाँव पर किसी की फौज चढ़ आई। अचानक इस स्थिति के कारण सालमसिंह व्याकुल हो गये तब मोहनदासजी बोले डरने की बात नहीं है एक तीर पर नीली झण्डी लगाकर छोड़ दो। बजरंग बली ठीक करेगा। और यही किया गया, जिससे आपत्ति टल गई। इस बात से मोहनदासजी की ख्याति दूर—दूर तक फैल गई। सालमसिंह ने भी बालाजी की प्रतिमा स्थापित करने की पूरी ठान ली। तब समस्या यह आ गई कि मूर्ति कहाँ से मंगाई जाए। तब मोहनदासजी ने कहा असोटा से मंगवा लो। असोटा के सरदार के यहाँ सालमसिंह जी का पुत्र ब्याहा गया था, सो तुरन्त ही असोटा समाचार दिया गया कि एक बालाजी की प्रतिमा भिजवाओ। उधर असोटा में उसी रोज एक खेत में किसान हल चला रहा था, तो अचानक हल किसी चीज से अड़ गया। जब किसान ने खोदकर देखा तो बालाजी की मनमोहक प्रतिमा थी। वह तुरन्त उस मूर्ति को लेकर ठाकुर के पास गया। मूर्ति को देखकर बोला “महाराज ये मूर्ति मेरे खेत में से

निकली है।" ठाकुर साहब ने मूर्ति महल में रखवा ली। ठाकुर साहब भी विस्मित थे क्योंकि मूर्ति में यह खासियत थी कि हाथ फेरने पर सपाट पत्थर मालूम पड़ता है और देखने में मूर्ति लगती है। यह घटना सावन सुदी 9 शनिवार संवत् 1811 (1754 ई.) की है। अचानक असोटा ठाकुर को प्रतिमा में से आवाज सुनाई दी। तब तो ठाकुर ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु जब तीसरी बार बहुत तेज आवाज आई तभी सालमसिंह द्वारा भेजा हुआ आदमी पहुँच गया। इस तरह बैलगाड़ी में मूर्ति चढ़ाई गई और सालासर रवाना की गई। दूसरे रोज इधर सालासर में मूर्ति पहुँचने वाली थी तो मोहनदासजी, सालमसिंह तथा सारा गाँव हरि कीर्तन करते हुए अगवानी को पहुँचे। सब तरह बहुत उल्लास तथा उत्साह था अब समस्या यह खड़ी हुई कि मूर्ति को कहाँ स्थापित किया जाये। आखिरकार मोहनदासजी ने कहा कि इस गाड़ी के बैलों को छोड़ दो जिस स्थान पर ये रुक जाये वहीं पर मूर्ति स्थापना कर दो। ऐसा ही किया गया। बैल अपने आप चल पड़े और तिकोने टीले पर जा रुके। इसी घरे पर बालाजी की मूर्ति वि.सं. 1811 में श्रावण सुदी 10, इतवार को स्थापित हुई। वर्तमान में सालासर हनुमान का विग्रह स्वर्ग सिंहासन पर विराजमान है। मूर्ति की स्थापना के बाद यह गाँव वहीं बस गया। इससे पूर्व यह गाँव वर्तमान नये तालाब से उतना ही पश्चिम में था, जितना अब पूर्व में है क्योंकि सालमसिंह ने इस नये गाँव को बसाया था। इसलिये 'सालासर' (अपभ्रष्ट नाम) नाम पड़ा। इससे पहले वाले गाँव का नाम क्या था, यह पता नहीं चला। कई लोगों का ख्याल है कि यह नाम पुराने गाँव का ही है पर इसके पीछे कोई तर्कसंगत प्रमाण नहीं है। अस्तु प्रतिमा की स्थापना के बाद तुरन्त ही तो मंदिर का निर्माण नहीं किया जा सकता। अतः सालमसिंह के कहने पर सारे गाँव वालों ने मिलकर एक झोंपड़ा बना दिया था। जब झोंपड़ा बन रहा था, तो पास के रास्ते से ही जूलियासर के ठाकुर 'जोरावरसिंह' जा रहे थे। उन्होंने जब यह देखा तो पूछा यह क्या हो रहा है। उन लोगों ने उत्तर दिया कि बावलिया स्वामी जी ने बालाजी की स्थापना की है, उस पर झोपड़ा बना रहे हैं। जोरावर सिंह बोले मेरे पीठ में अदीठ हो रही है, उसे यदि बालाजी मिटा दें, तो मंदिर में पाँच रूपये चढ़ा दूँ। यह कहकर वे आगे बढ़ गये। अगले स्थान पर पहुँचकर स्नान के लिये कपड़े खोले तो देखा कि पीठ में अदीठ नहीं है, उसी समय वापिस आकर उन्होंने गठ जोड़े की जात दी और पाँच रूपये भेंट किये। यही पहला पर्चा था।²

सालासर मंदिर के प्रथम पुजारी उदयराम जी व उनके वंशज पुजारी परिवार ने श्री मोहनदास के बताये मार्ग पर चलकर भक्ति व पूजा की एक नई मिसाल कायम की है। सम्पूर्ण रूप से संगठित व विनम्र स्वभाव के पुजारी परिवार के सदस्यों की मेहमाननवाजी व आदर-सत्कार का आज हर कोई कायल है। अपने नियमों व सिद्धान्तों में बंधे पुजारी परिवार ने श्री बालाजी महाराज की महिमा को चारों तरफ फैलाया है, जिसके फलस्वरूप आये दिन बालाजी के दर्शन करने वालों की भीड़ सालासर में बढ़ती जा रही है। श्री बालाजी महाराज की सेवा पूजा के अलावा सामाजिक कार्यों में भी बढ़चढ़ कर हिस्सा लेने वाले पुजारी के सदस्यों ने समाज में

अपनी अलग पहचान कायम की है। श्री सालासर बालाजी का मंदिर स्थापना के 254 वर्ष से अधिक पूर्ण कर चुका है।³ यहाँ वर्ष भर देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी एवं पर्यटक बालाजी के दर्शन करने पहुंचते हैं। वर्तमान मंदिर का भव्य स्वरूप शेखावाटी के सम्पन्न सेठों की देन है। मंदिर के बीच में एक जाल का पेड़ है जिस पर भक्त अपनी कामना पूर्ति के लिये नारियल और धागे बांधते हैं। हनुमान जयंति यहाँ धूम-धाम से मनाई जाती है। यह स्थल 'सिद्ध हनुमान पीठ' माना जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्र एवं कार्तिक पूर्णिमा को मेला लगता है। आध्यात्मिक श्रद्धा के कारण प्रति मंगलवार व शनिवार को यहाँ लोगों का मेला लगा रहता है यहाँ नवविवाहित जोड़े जात देने आते हैं तथा नवजात शिशुओं का चूड़ाकरण संस्कार भी यहाँ सम्पन्न होता है। इस अवसर पर दाल-बाटी चूरमा व सवामणी करने वालों की भीड़ लगी रहती है।⁴

संदर्भ ग्रन्थ

1. चंडी प्रसाद मिश्र; सालासर बालाजी, दैनिक भास्कर, सीकर, 17 अगस्त 2004, पृ. 14
2. सुभाष बेधड़क; सालासर बालाजी का इतिहास, चौमू, 2007, पृ. 37
3. तारादत्त निर्विरोध; शेखावाटी, (सांस्कृतिक इतिहास के विविध आयाम), जयपुर, 1988, पृ. 154
4. सर्वेक्षण उपरान्त लिखा गया विवरण।



अर्शी खान

शोध छात्रा, कोटा विश्वविद्यालय
कोटा

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

दृश्य चित्रण कला का उत्तरोत्तर विकास

प्रारम्भिक पाश्चात्य दृश्य चित्रण कला – दृश्य चित्रण कला की परम्परा इंग्लैण्ड में 17 वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई परन्तु 18 वीं शताब्दी के मध्य तक इसने कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं दिये सिर्फ रिचर्ड विलसन और थॉमस गेंसबेरो के तैलचित्र और पॉल सेनबॉय, थॉमस गिर्टिन के जलरंगीय दृश्य चित्र ही प्रमुख थे।

18 वीं शताब्दी के अन्त में दो प्रमुख दृश्यकलाकार उभर कर सामने आये जिनमें जॉसेफ मिलियार्ड टर्नर और जॉन कान्स्टेबल प्रमुख थे। अपने जीवन के बीसवें बसन्त में थे। इन दोनों की कला ने 18 वीं शताब्दी के एक प्रमुख भाग में दृश्य चित्रण के क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व जमाया।

जॉसेफ मिलियार्ड टर्नर – 18 वीं सदी के आस पास टर्नर ने स्वयं को जलरंगीय व तैलरंगीय भू-दृश्य चित्रकार के रूप में स्थापित किया। उसने नियमित रूप से रॉयल एकेडमी में प्रदर्शनियों का आयोजन किया। जिसका वह 1802 ई. में सदस्य बना। इस समय तक उसकी शैली में विविधता आ चुकी थी। अपने जलरंग भू-दृश्य चित्रों से उसने कुछ प्रसिद्धि पायी। जिसमें उसने पॉल सेनबॉय और एडवर्ड डाईस की दृश्य-चित्रण परम्परा पर गहन कार्य किया। अपने परममित्र और क्षत्रु थॉमस गिरटिन के साथ टर्नर ने कॉजेन्स की रोमानी शैली को विकसित किया। अपनी तैलरंगीय चित्रण शैली में भी टर्नर विभिन्न दृश्यों के प्रभावों को दर्शाता था। विशेष रूप से डच समुद्री चित्रकार और पारम्परिक दृश्य चित्रण को टर्नर ने अपने समुद्री चित्रकार और पारम्परिक दृश्य-चित्रण को अपने दृश्य चित्रण में प्रस्तुत किया। जिस पर कलौद लोरे और निकोलस पुंस का प्रभाव था एवं रिचर्ड विलसन ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। 1802 ई में टर्नर ने एमियन्स की संधि का फायदा उठाकर अपनी प्रथम विदेशी यात्रा की। फ्रांस तथा स्विज़रलैण्ड में पांच महिने व्यतीत किये। इस यात्रा के दौरान उसमें अल्पाईन के दृश्यों के प्रति आजीवन प्रेम जगा दिया। जो कि उसके जलरंगीय चित्रों 'मेयर दी ग्लेस' 'चेमेनिक्स बिद ब्लेयर्स हट्स' में पूर्ण रूप से प्रकट होता है बाद में टर्नर ने इस स्केच को अपने दृश्य चित्रण का आधार बनाया जो कि उसके गुरु वॉल्टर फॉक्स ऑफ फेनले को समर्पित थी जिमसे कि कलाकार की शैली और उसके रंग सुन्दर रूप से उभरकर सामने आये।

अपनी पेरिस यात्रा के दौरान टर्नर लोब्र में घण्टों बिताता था और अपने से पूर्व महान कलाकारों के महान कार्यों का अवलोकन किया करता था। सन् 1803 में उसने अपना प्रथम क्लोडियन कम्पोज़िशन रॉयल एकेडमी में प्रदर्शित किया।

The festival upon the opening of the vintage at macon (गाड़ियों की रैली)

नेपोलियन के युद्धों ने टर्नर को अगले 15 सालों तक विदेश यात्रा करने से रोका। इसी दौरान उसका ब्रिटिश दृश्य-चित्रण अपनी चरम सीमा तक पहुँचा। सन् 1807 में उसने दृश्य-चित्रण की एक शुद्ध परम्परा प्रस्तुत की जिसमें उसने 'थेम्स नदी' वे नदी, विलसन महलों के दृश्यों को प्रदर्शित किया। उसने इन चित्रों में जलरंगों की अलग-अलग तकनीकों का प्रयोग किया।

टर्नर का एक प्रमुख चित्र ब्रिटिश दृश्य-चित्रण कला का "सम्मर हिल" बहुत ही आकर्षित है। "स्नॉ स्टार्म हेनिबल एण्ड हिज आर्मी क्रॉसिंग दा आल्पस" में टर्नर ने प्रकृति के दृश्यों को अपनी कला कौशल से सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत किया। उसके अधिकतर चित्रों में उसने ऐतिहासिक विषय वस्तु को उसके शीर्षक के साथ प्रस्तुत किया परन्तु यह ऐतिहासिक प्रस्तुतिकरण उसकी दृश्य-चित्रण कला के समाने फीका ही रहा।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि टर्नर ने दृश्य-चित्रण का एक प्रमुख कलाकार होने के बावजूद भी उसने सुन्दर और सरल दृश्यों को प्रस्तुत किया। सन् 1820 ई० से 1830 ई० के बीच उसने 'द रिवर ऑफ फ्रांस' नाम चित्रों की श्रृंखला चित्रित की। सन् 1819 तक टर्नर पहली बार इटली की यात्रा पर गये। वहाँ उसने वेनिस, रोम, नेपल्स, लोरेंस में 5 महिनें व्यतीत किये। इसी दौरान उसने अत्यधिक पेन्सिल स्केच बनाए और दृश्य चित्रण के आंकड़े एकत्रित किये। उसके पास निःसन्देह रूप से एक अति उत्तम मनोस्मृति थी। जिसके कारण वह जिस चीज को देखता था, उसे उसने रंग प्रभावों के साथ ज्यों का त्यों ही पुनः चित्रण कर देता था।

सन् 1820-30 ई. तक उसकी कला में परिपक्वता आ गई थी। उसकी दृश्य चित्रण कला की प्रेरणा का प्रमुख स्रोत 'वेनिस' था। उसके दो प्रमुख दृश्य चित्र 'वेनिस' पर आधारित थे जो तैलरंगीय थे। इस समय के प्रमुख चित्रों में ब्रिज ऑफ साइंस, स्टम हाउस, ज्यूकल पैलेस, वेनिस केनेलेटो पेन्टिंग है। इसी प्रभाव को उसने अपने जीवन के अन्त तक जारी रखा है और कुछ अति उत्तम दृश्य चित्र प्रस्तुत किये। उसके जीवन के अन्तिम दस वर्षों में उसके जलरंग चित्रण एवं तैलरंगीय चित्रों में समानता आयी। सन् 1851 ई. में अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पहले तक टर्नर ने इन दोनों तकनीकों तैल चित्रण व जलरंगीय चित्रण पर कार्य करना जारी रखा।

हम निःसन्देह रूप से कह सकते हैं कि टर्नर 60 वर्ष की उम्र में अपनी कला के सर्वोच्च शिखर पर थे। 'द सेटिंग ऑवर द सी' जो कि सन् 1845 ई० में बनाई गई थी उसमें अमूर्त शैली का प्रभाव आने लगा था जिसमें डूबते हुए सूरज को एक बॉल के रूप में बताया गया है। अपने

बहुत से चित्रों में उसने खुले समुद्र को प्रस्तुत किया और यह पानी है जो उसकी कृतियों में निरन्तर प्रयुक्त किया गया है। यही परम्परा उसकी एक कृति “नॉरहम” (Norham), केसल (Castle), सन राईस में भी दिखाई देती है। इस चित्र में सूर्योदय की सूक्ष्मता से रंगों का तालमेल बताया गया है। ब्रिटिश दृश्य कलाकारों की श्रृंखला में टर्नर एक कल्पनाशील और गुणवान कलाकार सिद्ध हुआ।

रिचर्ड बॉलिंगटन – 19 वीं शताब्दी की क्रांति का ब्रिटिश चित्रकला पर एक प्रमुख प्रभाव पड़ा। यह रिचर्ड के कला जीवन की शुरुआत था जो कि इंग्लैण्ड में जन्मा था। 15 साल की आयु में वह फ्रांस का निवासी बना। 22 वर्ष की आयु में बॉलिंगटन ने चार तैल चित्रण और एक जलरंगीय चित्र की प्रदर्शनी पेरिस सन् 1824 ई० में प्रदर्शित की।

अपने जीवन के अन्तिम चार वर्ष में उसने असंख्य चित्रों और स्केचेज बनाए। आर्कीटेक्चर विषय पर भी बहुत स्केच बनाए। समुन्द्री किनारा उसकी प्रेरणा का प्रमुख स्रोत था।

Fisher folk on the Normady dicost में उसने उत्तम रंगों और प्राकृतिक छाया का प्रयोग किया। सन् 1826 ई० में उसने इटली की यात्रा की। वह प्रमुख रूप से टर्नर से प्रभावित था। उसका स्केच landscape with mountains उसने इटली की यात्रा के दौरान बनाया था। उसकी चित्रण करने वाली पैलेट में तैलरंग व जलरंग दोनों ही रहते थे।

रिचर्ड ने चित्र निःसन्देह रूप से उसके समकालीन दृश्य चित्रकारों में उल्लेखनीय है।

जॉन कॉन्सटेबल – (1776–1837) कॉन्सटेबल अपने मूल निवास को छोड़कर कहीं नहीं गये। आस पास के परिचित देहाती दृश्यों को ही निष्ठा से चित्रित करने में आजीवन लगे रहे। लॉरे के सामान वे पहले बाहर जाकर किसी स्थान पर दृश्य चित्र बनाते थे फिर अपने कार्य क्षेत्र पर जाकर उसे बड़ा रूप देते। शुरु में उनके चित्र भावहीन व अत्यलंकृत थे किन्तु शीघ्र ही इस कृत्रिमता से मुक्ति प्राप्त की। उनके भू-दृश्यों में अब तथ्यात्मक छाया प्रकाश के प्रभाव से जगमगाते व अत्यधिक संवेदनशील अंकन पद्धति से पूर्ण किये दिखाई देने लगे जिसके उदाहरण के रूप में उनके विक्टोरिया व अल्बर्ट संग्रहालय के भू-दृश्य ‘ब्राइटन किनारे कोयलावाही’ व ‘हैम्पस्टेण्ड का बाजार’ को देखा जा सकता है।

छोटे तूलिकाघात, विविधता व कभी रंग पट्टिका, चाकू के प्रयोग से वे अपने रंगांकन को अत्यंत परिष्कृत व जल सदृश्य आकर्षक रूप प्रदान करते। जो इंग्लैण्ड को बहुवर्णाभासी देहाती प्रदेश के प्रकाश व आसमान के अनुरूप था।

कॉन्सटेबल के विश्वविख्यात भू दृश्य चित्र “चारे की गाड़ी” को फ्रेंच राष्ट्रीय प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया। प्रदर्शनी के लिए आये हुए चित्रित वातावरण व भूमि की जगमाहट से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने चित्र ‘कियोस में नरसंहार’ वापस लेकर फिर से प्रदर्शित किया। सन् 1870 ई में जब प्रभाववादी चित्रकार मोने व पिसारो लन्दन थे तब उन्होंने कॉन्सटेबल

और टर्नर के चित्रों का अध्ययन किया था जो अद्भुत था। ये प्रभाववाद के विकास में कुछ हद तक सहायक रहा।

विलियम रशेल लिंट — दिसम्बर 1969 ई० में सर विलियम रशेल 89 वर्ष की आयु में अपने पीछे जलरंगीय चित्रों का विशाल संग्रह छोड़ गये। 'एडिन बर्ग' के रॉयल इन्स्टिट्यूशन्स ऑफ आर्ट्स के विद्यार्थी होने के बाद और विशाल छाया चित्र के सहायक पद के रूप में 6 वर्ष सेवा करने के उपरान्त इन्होंने एक चिकित्सक के रूप में लन्दन जाने का निश्चय किया।

सन् 1903 ई० में वे इलेस्ट्रेटिव लन्दन न्यूज़ से जुड़े जिससे उनकी प्रतिभा ब्रिटिश लोगों तक पहुंची। इन्होंने 'सिबेली सुएटर' नाम युवती से सन् 1905 ई० में विवाह किया। इसके पश्चात् सन् 1907 में वे फ्रीलॉन्स चित्रकार बन गये। जिससे इनको अंको को सीमित संख्या में शास्त्रीय संस्करणों जैसे आर्थर होमर का ओडिसी का विशेषक बनने के लिए प्रेरित किया। इन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध में सेवा की और एयरशिप के सहायता सदस्य बने। इससे वे अपने पैतृक क्षेत्र स्कॉटलेण्ड गये जहां से सन् 1909 ई. में एक छोटा जलरंगीय चित्र बनाया जिसको उन्होंने 'हिल्दास बोनेट' का नाम दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विलियम रशेल लिंट का कला सम्बंधित व्यवसाय अधिक प्रगति पर पहुंच गया। इन्होंने फ्रांस और स्पेन में चित्र बनाए जहां इन्होंने वहां के स्थानीय दृश्य चित्र और उसकी संस्कृति को प्रदर्शित करते हुए आश्चर्यजनक चित्रों का निर्माण किया। सन् 1924 में रॉयल एकेडमी के सहायक निर्वाचित किये गये। सन् 1933 ई. में इसके पूर्व सदस्य बने तथा सन् 1936 ई. में दृश्य-चित्रण कलाकारों की संस्था रॉयल सोसायटी ऑफ पेंटर्स के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त वे तथा उनकी पत्नी लन्दन वापिस चले गये। जलरंग माध्यम द्वारा चित्रण तथा महिला रूप को प्रदर्शित करने की उनकी प्रतिभा ने उनकी अपनी विशिष्ट शैली का निर्माण किया जो कि बाद में महान इतिहास बन गया।

एण्ड्रयू वाइथ — यह पश्चिमी आधुनिक दृश्य-चित्रण कला का प्रमुख दृश्य चित्रकार है। इनके दृश्य-चित्रण का मुख्य आधार प्लेनवॉश पर सूखी तूलिका से चित्रण था। वे तूलिका में रंग कम व निचुड़े हुए तूलिका के ड्राईस्ट्रोक्स (ड्राई ब्रुश) में चित्रण करते थे। इन्होंने एगटेम्परा व जलरंग दोनों माध्यम से चित्रण किया। एग टेम्परा वाले चित्रों में इन्होंने विषय बड़ी गहराई से चित्रित किये हैं।

जैसे घांस के चित्र, तने की छाल, मोज की लकड़ी, पानी की लहरों आदि के चित्र। 'कास्टीना' वर्ल्ड इनका इसी प्रकार एड टेम्परा में बना एक प्रसिद्ध चित्र है। इसमें घांस का सूक्ष्म चित्रण सबका ध्यान केन्द्रित करना है।

यह अधिकतर स्वयं द्वारा निर्मित तूलिकाओं से चित्रण किया करते थे। इन्होंने अपनी चित्रण शैली में नई नई तकनीकों का प्रयोग किया। जैसे खुरचना, धब्बे लगाना, रंग गिराना

आदि। अपनी तूलिका के पीछे वाले भाग को ब्लेड से नुकीला करके घांस का चित्रण करते थे। यह अपनी तूलिका और रंगों के साथ कागज पर छा जाते थे। इनके चित्रों में बहुत अधिक गतिशीलता और लयात्मकता है।

जी रिम विले, काउण्टी, म्यूजियम ऑफ आर्ट्स में दिये गये अपने साक्षात्कार में इन्होंने कहा कि यह ग्यारह तक के ब्रश प्रयोग में लेते हैं। कुल मिलाकर हम कहें तो इनकी दृश्य चित्रण तकनीक में प्रयोगवादी आधुनिक कला का प्रभाव साफ दिखाई देने लगा था।

इन्होंने जलरंग की 'वेट इन वेट' यानि 'गीले में गीले' तकनीक का प्रयोग किया। आकृतियों को इन्होंने बहुत बारीकी से बनाया। इनके दृश्य-चित्र सजीव से लगते हैं। इन्होंने बहुत छोटी तूलिकाओं को भी प्रयोग में लिया है। इन्होंने अपने चित्रों में विविधता उत्पन्न करने के लिए रंगों को बहुत अधिक महत्व दिया है। इनका प्रसिद्ध चित्र वुडस्टोव है। यह चित्र दृश्य-चित्रण की ड्राई ब्रश तकनीक का उत्तम उदाहरण है।

जिस समय पेरिस में नवशास्त्रीयतावादी, रोमांसवादी व यथार्थवादी चित्रकार अंग्र देलाक्रां व कुर्बे के नेतृत्व में एकदूसरे का विरोध हो रहा था पेरिस के समीपवर्ती देहातों में कुछ चित्रकार प्रकृति के सम्पर्क में दृश्य चित्रण करने में व्यस्त थे।

प्राकृतिक दृश्य को प्रत्यक्ष देखकर यथार्थ चित्रित करने का प्रयत्न 19 वीं सदी से पूर्व शायद ही किसी चित्रकार ने किया होगा। इस प्रकार प्रारम्भिक पाश्चात्य चित्रण कला में दृश्य चित्रण कला का कोई स्थान नहीं था। जो भी प्रकृति चित्र बनाए गए वह काल्पनिक होते थे या शास्त्रीयवादी पद्धति के आदर्श से बनाए जाते थे इसका समुचित उदाहरण है पुंस का प्रसिद्ध चित्र 'फोसिया की शवयात्रा' इस चित्र में दृश्य-चित्र की रमणीयता नहीं है और इसमें विषय की महत्वहीन है।

इसके अतिरिक्त 17 वीं शताब्दी के उच्च चित्रकार रॉडस्टाइल का चित्र "कब्रिस्तान" पूर्णतया भावपूर्ण व काल्पनिक है। काले बादल, इन्द्र धनुष व टूटे हुए पेड़, गतिमान झरना भग्न गिर्जाघर, कब्रे आदि वातावरण का निर्माण किया है।

प्रसिद्ध रोमांसवादी जर्मन चित्रकार कास्पर डविड फ्रेडरिश (1774-1840) अपने काल्पनिक दृश्य व प्रकृति चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। उन्होंने 19 वीं शताब्दी के आरम्भिक काल में चित्र निर्मिति शुरू की। वे अक्सर अपने दृश्य चित्रों के वातावरण को पसन्द करते थे। उनके चित्रों में ऊँचे भयानक पहाड़ों, ध्वंसित गिर्जाघरों, वीरान जंगलों का अनतर्भाव प्रचुर मात्रा में है।

बार्बीजा के प्रमुख चित्रकार -

19 वीं शताब्दी में जिन चित्रकारों ने काल्पनिकता को छोड़ प्रत्यक्ष रूप से जिन कलाकारों ने दृश्य चित्रण आरम्भ किया उनमें रूसो, दोमिय, मिले, कोरों प्रमुख थे। चित्रण के लिए चुने हुए स्थानों में पेरिस के निकट बार्बीजा नाम का एक सुन्दर गांव था। इस गांव के नाम से लोग इन चित्रकारों को भी बार्बीजा चित्रकार कहने लगे। इस गांव में सुन्दर बगीचे

थे एवं प्रकृति का मनोहर सौन्दर्य था, वन के आस पास खेत थे और छोटी-छोटी झोपड़ियों में किसान अपने पालतु पशुओं के साथ रहते। इस निष्कपट ग्रामीण जीवन ने बार्बिजा चित्रकारों को आकृष्ट किया।

बार्बिजा के चित्रकारों का मुख्य दृष्टिकोण था प्राकृतिक दृश्यों व ग्रामीण जीवन का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके दृश्य चित्रण करना।

इस प्रकार दृश्य चित्रण की यह परम्परा जो पाश्चात्य कला से प्रारम्भ हुई वह प्रयोगवादी रूप लेती गई।

बार्बिजा चित्रकारों में रूसों सबसे अधिक उत्साही थे और उनसे ही अन्य चित्रकारों को प्रेरणा मिलती थी। उनका चित्र सन् 1834 ई० में राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी के लिए चयनित हुआ परन्तु बाद में राजनैतिक हस्तक्षेप से उनके चित्र चयनित न हो सके। परन्तु प्रकृति चित्रण करने से रूसों को कोई ना रोक सका।

उन्होंने वृक्षों और तृणों के आकारों का गहराई से निरीक्षण किया। उनके चित्रों में मैदान खेत, झरना आदि प्रकृति के अंग व प्रकृति के सुन्दर दृश्यपूर्ण नैसर्गिक व आकार में ठोस दिखाई पड़ते हैं। छाया प्रकाश जैसे प्रकृति के चंचल तत्वों को उन्होंने विशेष महत्व नहीं दिया।

भारतीय दृश्य चित्रण परम्परा एवं भारत के प्रमुख दृश्य चित्रकार

कला सृजन के बारे में आरम्भिक जानकारी आदिम काल से मिलती है। जब आदि मानव अनपढ़ शिलाओं एवं गुफाओं की दीवारों छतों आदि पर अंकन करने लगा तो उसने ऐसी रेखाआकृतियां, आकारों का निर्माण किया जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सहायक थी। इसके लिए वो अनगढ़ पथरों पर टूटी-फूटी रेखाओं व आकारों के द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति गुफाओं और चट्टानों की सतहों पर करने लगा। प्रागैतिहासिक युग के मानव के जो ढांचों, खोपड़ियों और फॉसिल्स के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनके अध्ययन से प्राणी जगत का इतिहास इतना पीछे चला जाता है कि उसको सुनकर या पढ़कर मनुष्य की कला अभिरूचि अतिप्राचीनतम सपष्ट हो जाती है।

प्रागैतिहासिक कलावशेषों की अन्वेषणा करते हुए पुरातत्वज्ञ एवं विद्वानों का अभिमत है कि आज की भांति आदि मानव भी सौन्दर्य उपासक था। सौन्दर्य दर्शन की इसी उत्कृष्ट भावना ने ही उसके अमूर्त भावों को मूर्तरूप में चित्रित करने के लिए उसे बाध्य किया होगा।

आगे चलकर प्रकृति की व्यापक जानकारी के बाद प्रागैतिहासिक कलाकार एक नए रूप में सामने आये होंगे तथा अपना एक समुदाय बनाया होगा। चित्रांकन को लेकर कुछ धारणाएँ भी बनी होंगी। अपने समुदाय के प्रधान होने के नाते चुनिंदा प्रशिक्षुओं के माध्यम से कुछ धारणाओं का प्रसार किया होगा। जब वह शिकारी के खानाबदोश जीवन को छोड़कर सामुदायिक जीवन को व्यतीत करने लगा तत्पश्चात ही प्रागैतिहासिक इमेज मेकर्स अपनी

कल्पनाओं को आकार देने सम्बंधी औजारों को सजाने व अलंकृत करने लगा होगा। धीरे धीरे उनके कार्य का महत्व बढ़ने के साथ ही कलाकारों की संख्या भी बढ़ने लगी।

प्राचीन भारत के अनन्तपुर नाट्यशालाओं देव मन्दिर राजभवन आदि कला के आश्रय बने हुए थे। वेदों ग्रन्थों उपनिषदों में कलाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में कला के मूल स्रोत हमें अनेक पथों से प्रवाहित हुए मिलते हैं। वर्ण-लिपि और चित्र-लिपि के तो स्पष्ट प्रमाण भी मिलते हैं। जिस प्रकार यज्ञ द्वारा वर्ण लिपि का अविष्कार भी हुआ उसी प्रकार चित्रकला वास्तु और स्वर संगी का भी उद्भव हुआ।

भागवत पुराण में ये उल्लेख भी प्राप्त हुआ है कि स्त्रियां चित्रकला में गहरी रुचि रखती थीं इसमें बताया गया है कि वर्णासुर के मन्त्री कुम्भाड़ की कन्या चित्रलेखा स्मृति-चित्रण में अत्यन्त निःपुण थी।

बोध युग में विविध ललित कलाओं का विकास हुआ। इस युग बहुत कुशल कारीगर हुए। राजकीय चित्रशालाओं के साथ जनता के चित्रागार भी थे।

इस प्रकार भारतीय चित्रकला का इतिहास काफी प्राचीन काल से चला आ रहा है और कला का विकास भी उतनी ही गति से चल रहा है इसमें दृश्य चित्रण भी किसी न किसी रूप में विकसित होता आ रहा है।

पाश्चात्य कला का प्रभाव

इसके अतिरिक्त यदि विषय पर दृष्टि से डालें तो मुगल, राजस्थानी व पहाड़ी चित्र शैलियों के विकास क्रम में 1875 के आस पास ऐसा प्रतीत होनी लगा था कि चित्रोपम तत्वों के नन्दतिक सौन्दर्य संयोजन से हटकर स्वाभाविक व फोटोग्राफीनुमा अंकन की ओर हो गया है। जयपुर में महाराजा रामसिंह के समय में फोटो खाने की स्थापना के बाद से जयपुरी चित्रों में छाया-प्रकाश से युक्त अंकन की ओर रुचि बढ़ गई थी और यह चित्रकार अन्य केन्द्रों पर जहां-जहां चित्रण हेतु गए वहां वहां अपने साथ यथार्थवादी शैली को भी ले गये। इसके अतिरिक्त 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' में अंग्रेज अधिकारियों द्वारा लाये गये जलरंगो व तैल चित्रों की यथार्थवादी शैली ने भी चित्रकारों को आकर्षित किया। इंग्लैण्ड व जर्मनी के कागज के आगे रंगो से भी हमारी चित्रण प्रविधि प्रायः विस्मृत होने लगी थी। वैसे यह क्रम अकबर के समय से ही पादरियों के भारत प्रवेश के साथ यूरोपियन चित्रों पर हम देख चुके हैं। लेकिन अंग्रेज अधिकारियों द्वारा बाहर से लाए गये विदेशी चित्रों में प्रयुक्त रंगो व संयोजन में यथार्थवादी शैली के ही दर्शन होते हैं। पुनः छपाई खानों के चित्रों की व्यापारिक स्तर पर मांग होने से चित्रों के शैलीगत गुणों की अवहेलना प्रारम्भ हो चुकी थी। दरबारों व ठिकानों में यथोचित आश्रय न मिलने के कारण भी भारतीय लघु-चित्र परम्परा का अक्षय वट जीर्ण शीर्ण हो चला था। जिसे

पुनःजीवन देने का श्रेय कलागुरु अवनीन्द्रनाथ टैगौर कला समीक्षक आनन्द कुमार स्वामी व ई. वी. हेवल को है।

नादिर शाह व अहमद शाह अब्दाली के हमलों से मुगलिया सल्तनत कमजोर पड़ गई थी। इसके बाद इंग्लैण्ड पुर्तगाल डच देशों के व्यापारिक प्रतिष्ठान भारत से कच्चे माल की प्राप्ति के लिए तथा अपनी औद्योगिक वस्तुएँ भारत के बाजारों में बेचने के लिए मुगल तथा देशी रियासतों से रियासतें प्राप्त करने में लगे हुए थे। इस परम्परा की होड़ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी सबसे आगे निकल गई। असीम धन व उसके अपने सुरक्षा सैनिकों की टुकड़ियों को कम्पनी के अधिकारियों के मस्तिक में राजनैतिक शक्ति केन्द्रित करने व शासक होने की लालसा पैदा कर दी।

सन् 1757 में कम्पनी का देश की राजनैतिक शक्ति पर कब्जा हो गया था जो कि सन् 1857 तक निरन्तर विकसित होता रहा। जिसकी प्रतिक्रिया सन् 1857 के गदर के फलीभूत हुई। इंग्लैण्ड के शासकों ने परिस्थिति का लाभ उठाते हुए सन् 1857 में कम्पनी के शासन के स्थान पर इंग्लैण्ड की सीधी शासन व्यवस्था लागू की और देश पूर्णतः विदेशी सत्ता का गुलाम हो गया।

बस यही से जीवन के हर क्षेत्र से लेकर प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य प्रभाव को प्रधानता दी जाने लगी। अंग्रेजों ने कई कलाकार भारत भ्रमण पर आते यह अपनी नीवन तकनीकों से चित्रण करते। इनसे उस समय के कलाकार भी प्रभावित हो रहे थे। कम्पनी व अंग्रेजी सत्त के सहयोग से पली यह शैली “कम्पनी शैली” कहलाई।

पटना में कम्पनी के अनेक अधिकारियों की कोठियां थी एवं विदेशी चित्रों का संग्रह भी सर्वप्रथम पटना में होने के कारण यह शैली पटना शैली के नाम से जानी जाने लगी।

बाद में अंग्रेज अधिकारी लाहौर, दिल्ली मथुरा, आगरा, लखनऊ, बनारस, मुर्शीदाबाद, पूना, सतारा, तंजोर आदि अनेक स्थानों पर मिल गये थे।

कम्पनी अधिकारियों व अंग्रेज अफसरों ने तत्कालीन भारतीय जन जीवन जैसे मछली बेचने वाला, पतंग विक्रेता, साधु, किसान आदि विषयों में गहरी रुचि ली। इसी के साथ अंग्रेजों ने अपनी संस्कृति की छाप भी छोड़ी। भारत के रजवाड़ों में बने अनेक भित्ति चित्रों एवं लघु चित्रों में अंग्रेज अधिकारियों की जीवन-चर्या स्पष्ट चित्रित की गई है जैसी कुर्सी पर बैठे हुए नृत्य व शराब का आनन्द लेते हुए तथा घुड़सवार के रूप में आदि।

इस शैली की सर्वप्रथम खोज सन् 1943 ई. में पी.सी. मानक ने की और किसी शिवलाल चितेरे के चित्र पटना शहर में उन्होंने ढूँढ निकालें। ईश्वर प्रसाद पटना कलम के अन्तिम कलाकार बताए जाते हैं। चित्र केन्द्रों पर विभिन्न स्थानों, व्यक्तियों अथवा तत्कालीन जनजीवन व हिन्दुओं के धार्मिक देवी देवताओं व उत्सवों के सेट के सेट्स विक्रय हेतु बनाए जाते थे। जिन्हें फिरका कहा जाता था।

मुर्शीदाबाद की बिगड़ती स्थिति से तंग आकर चितेरा, सोवाकराम (सन् 1770-1830 ई.) पटना आ गया था। उसने अनेक प्रचलित विषयों को बड़ी सुन्दरता से उभारा। अनेक चित्र अब 'स्याह कलम' के आधार पर केवल श्याम रेखाओं के माध्यम से रेखांकित किये। बनारस से आये 'हुलासलाल' के भी अनेक चित्र मिलते हैं। हुलासलाल 'लीथोग्राफी' की छपाई के लिये भी चित्र बनाता था। पटना में 'लोदीकटरा' नाम चित्रकारों का एक मोहल्ला बस गया था।

इस प्रकार अंग्रेजों के भारत आगमन पर सभी क्षेत्रों में पश्चिमी प्रभाव आने लगा यहां तक की शिक्षा एवं कलाकार भी इससे अछुते ना रह सके। बंगाल स्कूल भी इस पाश्चात्य कला से प्रभावित हुआ। भू-चित्रण का भारत में गहनता से चित्रण भी इसी स्कूल से आरम्भ हुआ। यहां के कलाकार 'वॉश' तकनीक से देश के अनेक भागों में जाकर भू-चित्रण कार्य करते।

टैगोर परिवार उस समय अपनी अभिजात्य सम्पदा के लिए प्रसिद्ध था। इसी परिवार में कलकत्ते के 'जोरासांको' मार्ग पर स्थित अपने घर से देश प्रेम व स्वसंस्कृति की उभरती पृष्ठभूमि में कला की जनजागृति का भी काम किया। यह जागरण कार्य कला के इतिहास में 'बंगाल स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस जागरण कार्य में अनेक प्रान्तों के कलाविद कला रसिक तथा चित्रकार लगे थे लेकिन इस आन्दोलन का ध्रुव केन्द्र कलकत्ता था तथा इसके अभ्युदय में टैगोर परिवार का मुख्य हाथ था। इसी से यह कला आन्दोलन 'बंगाल स्कूल' के नाम से जाना जाता है।

बंगाल स्कूल या पुनरुत्थान कला के प्रवर्तक अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी प्रतिभा तथा साधना के बल पर जिस शैली का विकास किया वही चित्रशैली दृश्य-चित्रण कला के पुरुत्थान का आधार बनी। फलस्वरूप इस कला का उत्तरोत्तर विकास हुआ और उनके शिष्यों ने अनेक विधाओं को जन्म देकर इस आन्दोलन को व्यापक बनाया। इस शैली में पाश्चात्य एवं पूर्वी दृश्य परम्परा का अद्भुत समन्वय था। इनके चित्रों के विषय अधिकतर भारतीय ही थे।

अवनि बाबू ने जापानी दृश्य चित्रण पद्धति को ग्रहण किया। सन् 1902 ई. में एक प्रतिष्ठित जापानी विद्वान 'ओकाकुरा' भारत में टैगोर परिवार के मेहमान बनकर आये। ओकाकुरा ने जापान वापिस जाने के बाद 'तेकान व हिशीदा' नामक दो महान दृश्य-चित्रकारों को भारत भेजा। तेकान अवनी बाबू के कलागार में कार्य करते थे यही पर दृश्य-चित्रण में प्रयुक्त की गई जापानी तकनीकों वॉश एवं टेम्परा से अवनीन्द्रनाथ प्रभावित हुए।

वॉश पद्धति में एक अच्छे कागज़ पर (प्रायः इंगलिश वॉटमैन कागज़) रेखांकन के बाद जलरंग की पतली तह आकारों व अन्तरालों को भरकर तथा उसके सूखने के बाद उसे पानी के टब में भिगोकर रंग की पतली तह को फिक्स करते थे। इस प्रकार रखने तथा फिक्स करने का क्रम दो बार दोहराया जाता। फिर कुहरानुमा वातावरण कुछ धूमिल रंगों की तूलिका के

सपाट घुमाव से किया जाता था। बाद में फिनिशिंग की जाती थी। यह ब्रिटिश तथा जापानी दृश्य-चित्रण की मिश्रित तकनीक थी।

इस प्रकार इन विदेशी तकनीकों एवं विषयों से प्रभावित कलाकार पूर्ण भारत में कला शिक्षा प्रसार हेतु गए जहां उन्होंने इन भिन्न तकनीकों को आगे बढ़ाया एवं दृश्य-चित्रण परम्परा के नए आयाम खोले।

भारत के प्रमुख सृजनात्मक दृश्य चित्रकार –

कलाकर आदिकाल से ही अभिव्यक्ति के अभिनव रूपों की खोज में निरन्तर प्रयत्नशील रहा है। उसकी इस जिज्ञासा ने उसको नित नये प्रयोगों की ओर आकृष्ट किया है। जब यह नये प्रयोग मान्यता प्राप्त करते हैं तब कलाकार सृजनात्मक व प्रतिभा सम्पन्न कहलाकर समाज में प्रतिष्ठित होता है।

भारतीय दृश्य चित्रण के क्षेत्र में जिन कलाकारों को उनके मौलिक सृजनात्मक कार्य के कारण मान्यता और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है उनमें प्रमुख रूप से हैं अवनीन्द्रनाथ टैगोर, एस एल हलदनकर, नन्दलाल बसु, ए. के. हालदर, क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार, बिनोदबिहारी मुखर्जी, भावेश सन्याल, पी. ए. घोड़, प्रो० कमल सेन, बिमलदास गुप्त, मधुसूदन, कृष्णकेलकर, रामनाथ पसरीचा, शिवाजी रघुनाथ तुपे, जय झारोटिया, अनिल नाईक आदि प्रमुख हैं।

इनमें से लक्ष्य प्रतिष्ठित कई चित्रकार ऐसे भी हैं जिन्होंने पूर्व स्वतन्त्र काल से स्वतंत्रता के बाद तक आधुनिक भारतीय जलरंग चित्रण में अपना अमूल्य योगदान देकर इस कला में जोश उत्पन्न किया।

संदर्भ ग्रन्थ

1. लैण्डस्केप पेन्टिंग ऑफ वेस्टन आर्ट, www.wikipedia.com
2. वेस्टन लेण्डस्केप आर्टिस्ट
3. डॉ० राजीव गर्ग – शोध प्रबन्ध
4. आधुनिक चित्रकला का इतिहास : र.वि. साखंलकर
5. Ray hat M. Modern painting N. Y. 1960
6. Read H. Concise History of Modern Painting London 1959
7. कला अंक सम्मेलन पत्रिका, पृ० 134
8. कला अंक सम्मेलन पत्रिका, पृ० 134
9. भागवत पुराण 10.62.18–21
10. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र एवं कलाएँ , पृ० 117
11. आर.ए. अग्रवाल, कला विलास, पृ० 181
12. आर.ए. अग्रवाल, कला विलास पृ० 181
13. आर.ए. अग्रवाल, कला विलास पृ० 181

तमेघ राम
रिसर्च स्कोलर
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

राजस्थान की मूर्तियों में सांस्कृतिक समन्वय

भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड तथा उसकी आधारशिला दर्शन है। प्राचीन भारतीय कलाएं धर्मरूपी वट-वृक्ष की छत्र-छाया में पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित हुईं। देव-परिवार के उद्भव की एवं एवं विकास की गौरव गाथा इसकी सजीव तथा जीवन्त व्यञ्जय्या है। मंदिर एवं उसकी कलात्मक मूर्तिकला उसकी परिणति है। इस दृष्टि से राजस्थान का मूर्तिकला में विशिष्ट योगदान है तथा मूर्तिकला के जो पदम यहां प्रस्फुटित हुए वे भारतीय कला की धरोहर है।¹

राजस्थान के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से भिन्न-भिन्न धर्मों और सम्प्रदायों से संबंधित मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियां मनुष्य की आस्था तथा विश्वास की अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं हैं अपितु अत्यधिक सम्पन्न, वैविध्यपूर्ण, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि की मूर्त प्रस्तुतियां हैं। ये मूर्तियां केवल सौन्दर्यपकर एवं कलात्मक मूल्यों की ही झलक प्रस्तुत नहीं करती बल्कि सांस्कृतिक समन्वय का भी उत्कृष्ट परिचायक हैं।

राजस्थान में वैष्णव मूर्तियां:-

वैष्णव धर्म अपने विकास के प्रारंभिक स्वरूप में विभिन्न सम्प्रदायों का समन्वित रूप था। वासुदेव-संकर्षण सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र मथुरा था। यहां से यह धर्म राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा देश के अन्य प्रदेशों में प्रचलित हुआ। वैष्णव धर्म के विकास के साथ संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा साम्ब का भी वासुदेव-विष्णु में इस रूप में समावेश किया गया कि वे विष्णु के व्यूह माने जाने लगे। वे व्यूह सृष्टि की विभिन्न अवस्थाओं के सूचक हैं एवं सांख्य सिद्धान्त से सम्बद्ध हैं।² विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियां राजस्थान से प्राप्त हुई हैं। मूर्तिकारों ने भी इन अवतारों की लोकप्रियता से प्रभावित होकर महाकाव्यों एवं पुराणों में इनसे सम्बद्ध कथा-वर्णनों को अपनी पाषाण-अभिव्यक्ति का आधार बनाया है। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंहावतार आदि विष्णु अवतारों की मूर्तियां राजस्थान में वैष्णव धर्म के विकास की एवं उसके उद्देश्यों की गाथा प्रस्तुत करती हैं।

राजस्थान में पशु रूप में वहरा का एक उत्कीर्णन (10वीं शताब्दी) चन्द्रभागा के मंदिरों के ध्वंसावशेषों से प्राप्त होता है।³ इस प्रतिमा में चार भुजाओं वाली शेषनाग की मूर्ति का वराह

के सम्मुख लेटे हुए रूप में अंकन किया गया है। विष्णु का वामन रूप सामान्यतः विष्णु के आयुधों से युक्त चतुर्भुज या ब्रह्मचारी वेश में कमण्डल छत्र और दण्ड लिए हुए अंकित किया गया है। विष्णु की अन्य मूर्तियों में जलशयन मूर्तियां राजस्थान में विशेष उल्लेखनीय हैं। इसका उदाहरण राजस्थान में हमें बाड़ोली (कोटा) के एक छोटे से मंदिर जलशयन(शेषशायी) की प्रतिमा गर्भगृह में स्थापित थी।⁴ राजस्थान में विष्णु की त्रिमूर्ति या विश्वरूप मूर्ति गंगोबी (कोटा) से प्राप्त होती है।⁵

राजस्थान में शिव-मूर्तियां :-

राजस्थान में वैष्णव मूर्तियों के साथ-साथ शिव मूर्तियों की बहुतयाता है। इन मूर्तियों की भाव-भंगिमा और कला ने दर्शक को अपनी तरफ आकर्षित किया है। राजस्थान के अन्दर शिव-पूजा को हम दो रूपों में पाते हैं— (i) लिंग के रूप में एवं (ii) मानव के रूप में। गामड़ी (भरतपुर) में एक शिवलिंग पर दो बृहदोदर यक्ष अंकित हैं। यह द्विमुख लिंग का उदाहरण है।⁶ मेवाड़ में आहड़, नागदा, चित्तौड़गढ़, बाड़ोली के शिवालयों के गर्भ भाग में स्थापित चतुर्मुखी लिंग प्रतिमाओं में साम्यता है।⁷ राजस्थान में एक अत्यन्त सुंदर चतुर्मुख शिवलिंग कन्सुआ(कोटा) में है। इस मंदिर की तिथि 8 शताब्दी के एक अभिलेख के आधार पर निश्चित है, जो मंदिर के निर्माण के समय यहां लगाया गया था।⁸

राजस्थान में शिव की सौम्य मूर्तियों में सर्वाधिक प्रिय विषय उमा-माहेश्वर है। कालिका माता (चित्तौड़गढ़) के मंदिर में उमा-माहेश्वर मूर्ति में शिव मात्र दो भुजाओं युक्त अंकित किए गए हैं। एक हाथ में कमल तथा दूसरा पार्वती के वाम स्कन्ध का स्पर्श करते हुए है।⁹ राजस्थान में उमा- माहेश्वर मूर्तियां नागदा (उदयपुर), झालरापाटन (झालावाड़), बाड़ोली (कोटा), कामां (भरतपुर) तथा अन्य भागों से जहां शैव धर्म लोकप्रिय था, प्राप्त हुई हैं।

शिव की वर्णनात्मक प्रतिमाओं में कल्याणसुन्दर (शिव विवाह) मूर्ति अत्यन्त आकर्षक तथा प्रसिद्ध है। संहार मूर्तियों में "शिव" को रौद्र रूप में राक्षसों का विनाश करते हुए विकराल भाव में प्रदर्शित करने का विधान है। संहार मूर्तियों के क्रम में भैरव मूर्तियों का अंकन शैव मंदिरों में प्रदर्शित किया गया है। नृत्य मूर्तियों में शिव की साध्य, ताण्डव तथा नादन्त नृत्य की मूर्तियां प्राप्त होती हैं। राजस्थान में चन्द्रभागा के समीप नवदुर्गा में संरक्षित नटराज शिव की मूर्ति में उत्तर भारत की नटराज प्रतिमाओं की सभी विशेषताएं हैं।¹⁰

राजस्थान में युग्य मूर्तिस्वरूप :-

भारतीय मूर्तिकला में प्रकृति और पुरुष के एक्यभाव के समन्वय को प्रदर्शित करने के लिए प्रत्येक देवता के साथ उसकी शक्ति को प्रदर्शित करने तथा धार्मिक समन्वय को व्यक्त करने के लिए शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं एवं शक्तियों के युग्म रूपों को शिल्प में निर्मित करने की एक लम्बी परम्परा रही है।¹¹ उपसंय, एकात्मवाद तथा पंचायतन पूजा की संकल्पना ने साम्प्रदायिक

समन्वय को और अधिक बल दिया। पंचायतन पूजा के अन्तर्गत विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य तथा शक्ति के पांच प्रतीकों की एक साथ पूजा की जाती थी। इसके अतिरिक्त वैष्णव, शैव, जैन धर्मों के एक ही स्थान पर मंदिरों का निर्माण उनके अनुयायियों के उदार दृष्टिकोण का भी परिचायक है। उपकेशपुर (ओसियां, जोधपुर), पार्श्वनगर (पड़ानगर, अलवर), चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) आदि प्राचीन मंदिरों के नगर उनके सहिष्णु दृष्टिकोण के ही परिचायक हैं।

संयुक्त मूर्ति के अन्तर्गत हरिहर मूर्ति एक ही प्रतिमा में आधा शिव तथा आधा विष्णु का शरीर प्रस्तुत करती हैं। राजस्थान में हरिहर मूर्ति के सबसे प्राचीन तथा अन्यतम उदाहरण ओसियां के दो वैष्णव मंदिरों से प्राप्त होते हैं।

अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाओं में एक ही प्रतिमा में आधा शरीर शिव तथा आधा शरीर उमा का अंकित किया जाता है। संयुक्त मूर्ति का यह रूपांकन शैव तथा शाक्त धर्मों के समन्वय का द्योतक है। यह संकल्पना दोनो सम्प्रदायों के अनुयायियों के विरोध तथा मतवैभिन्न्य को नियंत्रित रखने की दृष्टि से की गई थी। छोटी सादड़ी (राजस्थान) के भावरमाता के मंदिर के अभिलेख में पार्वती द्वारा शिव के प्रति भक्ति एवं श्रद्धा से अभिभूत होकर शिव का आधा शरीर बन जाने का उल्लेख है।¹²

अध्ययन से ज्ञात होता है कि यद्यपि हरिहर तथा अर्द्धनारीश्वर की संयुक्त मूर्तियों के अंकन की परंपरा कुषाण काल से प्रचलित थी परंतु एक प्रतिमा में तीन या चार देवताओं के समन्वय की संकल्पना 10वीं शताब्दी से ही प्रारंभ हुई। उपरोक्त प्रतिमाओं से विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों में धार्मिक समन्वय तथा सहिष्णुता के विकास की सीमाओं का ज्ञान होता है।

राजस्थान में देवी प्रतिमाएं –

पुरातात्विक एवं पुरालेखीय प्रमाणों के आधार पर राजस्थान में शक्ति-पूजा का प्रचलन ईस्वी शताब्दी के प्रारंभ से माना जा सकता है। देवी के अंकन का प्रारंभिक पुरातात्विक उदाहरण नगर (कर्कोटनगर, टोंक) से प्राप्त एक पकाई हुई मिट्टी का ठीकरा है जो आधुनिक आम्बर संग्रहालय में सुरक्षित है। शक्ति के सभी अवतारों में महिषमर्दिनी रूप पूजा तथा मूर्तिकला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक लोकप्रिय था। देवी के सप्तमातृका स्वरूप की मूर्तियां भी राजस्थान से प्राप्त हुई हैं। देवी के अन्य स्वरूपों में लक्ष्मी, सरस्वती, क्षेमकरी तथा गौरी इस युग के कुछ महत्वपूर्ण मूर्त रूपांकन हैं। साहित्यिक तथा पुरातात्विक स्रोतों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मातृकाओं के समान ही लक्ष्मी और सरस्वती भी सभी संप्रदायों यथा हिन्दू, जैन तथा बौद्ध द्वारा मान्य एवं पूजित थी। इसका कारण विभिन्न धर्मों में सहिष्णुता तथा समन्वय का भाव था।¹³

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों से भिन्न-भिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों यथा- वैष्णव, शैव, जैन तथा बौद्ध आदि की मूर्तियां प्राप्त होती हैं तथा ये सभी मूर्तियां अपनी विशिष्ट पहचान रखते हुए भी सांस्कृतिक समन्वय की मूर्त प्रस्तुतियां हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. नीलिमा वशिष्ठ, "राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 1
2. डी. आर. भण्डारकर, " हाथी बाड़ा ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन एट नगरी" एपीग्राफिया इन्डिका 12, पृ. 203-204
3. यह प्रतिमा झालावाड़ संग्रहालय में सुरक्षित है, मूर्ति संख्या, 213
4. भण्डारकर, " टेम्पल्स ऑफ ओसियां", 1908-09, पृ. 109
5. नीलिमा वशिष्ठ, "राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा", पृ.70
6. रतनचन्द्र अग्रवाल " गामड़ी (भरतपुर) का अद्वितीय शिवलिंग" शोध पत्रिका 1972, पृ. 67
7. विष्णु प्रकाश माली, मेवाड़ की मूर्तिकला, शर्मा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ. 59
8. नीलिमा वशिष्ठ, स्कल्पचरल ट्रेडिशन ऑफ राजस्थान, जयपुर
9. नीलिमा वशिष्ठ, पूर्वोक्त, पृ. 84
10. विष्णु प्रकाश माली, मेवाड़ की मूर्तिकला, पृ 88-89
11. डॉ. पकंजलाल श्रीवास्तव, "हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान" पृ. 332
12. दिनेश सरकार, " टू इन्सक्रिप्शन ऑफ गौरी छोटी "सादड़ी", पृ. 121-22
13. रतन चन्द्र अग्रवाल, ए टेरिकोटा प्लेक फ्रॉम नगर, राजस्थान ललित कला 1960, पृ. 72-73



अंकित पारीक

व्याख्याता

स्टेनी मेमोरियल पी.जी. कॉलेज

जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

तबले के घराने व उनकी वादन शैली

आज से लगभग 300 वर्ष पूर्व भारत की ऐतिहासिक नगरी दिल्ली में बादशाह सिद्धार खाँ नामक एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ने प्राचीन ताल वाद्य की आकृति एवं वादन शैली पर संशोधन करके उस पर नवीन बोल-बंदिशों की रचना करके उन्हें अपने वंशज एवं शिष्यों को सिखा कर एक क्रांतिकारी कदम उठाया। फारसी भाषा के प्रधान्य के कारण वह वाद्य जो तबल कहा जाता था। कुछ समय उपरांत तबला नाम से संगीत जगत् में प्रसिद्ध हुआ। चूंकि उस्ताद सिद्धार खाँ दिल्ली के निवासी थे। अतः तबले में उनका घराना दिल्ली कहलाया।

दिल्ली घराना और आज सभी घरानों का जनक है। दिल्ली के शिष्य देश के विभिन्न नगरों में फैल गये और वहाँ स्थायी रूप से बस गये। इन लोगों ने अपने वादन में स्थानीय परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार संशोधन किए तथा अपनी निजी प्रतिभा एवं सृजनशक्ति के आधार पर परिवर्तन करके अपने बाज को अपनी अलग-अलग पहचान दी। इस प्रकार भारतीय संगीत में विविध घराने अस्तित्व में आये।

दिल्ली घराने की वादन शैली:-

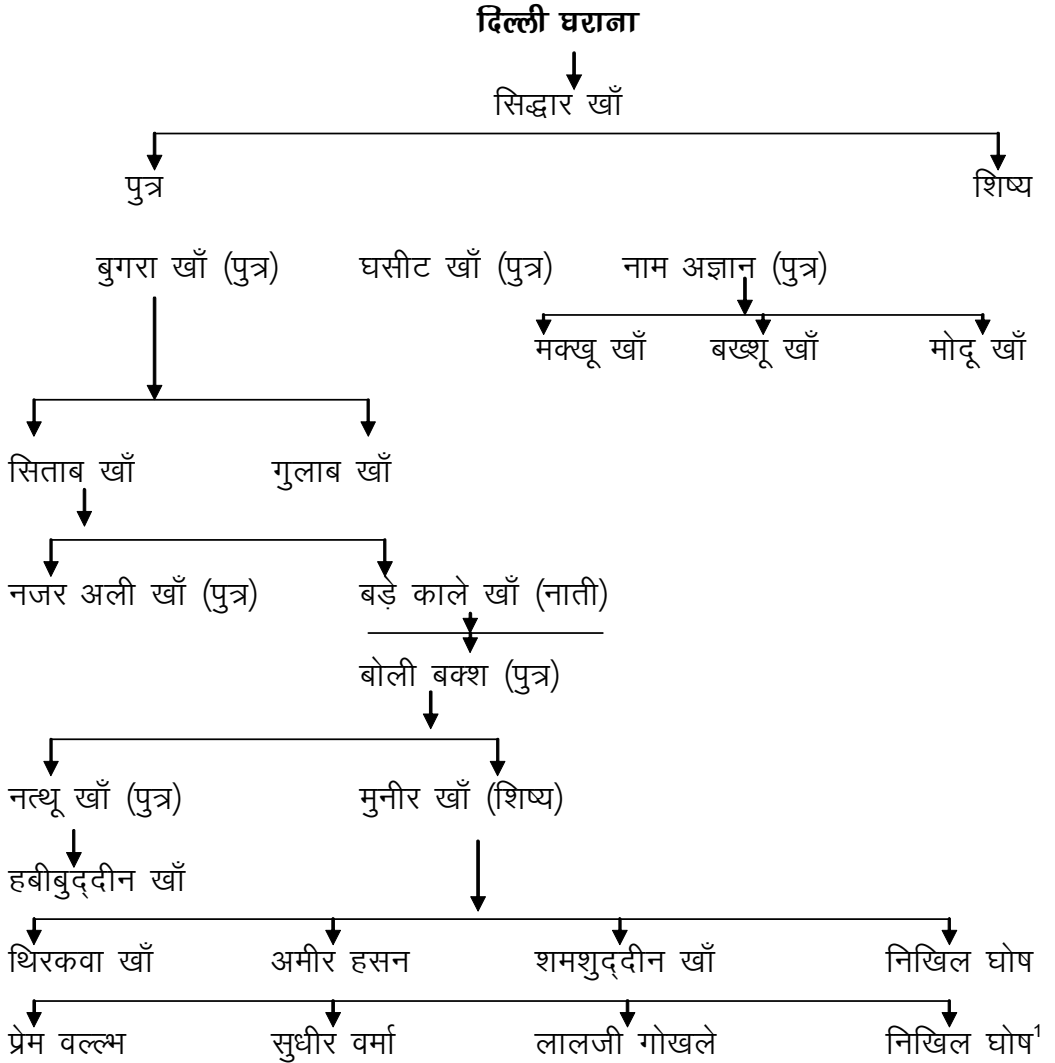
दिल्ली बाज में दो अंगुलियों का प्रयोग अधिक होता है। यहाँ अधिकतर बोल किनार, चांटी और स्याही के होते हैं। अतः इसको किनार का बाज भी कहते हैं। दूसरे बाजों की अपेक्षा यह अधिक कोमल बाज है। इसमें धिन गिन, तिट, तिरकिट त्रक आदि बोलों का अधिक प्रयोग होता है। यहाँ कायदे पेशकार, नया रेले और छोटे मुखड़े, मोहरे और टुकड़े अधिक होते हैं। बड़े जोरदार परन तथा छन्दों का प्रयोग इस बाज में नहीं के बराबर किया जाता है।

उदाहरण में एक कायदा:- (ताल-तीनताल 16 मात्राएँ)

धाति धागे नधा तिरंकिट धाति धागे तीना कीना
x 2

तति तागे नता तिरंकिट धाति धागे धीना गीना¹
0 3

दिल्ली बाज में स्वतंत्र तबला वादन का आरम्भ पेशकार से होता है। यह फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है – प्रस्तुत करना। अतः पेशकार के अन्तर्गत कलाकार संक्षिप्त रूप में अपने वादन की झलक पेश करते हैं। कुछ स्थानों पर पेशकार को फर्शबंदी भी कहते हैं। फर्शबंदी का अर्थ जमीन तैयार करना होता है अर्थात् पेशकार के माध्यम से वह ठोस आधार तैयार किया जाता है, जिस पर बाद में वादन की भव्य अट्टालिका खड़ी होती है। यह दिल्ली घराने की एक ऐसी विशेषता है, जिसे दूसरे घराने के कलाकारों ने भी किसी न किसी रूप में अपनाया है।



अजराडा घराने की वादन शैली:-

अजरोड़ घराने की वादन शैली की आत्मा दिल्ली की ही है। केवल उसके बाह्य रूप में थोड़ा अंतर आ गया है। अतः दिल्ली बाज के समान यह भी सुन्दर और मधुर बाज है।

दिल्ली और अजरोड़ के बाज में विशेष अंतर यही है कि अजरोड़ के कायदे आड़लय में तथा डगमगाते हुए चलते हैं। इसमें बांधे के बोलो की अधिकता रहती है।

अजराडा बाज के कायदे का एक उदाहरण (ताल तीनताल):-

धिंSS x	धागेन	धास्त	धागेन		धात्रक 2	धागेन	धागेधी	नागिना
गिनधा 0	ऽगिन	धाSS	धाSS		धात्रक 3	धागेन	धागेती	नाकीन
तिंSS x	तागेन	तास्त	तागेन		तात्रक 2	तागेन	तागेती	नाकीन
गिनधा 0	ऽगिन	धाSS	धाSS		धात्रक 3	धागेन	धागेधी	नागिना

अजराडा घराना:-

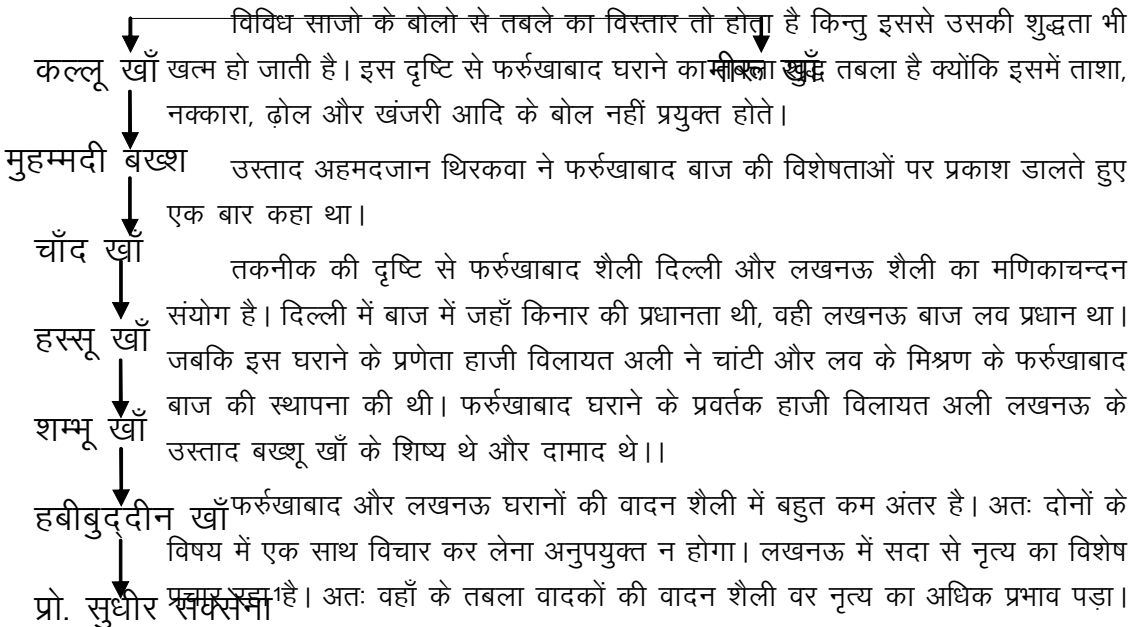
इस घराने का नाम दिल्ली के निकट मेरठ जिले के एक गांव अजराड़े के नाम पर पड़ा। यहाँ के मूल निवासी कल्लू खाँ और मीरू खाँ जो सगे भाई थे, ने दिल्ली जाकर उस्ताद सिद्धार खाँ के पौत्र सिताब खाँ से तबले की शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् इन्होंने दिल्ली की वादन शैली में कुछ परिवर्तन कर एक नवीन शैली को जन्म दिया, जिस शैली को अजराड़ा बाज कहा गया और जिस-जिस व्यक्ति ने इस शैली से वादन किया, उसे अजराड़ा घराना का ही अंकुश कहा जाने लगा।

डॉ. आबान ए मिस्त्री के अनुसार इस घराने के मूल प्रवर्तक कल्लू खाँ और मीरू खाँ की वंश परम्परा में मोहम्मदी बख्शा, चांद खाँ, काले खाँ, कुतुब खाँ, तुल्लन खाँ घीसा खाँ हुए।

इस घराने के प्रमुख तबला वादकों में उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ का नाम श्रेष्ठतम है।

अजराड़ा घराना

फर्रुखाबाद घराना



फलस्वरूप कायदे, पेशकार, रेले आदि तो बजाये जाते थे परन्तु बड़े-बड़े और जोरदार टुकड़े तथा परनों का विशेष चलन हो गया। फर्रुखाबाद की वादन शैली में चाले तथा रौ का काम विशेष रूप से उल्लेखनीय है और गते भी बहुत प्रसिद्ध है। घागे, तिट, गादि, गिन, धिडनग आदि बोल समूहों का अधिक प्रयोग होता है।

फर्रुखाबाद घराने की एक गत का उदाहरण है – (ताल-तीनताल)

धाSS x	घेनक	तकिट	घेनक 2	धातिरकिट	धातिट	घेनक	दिगिन्
नगिन् 0	जागिन्	तकिट	घेनक 3	धातिरकिट	धातिट	घेनक	दिगिन् 1

बनारस घराना:—

भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनारस शुरु से ही संगीत और संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है इसलिए संगीत की समस्त विधाएँ यहाँ पल्लवित और पुष्पित होती रही है। यद्यपि यहाँ के तबले का इतिहास सन् 1797 में जन्मे पं. रामसहाय मिश्र के काल से ही आरंभ होता है। किन्तु तबला वादन की यहाँ काफी पहले से रही है। भले ही उस परम्परा को बहुत महत्व नहीं मिला। तबले का इतिहास इसका प्रमाण है कि पं. रामसहाय जी बचपन से ही अपने पिता पं. प्रकाश मिश्र और चाचा से तबला वादन की शिक्षा प्राप्त करते रहे।

बालक रामसहाय जी ने सन् 1807 में 10 वर्ष की उम्र में मोदू खॉ लखनऊ से भी तबला सीखना आरंभ किया और यह अनवरत 12 वर्षों तक चला।

पं. रामसहाय जी ने 12 वर्षों तक लखनऊ में रहकर उस्ताद मोदू खॉ साहब से तबले की शिक्षा प्राप्त की।

पं. रामसहाय सम्भवतः लखनऊ घराने के ही अनुयायी बनकर रह जाते, किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था और परिस्थितियों के आगे नतमस्तक व रामसहाय मिश्र को बनारस आकर बनारस घराने की नींव डालने के लिए विवश होना पड़ा। दरअसल हुआ यह है कि अपनी बिरादरी के दबाव में आकर उस्ताद मोदू खॉ ने पं. रामसहाय से गुरु दक्षिणा में यह वचन मांग लिया कि आज के बाद वह न तो लखनऊ घराने का तबला कहीं बजायेंगे और न ही किसी को सिखायेंगे। वचनबद्ध रामसहाय जब लखनऊ से बनारस पहुंचे तो उनका तबला वादन सुनने और उनसे सीखने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। लेकिन रामसहाय उन्हें टालते रहे। आखिर यह सूचना धीरे-धीरे लखनऊ से बनारस तक पहुंची ही गयी कि पं. रामसहाय अपने उस्ताद को गुरु दक्षिणा में दिए वचन में बंधे हुए हैं और तब रामसहाय जी को एक अलग घराने के निर्माण का निर्णय लेना पड़ा।

वादन शैली:—

बनारस घराने के अधिष्ठाता पण्डित रामसहाय जी लखनऊ के उस्ताद मोदू खॉ के शिष्य थे। अतः लखनऊ की वादन शैली की सभी विशेषताएँ तो बनारस में आई ही और साथ-साथ वहाँ की सामाजिक स्थिति तथा संगीत के प्रभाव से वादन शैली में अंतर आ गया। बनारस सदा से हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति का केन्द्र रहा है। अतः इसके प्रधान से तबला अलग न रह सका। यहाँ पखावज का अधिक प्रचार होने के कारण बाज खुला और जोरदार हो गया। आज भी बनारस पूरब की दुमरी के लिए बहुत प्रसिद्ध है। अतः तबले में लग्गी-लडी का काम अधिक होना आवश्यक था और वही हुआ भी। छन्द, जोरदार परन, गत लग्गी-लडी बजाना बनारस की विशेषता है, थाप, लौ स्याही का काम अधिक तथा धिरधिर धटेधेन, कडान, गदिगिन आदि बालो का अधिक प्रयोग होता है।

पंजाब घराना:-

विभिन्न विद्वानों का मत है कि यह घराना स्वतंत्र है अर्थात् इस घराने का उद्भव दिल्ली घराने से नहीं हुआ है। इस घराने का आविष्कार पखावज के आधार पर किया गया है, जिसका तर्कसम्मत प्रमाण यह है कि पंजाब में ही बाएं तबले पर पखावज के समान स्याही के स्थान पर आटा लगाने की प्रथा विद्यमान है। इसी संदर्भ में पं. किशन महाराज जी का तथ्य है — बनारस घराना तबले का जन्म स्थान पंजाब को मानता है। आज भी पंजाब में बांया के ऊपर आटे की स्याही लगाकर वादकगण वादन करते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि मृदंग का आधार लेकर सर्वप्रथम पंजाब में ही निर्मित किया गया और पखाओज नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा इसका प्रमाण पं. किशन महाराज जी ने इस उदाहरण के द्वारा दिया कि सिद्धार खॉ के पौत्र उस्ताद मोदू खॉ की शादी पंजाब की किसी तबला वादक की लड़की से हुई, जिसमें 500 पंजाबी गते मोदू खॉ को दहेज में दी गई थी। इससे स्पष्ट होता है कि पंजाब में तबला काफी प्राचीन काल से था और आज भी भारत का समस्त तबला घराना पंजाबी गतों को तबले का एक प्रमुख अंग मानता है।

तबला के पंजाब घराने के मूल पुरुष के रूप में पखावजी लाला भवानी दास का नाम लिया जाता है।

तबले के पंजाब घराने के प्रमुख केन्द्र लाहौर के प्रसिद्ध पखावज वादकों उस्ताद कादिर बख्श (प्रथम), हदु खॉ, ताज खॉ और उनके पुत्र नासिर खॉ तथा (खस्बे) हुसैन अली (टोलकिया) के पुत्र अमीर अली के गुरु के रूप में लाला भवानी दास का ही उल्लेख मिलता है।

कहा जाता है कि यहाँ फकीर बख्श जी ने पखावज के खुले बोलों को बन्द करके तबले की एक पृथक शैली का निर्माण किया। इस प्रकार पखावज की सारी विशेषताओं से यह बाज परिपूर्ण है अर्थात् इसमें खुले व जोरदार बोलों का प्राधान्य है।

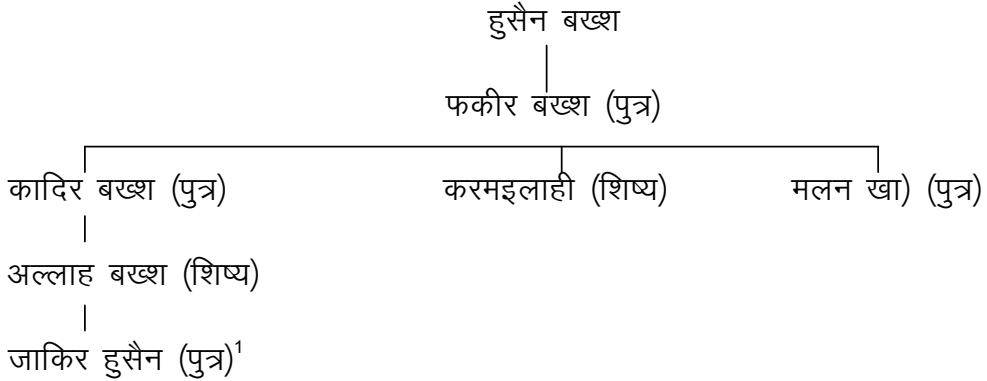
पंजाब बाज के कायदे प्रायः काफी लम्बे होते हैं, विलम्बित लय में भी कायदे का पूर्वार्द्ध आठ व उत्तरार्द्ध आठ मात्राओं का होता है। इसके अतिरिक्त लम्बी-लम्बी गत परनों तथा विभिन्न लयकारियों युक्त गतों को बजाने की प्रथा इस बाज में बजाई पाई जाती है। पंजाब में चकुरदार गतों का वह प्रकार अधिक मिलेगा, जिसमें तीनताल की चक्करदार का एक पल्ला 21 मात्रा का होता है। पंजाब में विभिन्न तालों का तीनताल के समान विस्तार से बजाया जाता है।

पंजाब की वादन शैली में वहाँ की भाषा का भी बहुत प्रभाव देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ टांकी (चाँटी), धेर-धेरकिटमक (धिर-धिरकिट) धाती के स्थान पर धात का उच्चारण किया जाता है। बांये तबले पर मींड देना इनकी विशिष्टता है, यहाँ कायदे का प्रचार बहुत कम है। अपितु जो बजाये जाते हैं, वे लयकारी युक्त व काफी जटिल होते हैं। यह बाज मुख्यतः गतों व रेलों के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर धिनाड, धिडन्त, कृतन्त, धाडागेन आदि तथा ठेके में धाती, धाड़ा तथा अति हुत में धरेकेत तेरकेत बोलों का अधिक प्रयोग किया जाता है।

पंजाब घराने की रचनाएँ (पंजाबी गतें):-

गते –तीनताल में

- | | | | | |
|-----|-----------------|-------------|-----------------|--------------------------|
| (1) | कऽत धेतेट्, | कतगदिगिन्, | धातिरकिटधेतेटे, | कतगदिगिन्, |
| | धाऽतीऽधाऽ, | गिदीईनाड्, | धातिरकिटधेतेटे, | कतगदिगिन्, |
| | तकतकतेन्, | किडनगतेन्, | धातिरकिटधेतेटे, | कतगदिगिन्, |
| | धाऽतीऽधाऽ, | गिदीईनाऽड्, | धातिरकिटधेतेटे, | कतगदिगिन्, |
| (2) | धगेऽतककिट्, | धगनगधेन्, | धागेतिरकिटधेन्, | धडेनगधेन्, |
| | धडानघा, | धाधिडनग्, | धेनधेडनग्, | तिरकिटतूनाकत्ता, |
| | तकतेनतक, | ताकिडनक, | तककेडनक, | तिरकिटतकतगेन्, |
| | धागेतिरकिटधेन्, | धेडनगधेन्, | धेडनगधेन्, | धेडनगधेन् ¹ , |

**संदर्भ ग्रंथ**

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत तबला अंग (1993), संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र.
2. भगवत शरण शर्मा, ताल प्रकाश (1981), संगीत कार्यालय, उ.प्र.
3. गिरिश चन्द्र श्रीवास्तव ताल परिचय भाग-2 (2009) रूबी प्रकाशन, बी-629, गुरु तेग बहादुर नगर, (बरेली), इलाहाबाद
4. पं. विजय शंकर मिश्र तबला पुराण (2005) कनिष्ठ पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4697/521 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
5. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन (2002) कनिष्ठ पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स 4697/521 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

6. डॉ. लाल मणि मिश्र, भारतीय संगीतवाद्य (2005), भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली
7. हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव राग परिचय, भाग-2(2009) संगीत सदन प्रकाशन, 134, साउथ मलाका, इलाहाबाद
8. सत्यनारायण वशिष्ठ, ताल मार्तण्ड (2002) संगीत कार्यालय, 204101 (उ.प्र.)
9. डॉ. वसुधा सक्सेना, ताल के लक्ष्य, लक्षण स्वरूप में एकता (2006), कनिष्ठ पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स 4697/521 ए, अंसारी रोड, नई दिल्ली
10. डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, (संपादक) ताल तरंग अंक (1999), संगीत कार्यालय, उ.प्र.



भावना शर्मा
शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

विश्व परिदृश्य में हिंसा के संदर्भ में अहिंसा परमोधर्म: की आवश्यकता

भारत में अहिंसा के पुजारी के रूप में महात्मा गांधी (बापू) को जाना जाता हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवने में 'अहिंसा परमोधर्म:' के सिद्धान्त पर कार्य किया व अपने प्रत्येक कार्य में वे सफल भी हुए। गांधीजी ने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन की लड़ाई भी इसी सिद्धान्त पर जारी रखी। गांधी जी के इस मूल मंत्र के आगे आखिरकार अंग्रेजों को झुकना ही पड़ा। गांधी जी के इस मूल मंत्र "अहिंसा परमोधर्म:" से आज के युग में कोई समस्याओं का समाधान हो सकता है –

वर्तमान समय में अमीरी व गरीबी के बीच का अन्तर लगातार बढ़ता जा रहा है।, इससे वैश्विक विकास असंतुलित हुआ है। इस दिग्भ्रमित काल को दिशा देने में गांधीय दर्शन पूर्णतः समर्थ है। गांधी इराक मसले पर अमेरिका अतिवादियों का विरोध करते, सद्दाम हुसैन को भी कुर्दा पर किए जा रहे अत्याचारों व नर संहारों के लिए अहिंसा आंदोलन चलाते, अफगानिस्तान में लादेन और मुल्ला उमर को इस्लामिक आदर्शों और जिहाद की सही व्याख्या बताते। गांधीवादी तरीकों से अमेरिका और पश्चिमी देशों की मदद गरीब के द्वारा बराबरी के आधार पर की जाती ना कि दया या भिक्षा के आधार पर ।

आज सम्पूर्ण विश्व विनाश के कगार पर खड़ा है और बारूद के ढेर पर खड़े सम्पूर्ण विश्व के बचाव हेतु 'अहिंसा परमोधर्म:' ही एक मात्र विकल्प है। क्योंकि इस मूल मंत्र का केन्द्र बिन्दू मानवता है और वर्तमान में जितनी भी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं उनके मूल में मानवता की उपेक्षा है। आतंकवाद रूपी विषवृक्ष को फलने-फूलने का अवसर आर्थिक पिछड़ापन, बेरोजगारी, शोषण व अन्याय की प्रवृत्तियों, नवयुवकों में तीव्र असंतोष, अवैध शस्त्र निर्माण, शासक व शासित में संवादहीनता नैतिक आदर्शों का पतन आदि कारणों ने दिया। इन्सानी संबंधों से पैदा होने वाली इस समस्या को पार्शाविक शक्ति की अपेक्षा अहिंसात्मक तरीके से और नैतिक सामर्थ्य के बल पर सुलझाया जाना चाहिए।

अत्याचारी के प्रति नम्रतापूर्ण समपर्ण नहीं है, वरन् इसका तात्पर्य अत्याचारी की मनमानी इच्छा का आत्मिक बल के आधार पर प्रतिरोध करना है। गांधी दर्शन की यही अहिंसावादी नीति आतंक का मुकाबला कर दूरगामी स्थायी परिवर्तन का प्रतिफल दे सकती है।

“ आतंक से जुड़े मामलों में 2005 के बाद से अधिकतर मामले सुनवाई तक पहुंचने से पहले ही बिखर गए हैं। 26/11 हमले के दोषी अजमल आमिर कसाब को मई 2010 में सुनाई सजा के अलावा सिर्फ एक मामला सुनवाई तक पहुंचा है और वह है 7 सितंबर, 2011 को दिल्ली हाइकोर्ट में धमाका। इन सबके पिछे एक बड़ी समस्या यह भी है कि पुलिस की तैयारी को भ्रष्टाचार की धुन लग चुकी है।

कसाब ने बताया था कि उसे आतंकवाद का प्रशिक्षण लश्कर-ए-तैयबा से मिला इस प्रशिक्षण में उसे नृशंस हत्याएँ करने को कहा गया था। अगर कसाब को इस प्रशिक्षण के स्थान पर अगर गांधी दर्शन समझाया जाता तो शायद वह इन गुनाहों को करने से बच सकता था।

मनुष्य स्वभाव से शान्तिप्रिय प्राणी है और वह हमेशा हिंसक गतिविधियों से बचने का प्रयास भी करता है, लेकिन कुत्सित मानसिकता के भटकने के कारण वह अपने साथ-2 दूसरों के जीवन का संकट भी बन जाती है। इसका एक उदाहरण है आतंकवाद निरोधी दस्ते के प्रमुख हेमंत करकरे की मौत। करकरे, अशोक कामरे व विजय सालस्कर पर 26 नवंबर, 2008 को अजमल कसाब व उसके साथी इस्माइल खान ने हमले कर उनकी हत्या कर दी थी। करकरे मालेगांव बम विस्फोट की जाँच में लगे थे। जिसमें हिन्दू अतिवादी तत्वों जैसे ले. कर्नल श्रीकान्त प्रसाद पुरोहित, साध्वी प्रज्ञा ठाकुर और स्वामी असीमानंद को गिरतार किया गया था। इस परिपेक्ष्य में गांधीजी का संदेश है कि जब सामान्य लोग असामान्य कार्य करने के लिए एकजुट होते हैं तो युगान्तकारी बदलाव संभव है। आतंकवादियों के कार्यों का भुगतान उनके परिजनों को करना पड़ता है। उन्हे सदमा व जिल्लत उठानी पड़ती है। बम धमाको में सुलगते शरीर, रोते सिसकते घायल, अपनों को तलासती सूनी पथराई आंखे, बिलखते बच्चे व कसमकसाते माता-पिता, बूत बनी विधवाएँ, खौफनाक मंजर पैदा कर मानवता को चूर-चूर करता आतंकवाद। ऐसी स्थितियाँ हाल ही में जुलाई, 2012 व अगस्त 2012 को असम व इलाहबाद, और लखनऊ में देखने को मिली इन घटनाओं को बढ़ावा देने वाले कोई बाहर से नहीं आए थे। वे तो यहीं हमारे आसपास व हममे से ही कोई एक है। एक एमएमएस भेज कर पूरे असम को हिला दिया। इससे उनके मन को तो राहत मिली होगी लेकिन लाखों-करोड़ों का सुख-चैन छिन गया। ऐसी स्थितियों को सामान्य बनाने में सामाजिक सांस्कृतिक जनसंगठन अध्यापन से जुड़े अध्यापक, रचनाधर्मी तपस्वी लोगों के सतत् प्रयास से शिक्षित वर्ग नासमझ, धर्मान्ध, पथभ्रष्ट लोगों को “अहिंसा परमोधर्म” का पाठ पढ़ाकर उनको यह महसूस करवा सकता है कि दूनियां में उनका जन्म घृणा व विनाश के लिए नहीं वरन् प्रेमपूर्वक रहने व सृजनात्मक कार्यों के लिए हुआ है। आतंकवाद एक नासूर बनता जा रहा है यह एक ऐसी बीमारी हैं जो एकबार लग जाने पर अगर उसकी अनदेखी की जाए तो पूरे शरीर को नष्ट करके ही दम लेती है। समय रहते अगर उस बीमारी से ग्रस्त अंग को काट कर फेक देने में ही समझदारी है। ऐसी घटना का एक उदाहरण

है मुंबई में जुलाई, 2011 में हुए बम धमाके। यह सिलसिला 3 जुलाई, 2006 में लोकल ट्रेन में हुए सात बम धमाकों के साथ शुरू हुआ, जिसमें 209 लोग मारे गये थे। जुलाई, 2006 व जुलाई, 2011 में हुए बम धमाके एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उस समय बम धमाके का समय 6.30 से 7.00 बजे के बीच का था व इस्तेमाल किया गया पदार्थ अमोनियम नाइट्रेट था। जुलाई 2011 में भी समय लगभग 6.30 से 7.00 के बीच व उपयोग किया गया पदार्थ भी अमोनियम नाइट्रेट ही था। अगर इस घटना पर 2006 में ही अगर सही कार्यवाही की जाती तो शायद जुलाई 2011 में यह स्थिति दोबारा पैदा नहीं होती।

अगर इन हमलावरो को 2006 में ही दबोचा जाता तो शायद 2011 में यह नहीं होता। अगर इन आतंककारियों को अहिंसा का पाठ पढ़ाया जाता, सत्याग्रह की ताकत बताई जाती व गांधीजी के द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन की ताकत से वाकिफ कराया जाता तो हो सकता था इनका हृदय परिवर्तित किया जा सकता था। जिससे लोग इन गुनाहों को करने से बच जाते व अमन व चैन का रास्ता अपना कर अपने घर परिवार के साथ सुख से रहते।

“ 22 जुलाई को कोकराझार में हुई हिंसा में क्या बड़े व क्या बच्चे किसी को नहीं छोड़ा गया।” इस तरह के दंगे का मकसद मारकाट से ज्यादा लोगों को उनके घरों से बेघर करना है। असम के कुछ मुस्लिम संगठनों का आरोप था कि सरकार हमलावरों के साथ मिली हुई है। ऑल बीटीडीए माइनोंरिटी स्टुडेंट्स यूनियन के अध्यक्ष सैफुल हक कहते हैं कि “ 22 जुलाई को हमारे गाँव में कोई सरकारी बल नहीं आया था। लेकिन उस दिन हमले के दौरान हमें एक गोली मिली थी, जो असम पुलिस की थी। बड़े युवा हमारे ऊपर गोलियां बरसा रहे थे।” अगर उन बड़े युवाओं को गांधी दर्शन पढ़ाने व समझाने वाला, अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाला शिक्षक मिला होता तो शायद उनके हाथों में बन्दूकों के स्थान पर पेन की ताकत होती।

ऐसा ही खौफनाक मंजर बलूचिस्तान में क्वेटा के पास 2011 में तालिबानी हमले में धू-धू कर जलते नाटो के टैंकर आतंकवाद का ही तो उदाहरण है। पाकिस्तानी तालिबान में पाकिस्तानियों पर की गई हिंसा और तबाही ने तो राज्य की वैद्यता को ही चुनौती दे डाली। नव गठित तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान ने सिलसिलेवार बम धमाकों से अपनी पहचान गढ़ी पूर्व प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो की हत्या इसीने करवाई थी। धीरे-धीरे इसके इलाके का विस्तार होता चला गया। इन आतंकियों की शिक्षा अगर गाँधीवादी होती तो उनकी बुनियाद सही व सुदृढ़ होती। आज गाँधीजी के आदर्शों व गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही हैं जो इस मुश्किल दौर से हमें बाहर निकाल सकती है। 26/11/2008 में हुए मुंबई पर हमले के आरोपी कसाब को 21 नवंबर, 2012 को फाँसी दी गई। फाँसी पर लटकाए जाने से पहले कसाब ने अपने गुनाहों की माफ़ी माँगी उसने अल्लाह से कहा कि ‘ऐसी गलती दोबारा नहीं होगी। अल्लाह मुझे माफ़ करे।’ उसके पश्चाताप के मूल में यही बात छिपी हुई है कि यदि उसकी नींव में किसी ने गाँधीवादी विचारधारा रखी होती तो वह इस रास्ते पर कभी

भी नहीं चलता। अर्थात् उसे भी कोई अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाला मिला होता तो आज उसका ये हस्र ना होता।

“ आज इस ग्लोबल संसार के सामने जो विश्वस्तरीय चुनौतियाँ हैं, उन्हें देखते हुए गांधी दर्शन आज भी उतना ही स्वीकार्य है जितना पहले था, शायद उससे भी कहीं ज्यादा।”

आज गांधीवादी विचारधारा पूरे विश्व को एक नई दिशा दे रही है। गांधी दर्शन की एक नई व्याख्या हमारे सामने है। आतंक, बिखराव और दहशत से जूझते हुए विश्व को इन दिनों में 'अहिंसा परमोधर्म' ही एक मात्र ऐसा सूत्र है जो इस विश्व को एक नया रास्ता दिखा सकता है।

आतंकवाद के निवारण हेतु हिंसा को अपनाने के कारण ईराक और अफगानिस्तान नष्ट हो गए। यही हाल यदि विश्व में चारों ओर दिखाई देने लगे तो मानवता क्या लाशों को ढेर पर बैठकर खुशियाँ मनाएगी। प्रतिहिंसा का जो अंतरिम दौर शुरू हुआ है व आतंकवाद से भी ज्यादा खतरनाक है। इसमें गांधीय तकनीक ही विश्व शांति को अग्रदूत मानी जाती है।

गांधी जी ने कहा था— “ हिंसा की सीमा है और वह असफल हो सकती है, अहिंसा की कोई सीमा नहीं है और यह कभी असफल नहीं हो सकती है।”

गांधीजी के अहिंसक क्रान्ति के विचारों का प्रभाव भारत में नहीं बल्कि पूरे विश्व में देखने को मिलता है। इसका एक उदाहरण है – संयुक्त राज्य अमेरिका में नीग्रो लोगों के नेता मार्टिन लूथर किंग जिन पर गांधीजी का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने अमेरिका समाज और शासन में नीग्रो विरोधी भेदभावपूर्ण एवं अलगाव की नीति की समाप्ति हेतु अहिंसक आन्दोलन चलाया। इस पर मार्टिन लूथर ने कहा था “अतः मुझे अब भी विश्वास है कि अहिंसा में महान शक्ति है और हमें इस पथ, पद्धति व दर्शन की, तब अनुसरण करने की इच्छा होनी चाहिए, जब तक हम अलगाव के अभिशाप और अलगाव की नीति का क्रियान्वयन समाप्त न कर दें।”

एक अहिंसक व्यक्ति किसी को अपना शत्रु नहीं समझता और वह किसी के प्रति दुर्भावना भी नहीं रखता महात्मागांधी द्वारा प्रस्तावित प्रस्तुत अहिंसा की इस व्याख्या का सत्यापन उनकी हत्या के कुछ दिन पूर्व की घटना से होती है, जब गांधी की सांयकालीन प्रार्थना सभा में बम फेंका गया। उन्होंने इस घटना की पूर्ण रूपेण उपेक्षा कर दी थी। इस घटना को लेकर उन्होंने पुलिस से अनुरोध किया था कि वह “उस युवक को सताने की बजाय, समझा-बुझा कर उसके हृदय परिवर्तन का प्रयत्न करें।”

काश उनकी इस बात का उस युवक पर कुछ असर होता तो बापू हमारे बीच कुछ दिन और रहते। यदि समाज, विश्व में आज भी कोई बापू की तरह अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाला होता तो ये हिंसात्मक घटनाएँ नहीं होती।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि “महात्मा गांधी का देहान्त हो गया, किन्तु गांधीवादी उस समय तक जीवित रहेगा जब तक तारे चमकते हैं और सागर मचलते हैं।” उनकी यह बात आज सत्य साबित हो रही है।

गांधीजी ने विश्व के सामने यह सिद्ध कर दिया कि एक शस्त्र हीन पराधीन राष्ट्र लुटेरे साम्राज्यवादियों के चंगुल से अहिंसा व सत्य के द्वारा मुक्त हो सकता है। बेशक अहिंसा को एकांगी मान्यता में से यह दुष्फलित देखने में आता है। अध्यात्म एवं धर्म आदि संज्ञाओं के साथ भी ऐसा मनमाना व्यवहार हुआ है। पर यह तो मानव प्राणी का दोष है जो हर शब्द को अपने प्रयोजन की नीचाई तक खींच लाता है।

गांधीजी के षब्दों में अहिंसा परम धर्म है जिसका अभिप्राय मैं यही लेता हूँ कि हर स्थिति में अहिंसा संगत है। अहिंसा पर भाषा निर्भर नहीं है वह भाव में है।” हिंसा का रास्ता बंधुत्व तक नहीं पहुंच सकता। पर अहिंसा के बल से ही एकता बढ़ सकती है और विश्व- बन्धुत्व आ सकता है।

गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता को समय-समय पर विश्व की बड़ी हस्तियों ने स्वीकार किया है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री गार्डन ब्राऊन, अमेरिका राष्ट्रपति बराक ओबामा, नेल्सन मण्डेला व दलाई लामा जैसे धर्म गुरुओं के लिए गांधी जी हमेशा प्रेरणा स्रोत रहे।

आगामी सदी की चुनौतियों के प्रति चिंतित किसी भी अध्येता के लिए उपयुक्त मार्ग प्रदर्शित करने वाले व्यक्तित्व का नाम गांधी है। अहिंसा के सारे उपदेशों और मानवता की दुहाई के बावजूद यह दुनिया एक ज्यादा क्रूर दुनिया के रूप में हमारे सामने है। हिंसा का बढ़ना, सामाजिक विखण्डन का तेज होना। इसके कारण मानवता में आस्था को बचाए रखने वाली चीजें लगातार कम हुई हैं ऐसे में गांधी को नकार देना संभव नहीं होगा। मानवीय सम्बन्धों एवं सामाजिक संरचना की नवीन और वैकल्पिक अभियांत्रिकी जो गांधी ने बताई है वह हमें हमारे अस्तित्व को बचा सकने में समर्थ हो सकती है। गांधी समसामयिक परिस्थितियों में और भी प्रभावी हो गये हैं।

आज भी हिंसक घटनाएं घट रही हैं जिसके निवारण का एक मात्र उपाय अहिंसा सत्याग्रह व गांधीवाद है—

1. दैनिक भास्कर में छपी एक खबर सीरिया: रासायनिक हथियारों के इस्तेमाल का खतरा हिंसा का एक ताजा उदाहरण है, सीरिया की राजधानी दमिश्क में बमबारी हो रही है जिसके कारण वहाँ की दैनिक क्रियाएँ भी प्रभावित हुई हैं। इस हिंसा के कारण लोग देश छोड़कर भागने को मजबूर हैं। [दैनिक भास्कर दिनांक 5.12.2012 देश-विदेश (dainikbhaskar.com)]

आजकल आए दिन ऐसी घटनाएँ घटित हो रही हैं, जिसके कारण हिंसा भी शर्मसार हो रही है, जैसे कि नवजात बच्चों को लोग मरने के लिए छोड़ जाते हैं, यह किसी हिंसा से कम नहीं है।

2. दैनिक नवज्योति में छपी खबर “नक्सलियों ने तीन वाहनो को जलाया”। यह घटना छत्तीसगढ़ के सुकमा जिले की है, जिसमें नक्सलियों ने नेशनल हाइवे निर्माण में लगे तीन वाहनों

को जला डाला। हिंसक गतिविधियों तब तक बढ़ती रहेगी, जब तक हम इनका डटकर मुकाबला नहीं करेंगे। मुकाबले का अर्थ केवल हिंसा नहीं है इसे खत्म करने का एक तरीका अहिंसा भी है। इन नक्सलियों को भी अगर अहिंसात्मक तरीके से अपनी बात मनवाने का मार्ग पता होता तो ये ऐसी घटनाएँ कभी-भी घटित नहीं होती। [दैनिक नवज्योति दिनांक 5.12.2012 (www.dainiknavajyoti.com)]

3. जनसत्ता दिनांक 5.12.12 : चौपाल मे अमन चैन नाम से छपी खबर के लेखक गुप्ता अक्षित आदित्य राज ने आतंकवाद पर लिखा है- पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी आइएस आई आतंकवादी प्रशिक्षण शिविरों में आतंकवादी तैयार करते है। जो विश्व मे दहशत फैलाने का काम करते है। जिन्होंने पाकिस्तान की शह पर भारत के पंजाब व जम्मू- कश्मीर में भी दखल दिया। यह एजेन्सी आज आतंकी संगठनों को अमेरिका के खिलाफ इस्तेमाल कर रही है, जिसके कारण अमेरिका और 'नाटो' देशो की सेनाएँ मिलकर भी इन आतंकी संगठनों पर काबू नहीं कर पाई है। इसलिए अमेरिका को अब आईएस आई की शैतानियों पर चुप नहीं रहना चाहिए और तुरन्त उनके पर कतरने चाहिए। वरना पाकिस्तान के आतंकी शिविरों में तैयार हो रहे आतंकवादी अमेरिका के हितों के विश्व के अमन-चैन को तहस-नहस करना पहले की तरह जारी रखेंगे।

सरकार व आतंकवादी दोनों ही एक दूसरे में भय उत्पन्न करना चाहते है। परिणामतः न आतंकवादी शान्ति से जी पाता है और न ही सरकारें निश्चित रह सकती है और न ही जनता भय मुक्त रह सकती है। इसिलिए आतंकवाद के मनोविज्ञान को समझना आवश्यक है। जहाँ अहिंसा की स्वीकारोक्ति ही न है वहाँ उसकी सफलता और विफलता बेमानी ही। हमें अहिंसा पर संदेह है इसी कारण इसका प्रयोग नहीं किया गया। अहिंसा की अपनी पूरी प्रक्रिया है जिसे दृढ़ विश्वास के साथ हि आजमाना होगा।

आतंकवादियों के ब्रेनवांशिग की प्रक्रिया को पूर्ण रूप से अन्जाम दिलाने के लिए, शिक्षक, संत, शिक्षण संस्थान, बुद्धिजीवी वर्ग व प्रचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।

मानवीय सभ्यता को विध्वंस से बचाने के लिए आतंकवाद से युद्ध अपरिहार्य है। लेकिन युद्ध हिंसक ही हो आवश्यक नहीं। हिंसा का हिंसा से तत्कालीन समाधान तो हो सकता है पर स्थायी समाधान नहीं। सह अस्तित्व का मूल आधार स्वयं के अस्तित्व के साथ दूसरों के अस्तित्व की सहज स्वीकृति है। आतंकवाद के समाधान में संघर्ष से इन्कार नहीं किया जा सकता पर गांधीय तकनीक द्वारा असत्य के विरुद्ध इसी तकनीक का प्रयोग कर सदभावना व प्रेम से संघर्ष में सफलता की अधिक संभावनाएं है। इसके लिए हमें अपने साथ-साथ अन्य लोगों की महत्ता को स्वीकार कर उनका सम्मान करना होगा।

वर्तमान समय में अमीरी व गरीबी के बीच का अन्तर लगातार बढ़ता जा रहा है, इससे वैश्विक विकास असन्तुलित हुआ है। इस दिग्भ्रमण काल को दिशा देने में गांधीय दर्शन पूर्णतः

एक सत्याग्रही अपने विरोधी को जिस धर्म-संकट में लाता है वह है— यदि एक मनुष्य अहिंसात्मक आन्दोलन को कुचलने हेतु विरोधी शक्ति का प्रयोग करता है, शांतिमय तथा निहत्थे सत्याग्रहियों को पीटता है, उनकी हत्या करता है तब वह जनता तथा तटस्थ संसार का नैतिक समर्थन खो देता है, जिससे उसकी स्थिति दुर्बल हो जाती है। इसका उदाहरण — दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में सत्याग्रहियों के विरुद्ध अत्याचार करने पर उनको व्यापक लोक समर्थन मिला।

अहिंसा का नैतिक शस्त्र एक दोहरा वरदान है। यह केवल उसे ऊँचा ही नहीं उठाता जो उसका प्रयोग करता है अपितु उसे उदात्त भी बनाता है। क्योंकि सहर्ष और धैर्यपूर्वक कष्ट सहना व्यक्ति को शुद्ध करता है, और उसके नैतिक बल को पुष्ट करता है।

आज सम्पूर्ण विश्व में विनाश के कगार पर खड़ा है और बारूद के ढेर पर खड़े सम्पूर्ण विश्व के बचाव हेतु अहिंसा परमोधर्म ही एक मात्र विकल्प है। क्योंकि इस मूल मंत्र का केन्द्र बिन्दु मानवता है और वर्तमान में जितनी भी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं उनके मूल में मानवता की उपेक्षा है।

आतंकवाद रूपी विषवृक्ष को फलने-फूलने का अवसर आर्थिक पिछड़ा पन, बेरोजगारी, शोषण व अन्याय की प्रवृत्तियों, नवयुवकों में तीव्र असन्तोष, अवैध शस्त्र निर्माण, शासक व शासित में संवादहीनता नैतिक आदर्शों का पतन आदि कारणों ने दिया।

इंसानी संबंधों से पैदा होने वाली इस समस्या को पार्श्विक शक्ति की अपेक्षा अहिंसात्मक तरीके से और नैतिक सामर्थ्य के बल पर सुलझाया जाना चाहिए।

आज विश्व में आतंकवाद की समस्या सर्वग्रहित हो गई है ऐसी स्थिति में अहिंसक आन्दोलन ही आशा का प्रतीक है भारत में गांधी से पूर्व भी अहिंसा परमो धर्म की मीमांसा की गई जो आज सम्पूर्ण विश्व की आवश्यकता है।

इतिहास से हमें यह सबक याद रखना चाहिए कि हिंसा-प्रतिहिंसा का रास्ता हमेशा विनाश की ओर ही ले जाता है। स्थायी बुनियादी और वास्वतिक समाधान अहिंसा द्वारा ही निकल सकता है। हमें कभी प्रतिशोध का समर्थन नहीं करना चाहिए। प्रतिहिंसा मानव के लिए हितकर नहीं है। प्रतिशोध की बजाय हमारी नीति प्रतिरोध की होनी चाहिए। अगर हम समस्याओं के चक्रव्यूह से निकलना चाहते हैं तो अपने भीतर में देखने का प्रयास करें। अन्दर से जो कुछ निकलेगा, उसी का नाम है— “अहिंसा”। उसी का नाम है—मैत्री। अन्यथा हम मकड़ी की तरह अपने ही जाल में उलझते रहेंगे। गांधीजी ने अपनी विशिष्टता निश्चितता के साथ बड़े ही दृढ़ शब्दों में कहा था: “हमें हिंसा के क्षेत्र में अद्भुत आविष्कारों से सतत् चकित किया जा रहा है, लेकिन मैं मानता हूँ कि अहिंसा के क्षेत्र में इनसे भी अधिक चमत्कारी आविष्कार किये जायेंगे।”

जिस प्रकार अहिंसक प्रतिरोध या आत्मबल का शस्त्र गांधीजी ने इस संसार को दिया है, वह विश्वभर के ज्ञानी पुरुषों की शोध का परिणाम व सुफल है। जब हिंसा और युद्ध का समर्थन होता है, तब कपट और क्रूरता के हक में प्रथम बलिदान होता है— सत्य और सज्जनता का फिर बारी आती है देश की एकता की। अहिंसा का दर्शन किसी एक धर्म, एक देश या एक काल से सम्बन्धित नहीं है। यह धर्म, हर इलाके एवं हर काल में है।

अगर हम सुख शांति परस्पर मैत्री एवं अच्छे सम्बन्ध चाहते हैं तो वाणी की अहिंसा का विकास करें। किसी के लिए कटु शब्द न निकलें। किसी के मर्म पर अँगुली न उठाये। किसी पर आक्षेप न करें। अगर मधुर वाणी का विकास कर लिया जाए तो बहुत सारी समस्याओं से छुटकारा मिल जायेगा। परस्पर के जो कड़वे—तीखे सम्बन्ध हैं, उनमें जरूर सुधार होगा और पारस्परिक, पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक संबंधों में मधुरता आयेगी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. इंडिया टुडे (28 नवंबर 2012) अवरण कथा राष्ट्रीय सुरक्षा
2. इंडिया टुडे च्ण16, 18 जुलाई 2012 -26/11 मुंबई हमला (आवरण कथा)
3. इंडिया टुडे च्ण14 27 जुलाई 2011 आंतकी हमला (आवरण कथा)
4. डेका कौशिक राष्ट्र असम च्ण26 इंडिया टूडे 8 अगस्त 2012
5. बर्क जैसन – जखम जो बन गए नासूर (आंतरिक संकट पाकिस्तान) इंडिया टूडे, पृ. 32 (22 अगस्त 2012)
6. डॉ. रतु कुमार कृष्ण – गांधी दर्शन (आधुनिक दौर में गांधी दर्शन, पृ. 39)
7. गांधी दर्शन मीमांसा – विनोषा, मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) व महात्मागांधी, पृ. 207
8. विश्वनाथ टंडन : दी सोशियल एण्ड पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ सर्वोदय आटर गांधी
9. डॉ. रामजी सिंह : गांधी दर्शन मीमांसा
10. कुमार कौशल : महानव्यक्ति और विचार – राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पृ. 226-228
11. कुमार जैनेन्द्र : अकाल गांधी पुरुष – अहिंसक आरम्भ, पृ. 226
12. सूद ज्योति प्रसाद :- भारतीय राजनीतिक विचारक, महात्मागांधी, पृ. 42
13. (गोस्वामी किशनगिरी : 16-30 नवम्बर 2012 सर्वोदय जगत अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र, पृ. 14



ज्योति श्रीवास्तव

शोध छात्रा

चित्रकला विभाग,

पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

राजस्थान में शैव धर्म (750 ए.डी. – 1000 ए.डी.)

राजस्थान में प्रमुखतया शैव, शाक्त तथा वैष्णव देवताओं की पूजा की जाती थी। इनमें मुख्य रूप शिव, वराह, ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु, कात्यायिनी देवी तथा अम्बिका देवी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान में शिव-पूजा को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। चौहान, प्रतिहार, परमार तथा गुहिल वंश के शासक मुख्य रूप से शिव के उपासक थे। शिव को मूर्ति के रूप में पूजा जाता था। शिव और पार्वती की संयुक्त प्रतिमाएं भी पूजी जाती थी। कई स्थानों में शिव-लिंग की पूजा के भी उल्लेख मिलते हैं।

लकुलीश शिव के अवतरों में विशेष उल्लेखनीय है। शिव उपासक अनेक सम्प्रदायों में विभक्त थे। एक लिंग माहात्म्य में पाशुपत सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है।

पाशुपत सम्प्रदाय के भक्त 'पंचारथामनाय' दर्शन के अनुयायी थे। संसार से मुक्त होकर तथा सभी दुःखों और कष्टों का परित्याग करने के बाद योग-साधना द्वारा इन्द्रियों के संयम को विशेष महत्व दिया जाता था। आत्मा के वशीकरण के बाद सर्वज्ञान और सर्वशक्ति को प्राप्त कर अन्त में महेश्वर में विलीन होना ही पाशुपत योगियों का मुख्य ध्येय था।¹ इस सम्प्रदाय के योगी शरीर पर भस्म लगाते थे, भूमि उनकी शैया थी और भिक्षादान से जीवन यापन करते थे।²

चौहान राज्य में शिव उपासना को विशेष महत्व दिया जाता था। चौहान राजा भर्तृवर्द्ध द्वितीय महेश्वर का परम भक्त था।³ हर्षनाथ के शिव मन्दिर की पूजा सभी चौहान शासकों द्वारा की जाती थी।⁴ वाक्पतिराज और हिंसराज ने पुष्कर में शिव मन्दिर का निर्माण करवाया था।⁵ वाक्पतिराज की माता रूद्राणी पुष्कर में शिवलिंग के समक्ष प्रतिदिन 1000 दीप जलाती थी।⁶ मेवाड़ में भी अनेक शिव मन्दिर मिलते हैं। प्रसिद्ध एकलिंग जी का मन्दिर परम्परा के अनुसार गुहिलोत राजा बापा ने बनवाया था। इसके समीप ही लकुलीश का मन्दिर है। नरवाहन लकुलीश का पुजारी था।⁷ चित्तौड़ में परमार राजा भोज ने भी शिव के त्रिभुवन नारायण मंदिर का निर्माण करवाया था।⁸ चाटसू के गुहिल राजा शंकरगण की पत्नी यज्जा शिवभक्त थी।⁹ प्रतापगढ़ के अभिलेख में शिव दुर्गा की स्तुति की गई है।¹⁰ कल्याणपुर में

महाराजा पद्र के काल में किसी अज्ञात व्यक्ति ने शिव भक्ति से प्रेरित होकर एक शिवालय का निर्माण करवाया था।¹¹

प्रतिहार वंश में वत्सराज व महेन्द्रपाल महेश्वर के उपासक थे।¹² मण्डोर के प्रतिहार राजा शीलुक ने सिद्धेश्वर का मन्दिर बनवाया था। जोधपुर के आस-पास के क्षेत्रों में अनेक शिव मंदिरों के भग्नावशेष विद्यमान हैं।

बुचकला में एक प्राचीन शिव मंदिर है। अब यह पार्वती का मन्दिर कहलाता है। यह जीर्ण-शीर्ण हो चुका है। प्रतिहार शासक नागभट्ट के सामन्त गुवक की पत्नी ने इस में महेश्वर की मूर्ति स्थापित की थी।¹³ अरणा गांव (जोधपुर के पास) की पहाड़ी पर एक सुन्दर मन्दिर है, इसमें एक शिवलिंग स्थापित है। यह मंदिर अनुमानतः ग्यारहवीं सदी का है। मुडाना में भी ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास का एक सुन्दर मन्दिर है। इसमें शिवलिंग और शिव की मूर्ति दोनों एक साथ मिलती हैं। केकिंद (मेड़ता के पास) में भी ग्यारहवीं शदी का एक प्राचीन शिव मन्दिर है। नाणा (बाली के पास) में नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर है। इसके अतिरिक्त तीन शिव मन्दिरों के भग्नावशेष हैं, जो सबसे प्राचीन प्रतीत होते हैं। चोटण (जूना के पास) में शिव के अवतार का एक मन्दिर विद्यमान है, जो लगभग ग्यारहवीं सदी का है। किराडू में इस समय आबादी नहीं है। यहां पर पांच मन्दिरों के भग्नावशेष हैं जिनमें से शिव मन्दिर कुछ अच्छी अवस्था में हैं।¹⁴ ओसियां में एक मुखी शिवलिंग है।¹⁵

कोटा क्षेत्र के आस-पास नवीं-दसवीं शताब्दी में शिव और पार्वती की संयुक्त रूप में पूजा की जाती थी। शिव-प्रतिमा में नन्दी पर शिव और पार्वती के पास गणेश, स्कन्द और भृंगी (नृत्य मुद्रा में) की प्रतिमायें हैं। एक अन्य शिव प्रतिमा के तीन हाथों में त्रिशूल, सर्प व कमण्डलु हैं। चौथा हाथ वरद मुद्रा में है। पास में रति और काम आलिंगन-बद्ध है।¹⁶ कृष्ण विलास (कोटा के पास) में पहाड़ियों से घिरा हुआ आठवीं शताब्दी का सुन्दर शिव मन्दिर है। यहां शिव तथा पार्वती की सुन्दर संयुक्त प्रतिमाएं हैं।¹⁷ कोटा में शिव के अवतार लकुलीश की भी पूजा की जाती थी। अटरू में एक लकुलीश की प्रतिमा है।

राजस्थान के इतिहास (750 ए.डी.) में शिव प्रतिमा, शिवलिंग शिव, पार्वती और लकुलीश की पूजा विशेष लोकप्रिय थी।¹⁸

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. दशरथ शर्मा – राजस्थान थ्रु द ऐजेज, पृ. 409-12।
2. नाथ प्रशस्ति- एकलिंग जी। बाम्बे एशियाटिक सोसाइटी जर्नल, भाग-22, पृ.166-67।
3. हनसोत प्लेट 756 ए.डी.।
4. हर्ष प्रशस्ति 973 ए.डी., श्लोक 10।
5. पृथ्वीराज विजय, श्लोक 43-45।

6. पृथ्वीराज विजय, श्लोक 37।
7. नाथ प्रशस्ति एक लिंग जी 937 ए.डी., बाम्बे एशियाटिक सोसाइटी, भाग-22, पृ. 166-67: भाव नगर इन्सक्रिप्शन्स, भाग 2, पृ. 69-72।
8. रावल समर सिंह प्रशस्ति 1212 वि. सं.।
9. चाटसू प्रशस्ति 813 ए.डी. एपिग्राफिया इंडिका, भाग 12, पृ. 13-17।
10. प्रतापगढ़ का अभिलेख 946 ए.डी.,
11. कल्याणपुर का लेख-जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री, जिल्द 35, भाग 1, 1957 पृ. 73-74।
12. प्रतापगढ़ का लेख।
13. एपिग्राफिया इंडिका, भाग 9, पृ. 198-200।
14. ओझा जी - जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग, पृ. 45।
15. मण्डोर म्यूजियम, जोधपुर।
16. केटलॉग, गवर्नमेंट म्यूजियम, कोटा, नं. 252-277।
17. केटलॉग, गवर्नमेंट म्यूजियम, कोटा, नं. 279।
18. गवर्नमेंट म्यूजियम, कोटा, नं. 287।



डॉ. बीना जैन

सह-आचार्य, चित्रकला विभाग,

रा.वि.वि. जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

भारतीय मूर्तिकला में श्री गणेश

विघ्नेश्वर और सिद्धेश्वर रूप में गणों के स्वामी गणपति या गणेश ब्राह्मण देवमण्डल में प्रमुख देवता स्वी.त किये गये हैं। गणों का शिव से विशेष सम्बन्ध रहा है। गणों के अधिपति होने के कारण ही गणेश को गणपति या गणाधिपति कहा गया है।¹ अमरकोश में गणेश के आठ नाम उल्लिखित हैं² वही नारद पुराण में द्वादश नामों का वर्णन है —1. सुमुख 2. एकदन्त 3. कपिल 4. गजकर्णक 5. लम्बोदर 6. विकट 7. विघ्ननाश 8. विनायक 9. धूम्रकेतु 10. गणाध्यक्ष 11. भालचन्द्र 12. गजानन।³

वैदिक काल में गणपति देव-सूची में परिगणित नहीं थे। गणपति शब्द का प्रथमोल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है।⁴ शुक्ल यजुर्वेद में भी गणपति शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु देवता रूप में उनका उल्लेख नहीं है। गणपति को अनार्य देवता भी कहा गया है।⁵ महाभारत में गणेश्वरों तथा विनायकों का उल्लेख मनुष्य के कार्यों का निरीक्षण करने वाले सर्वव्यापी एवं स्तुति से प्रसन्न होकर व्याधियों से मुक्ति दिलाने वाले देवता के रूप में हुआ है।⁶ वराहपुराण में विनायक की उत्पत्ति की विस्तृत चर्चा मिलती है। ई. पूर्व छठवीं शती के बौधायन धर्मसूत्र में विनायक तथा उनके विभिन्न पर्यायों-विघ्नविनायक, हस्तिमुख, वक्रतुण्ड, एकदन्त, लम्बोदर एवं गणपति को तर्पण का भी उल्लेख है, जिससे स्पष्ट है कि पौराणिक युग में गणपति या गणेश के जिस स्वरूप का विकास हुआ है, उसके अनेक तत्त्वों की कल्पना छठी शती ई. पूर्व के लगभग कर ली गयी थी। मानवगुह्यसूत्र में चार विनायकों शालकण्ठक, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन का उल्लेख है। याज्ञवल्क्यस्मृति में सर्वप्रथम विनायक अम्बिका-पुत्र कहे गए हैं।⁷

अधिकांश विद्वान गणेश को आर्यतर देवता मानते हुए उनके आर्य-देव परिवार में बाद में प्रविष्ट होने की बात कहते हैं, उनके अनुसार आर्यतर गण में हाथी की पूजा प्रचलित थी। इसी से गजरूपी गणेश की कल्पना और उपासना का प्रारम्भ हुआ।⁸ यह भी मान्यता है कि आर्यतर जातियों में ग्राम देवता के रूप में गणेश का रक्त से अभिषेक होता था। आर्य देवमण्डल में सम्मिलित होने के पश्चात् सिन्दूर चढ़ाना इसी का प्रतीक है। प्रारम्भिक गणराज्यों में गणपति के प्रति जो भावना थी, उसी आधार पर देवमण्डल में गणपति की कल्पना को भी एक कारण

माना जाता है। ब्राह्मण धर्म के पाँच प्रमुख सम्प्रदायों में गणेश के उपासकों का एक स्वतन्त्र गाणपत्य सम्प्रदाय भी था जिसका विकास डॉ. भण्डारकर के अनुसार पाँचवीं से आठवीं शती ई. के मध्य हुआ।

विद्या और बुद्धि के अधिष्ठाता गणेश शिव-पार्वती के दूसरे पुत्र हैं। मूषक इनका वाहन है। सभी शुभाशुभ कार्यों के पूर्व अनिवार्य रूप से इनकी पूजा-अर्चना की जाती है। भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को मध्याह्न के समय गणेश जी का जन्म हुआ था। वे एक दन्त और चतुर्बाहु हैं। अपने चारों हाथों में वे क्रमशः पाश, अंकुश, मोदक-पात्र तथा वरद-मुद्रा धारण करते हैं। सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा, इनके तीन नेत्र हैं। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण तथा पीतवस्त्र धारी हैं। उनकी शारीरिक संरचना में भी विशिष्ट और गहरा अर्थ निहित है। चारों दिशाओं में सर्वव्यापकता की प्रतीक उनकी चार भुजाएँ हैं। वे लम्बोदर हैं क्योंकि समस्त चराचर सृष्टि उनके उदर में विचरती है। बड़े कान अधिक ग्राह्य शक्ति व छोटी-पैनी आँखें सूक्ष्म-तीक्ष्ण दृष्टि की सूचक हैं। उनकी लम्बी नाक (शुण्ड) महाबुद्धित्व का प्रतीक है।⁹ कुछ आधुनिक विद्वान् गणेश को कृषि का देवता बताते हैं। उनके मत से गणेश के बड़े-बड़े कान सूप के और एक दांत हल का प्रतीक है। शिव के गणों के स्वामी होने के कारण वे गणपति या गणाधिपति कहलाते हैं।

ज्योतिष में गणेश को केतु का देवता माना जाता है, और जो भी संसार के साधन हैं, उनके स्वामी श्री गणेश जी हैं। स्वस्तिक-चिन्ह श्री गणपति का स्वरूप है और दाएँ-बाएँ दो-दो खड़ी रेखाएँ श्री गणपति की भार्यास्वरूपा सिद्धि-बुद्धि एवं पुत्र स्वरूप लाभ और क्षेम हैं। श्री गणपति का बीजमन्त्र है – अनुस्वारयुक्त “ग” अर्थात् “गं” बीजमन्त्र की चार संख्या को मिलाकर एक कर देने से स्वस्तिक चिह्न बन जाता है¹⁰ इस चिह्न में चार बीजमन्त्रों का संयुक्त होना श्री गणपति की जन्मतिथि चतुर्थी का द्योतक है। शिवमानस-पूजा में इन्हें ‘प्रणवाकृते’ () कहा गया है। इस एकाक्षर ब्रह्म में ऊपरवाला भाग मस्तक का वृत्त, नीचेवाला भाग उदर का विस्तार, शुण्ड नाद और चन्द्रबिन्दु लङ्कू है। इस रूप में गणेश की कल्पना की गई है और इस प्रकार की मूर्तियाँ भी मिलती हैं।¹¹

कुषाणकाल में गणपति की उपासना मूर्ति-रूप में अधिक प्रचलित नहीं थी। गेह्री के अनुसार यद्यपि पाँचवीं शती ई. पूर्व में गणपति पूजन का स्पष्ट संकेत नहीं प्राप्त होता, किन्तु गजमुख देवता भारतीय कला में पूर्व-गुप्तकाल से ही ज्ञात थे। किन्तु इन आरम्भिक युगीन गणपति प्रतिमाओं के निर्माण में यक्षों और नागों की विशिष्टताएँ परिलक्षित होती हैं। कुमारस्वामी के विचार से आरम्भ में गणपति का स्वरूप यक्ष की विशेषताओं से युक्त है। गजानन यक्ष का प्राचीनतम अंकन अमरावती में द्रष्टव्य है।¹² वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार आरम्भिक युगीन गणपति प्रतिमाएँ यक्ष-प्रतिमाओं के समान ही निर्मित हुई हैं। मथुरा के एक कुषाणकालीन पाषाण फलक पर पुष्पधारी छः भक्तों की आकृतियों के नीचे गजमुख आकृति वाले पाँच गजानन यक्षों का प्रदर्शन हुआ है। गणेश की एक पूर्व गुप्तकालीन मृण्मूर्ति अक्र के उत्खनन में प्राप्त हुई

हैं।¹³ गणेश की एक पूर्व-गुप्तकालीन मृण्मूर्ति अक्र के उत्खनन में प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त तीन पूर्व-गुप्तकालीन मूर्तियाँ मथुरा संग्रहालय में तथा दो भूमरा और उदयगिरी में दर्शनीय हैं। गुप्तकाल के अन्त तक विघ्ननाशक देवता के रूप में तथा शैव परिवार से उनके महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध के कारण सप्तमातृका समूह के साथ गणेश को अंकित किया जाने लगा। भुवनेश्वर में शत्रुघ्नेश्वर एवं परशुरामेश्वर मन्दिरों (छठीं-सातवीं शती ई.) की रावणानुग्रह तथा सप्तमातृका मन्दिरों के साथ स्वतन्त्र रूप में भी गणेश का अंकन मिलता है। प्रो. ए.के. नारायण ने इण्डोग्रीक शासक हर्मेयस की एक रजत-मुद्रा पर अंकित गजमुख पुरुषाकृति की गणेश से समानता प्रदर्शित की है और इसका काल लगभग 50 ई. पूर्व निर्धारित कर इसे गणेश का प्रारम्भिक अंकन माना है। इस प्रकार ई. पूर्व से ही गणेश की लोकप्रियता निर्विवाद है।¹⁴

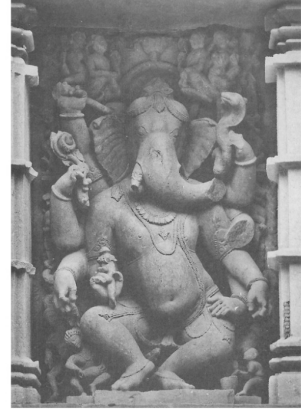
गुप्तकाल में गणपति प्रतिमाएँ अधिकांश रूप में प्रतिमाशास्त्रीय आधार पर निर्मित थी। इस काल की मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित सुन्दर प्रतिमाओं में गजमुख, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, एकदन्त, त्रिभुज गणेश को बाएँ हाथ में रखे हुए मोदक को अपने शुण्ड से स्पर्श करते हुए प्रदर्शित किया गया है। छठीं शती ई. की बिहार के शाहाबाद जनपद से प्राप्त और पटना संग्रहालय में सुरक्षित गणपति प्रतिमा को पद्मासन-मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। उनकी शुण्ड बाएँ हाथ में रखे मोदक की ओर आकर्षक ढंग से मुड़ी हुई है। कानपुर जिले के भीतर गाँव मन्दिर से प्राप्त मृण्मूलक में चतुर्भुज, गजमुख-गणपति को भी बाएँ हाथ में स्थित मोदक पात्र को अपने शुण्ड से पकड़े हुए दिखाया गया है।¹⁵ इसी काल की भूमरा से प्राप्त दो प्रतिमाओं में से एक में गणपति को द्विभुज रूप में एक पीठिका पर आसीन तथा दूसरी प्रतिमा में गणेश की अपनी शक्ति विघ्नेश्वरी के साथ आलिंगन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उदयगिरी गुफा में द्विभुज गणपति को एक उर्ध्व-पीठिका पर अर्धपर्याकासन मुद्रा में दर्शाया गया है। गुजरात के सावरकांठा जिले के कुन्दोल नामक स्थान से प्राप्त और अब प्रिन्स ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित सातवीं-आठवीं शती ई. की एक मूर्ति उल्लेखनीय है। यहाँ गजमुख, शूर्पकर्ण, चतुर्भुज, लम्बोदर गणेश पद्मपीठ पर महाराजलीलासन-मुद्रा में विराजमान हैं। उनके हाथ क्रमशः स्वदन्त, पद्म, परशु और मोदक-पात्र से युक्त हैं तथा वे व्यालयज्ञोपवीत, हार, केयूरों, कंकणों, कटिसूत्र तथा नूपुरों से अलं.त हैं। मथुरा कला में निर्मित इस काल के अन्तिम चरण की एक प्रतिमा में कमल-पुष्प के ऊपर नृत्य-मुद्रा में गणपति को अंकित किया गया है।¹⁶

मध्यकाल में प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणों से युक्त गणपति प्रतिमा को स्थानक, आसन और नृत्य की विभिन्न मुद्राओं में दिखाया जाने लगा। उड़ीसा के मयूरभंज जनपद से प्राप्त आरम्भिक मध्ययुगीन प्रतिमा में विभिन्न अलंकरणों से युक्त चतुर्भुज गणपति को कमल-पीठिका पर अभंग-मुद्रा में खड़े प्रदर्शित किया गया है। उनके दाहिने हाथों में अक्षमाला और स्वदन्त तथा बाएँ ओर के एक हाथ में मोदक-पात्र और दूसरे हाथ में वस्तु अस्पष्ट है। वे सर्प-यज्ञोपवीतधारी हैं।¹⁷ उड़ीसा से ही प्राप्त एक अन्य प्रतिमा में अष्टभुज गणपति को दुहरे

कमलासन पर नृत्य—मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उनके सामने का दाहिना हाथ गजहस्त—मुद्रा में है, ऊपर उठे हुए दो हाथों में सर्प पकड़े हैं, अन्य हाथों में मोदक—पात्र, अक्षमाला और स्वदन्त है, शेष भुजाएँ खण्डित हैं। उत्कृष्ट शिल्प की दृष्टि से ये प्रतिमा उल्लेखनीय है।¹⁸

आठवीं—नवीं ई. की पटना संग्रहालय में सुरक्षित एक प्रतिमा में षड्भुज गणपति को एक पीठिका पर नृत्य—मुद्रा में प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित किया गया है।¹⁹ किरीट—मुकुट धारी गणेश का सिर दाहिनी ओर मुड़ा हुआ है, किन्तु उनकी शुण्ड बायीं ओर मुड़कर बाएँ हाथ में रखे मोदक को स्पर्श कर रही है। पार्श्व में दो नारी आतियों को भी नृत्य—मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। पादपीठ पर उनके वाहन मूषक को तथा ऊपर दोनों ओर हार लेकर उड़ती हुई दो अप्सराओं को दिखाया गया है। इसी प्रकार बंगाल में प्राप्त एक अन्य प्रतिमा में अष्टभुजी गणपति को नृत्य—मुद्रा में अति कलात्मक ढंग से प्रदर्शित किया गया है।

मध्यकालीन मूर्तिकला का प्रमुख केन्द्र हैं—खजुराहो। यहाँ गणेश की प्रभूत मूर्तियाँ हैं जिनमें आसन एवं स्थानक एकल मूर्तियों के अतिरिक्त नृत्य एवं शक्ति—गणेश मूर्तियाँ भी हैं। सर्वाधिक मूर्तियाँ लक्ष्मण, विश्वनाथ, कन्दरिया महादेव एवं दूलादेव मन्दिरों पर हैं। खजुराहो में परम्परा के अनुरूप अष्टभुजी मूर्तियों के साथ ही द्विभुजी, चतुर्भुजी, दशभुजी और षोडशभुजी मूर्तियाँ भी मिली हैं। लक्ष्मण मन्दिर के दक्षिणी अधिष्ठान की रथिका में अष्टभुजी गणेश की एक मनोहारी और ओजपूर्ण मूर्ति उत्कीर्ण है। पार्श्ववर्ती वाद्य—वादकों से वेष्टित गणेश शूर्पकर्ण एवं एकदन्त हैं। पैरों की स्थिति से नृत्य की लयात्मकता की अभिव्यक्ति हुई है। प्रभामण्डल के दोनों ओर वीणाधारिणी देवियों का अंकन हुआ है जो सम्भवतः गणेश—पत्नी भारती की आतियाँ हैं। **(चित्र—1)** सोलह हाथों वाली गणेश की दो नृत्य मूर्तियाँ तथा मोदक पात्र पकड़े हुए गणेश—वाहन मूषक की भी एक स्वतन्त्र मूर्ति खजुराहो संग्रहालय में सुरक्षित हैं। शक्ति के साथ गणेश की तीन मूर्तियों का उल्लेख डॉ. रामाश्रय अवस्थी ने अपनी पुस्तक में किया है।²⁰



चित्र—1 नृत्य गणेश लक्ष्मण मंदिर, खजुराहो

जबलपुर के भेड़ाघाट स्थित चौसठ योगिनी मन्दिर के प्रांगण के गौरीशंकर मन्दिर में भी अष्टभुज गणेश की एक नृत्य—मूर्ति है। बारहवीं शती ई. की इस मूर्ति में पार्श्ववर्ती दुन्दुभि और मंजीरा वादकों की आतियाँ नृत्य के परिवेश को और भी स्वाभाविक बना रही है नाग—यज्ञोपवीतधारी गणेश के करों में व्याख्यान—मुद्रा, अक्षमाला, स्वदन्त, सर्प (दो करो में) पद्म और मोदक—पात्र हैं।²¹

महाराष्ट्र में गणपति की एक सुन्दर मूर्ति 'ठाणे' जिले से प्राप्त हुई है और अब प्रिन्स ऑफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई में सुरक्षित है। (चित्र-2) इस मूर्ति में चतुर्भुज गणेश महाराजलीलासन-मुद्रा में विराजमान है एवं करण्डमुकुट, हार, व्यालयज्ञोपवीत, कंकणों, कटिसूत्र, पादकटकों एवं नूपुरों से अलंकृत है।



चित्र-2 आसीन गणपति, प्रिन्स ऑफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई

एलोरा में गणेश की लगभग 20 मूर्तियाँ हैं जिनमें स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही कल्याण-सुन्दर एवं सप्तमातृका फलकों पर निरूपित मूर्तियाँ भी हैं। इनमें चतुर्भुज गणेश के हाथों में स्वदन्त, परशु, अक्षमाला व मोदक प्रदर्शित हैं। गुफा संख्या 17 की स्वतन्त्र मूर्ति में चतुर्भुज गणेश के हाथों में अक्षमाला, नाग, परशु और मोदक-पात्र है। गणेश का शुण्ड सामान्यतः मोदक-पात्र की ओर मुड़ी हुई दिखाई गई है। केवल कभी-कभी अक्षमाला के स्थान पर पद्म दिखाया गया है।

राजस्थान में गणपति की अलवर, भरतपुर, चित्तौड़गढ़, कुम्भलगढ़ व ओसियाँ आदि केन्द्रों से प्राप्त मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। राजगढ़ (अलवर) से प्राप्त दसवीं शती ई. की एक चतुर्भुजी मूर्ति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर की निधि है। भरतपुर संग्रहालय में सुरक्षित दसवीं शती ई. की चतुर्भुजी मूर्ति में मूषक का प्रदर्शन बाएँ पैर के नीचे किया गया है। इस मूर्ति में पादपीठ पर दायीं ओर एक उपासिका की आकृति भी अंकित है। चित्तौड़गढ़ में स्थान-स्थान पर, विशेष रूप से शिव-मन्दिरों और विजयस्तम्भ के भीतरी प्रवेश-द्वारों में ललाट-बिम्ब पर, उत्कीर्ण चतुर्भुजी सभी प्रतिमाएँ लगभग एक समान हैं। उनके वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन भी किया गया है। इनमें से विजयस्तम्भ की मूर्तियों के नीचे प्रायः 'श्री गणेशः' लेख भी उत्कीर्ण हैं।²²

ओसियाँ मन्दिरों के विभिन्न भागों पर गणेश की कुल 44 मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ आसीन (30 मूर्तियाँ), स्थानक (5 मूर्तियाँ) एवं नृत्य स्वरूपों (9 मूर्तियाँ) में हैं। मूर्त उदाहरणों में गणेश को सामान्यतया द्विभुज एवं चतुर्भुज निरूपित किया गया है केवल नृत्य स्वरूप के एक उदाहरण में गणेश षड्भुज निरूपित हुए हैं। सामान्यतः गणेश का स्वतन्त्र अंकन ही हुआ है। केवल एक उदाहरण में उन्हें शक्ति सहित (विष्णु मन्दिर-3) निरूपित किया है। समुद्रमंथन के दृश्य एवं सप्तमातृकाओं के साथ (विष्णु मन्दिर-5) भी गणेश परम्परानुरूप प्रदर्शित हैं।²³

ओसियाँ की स्थानक गणेश-प्रतिमाओं में केवल एक प्रतिमा द्विभुज तथा अन्य सभी प्रतिमाएँ चतुर्भुज हैं। गणेश की द्विभुज प्रतिमा पीपला देवी मन्दिर के रूपस्तम्भ पर आकारित है तथा तीन स्थानक चतुर्भुज प्रतिमाएँ तीनों हरिहर मन्दिरों में एक ही दिशा में निरूपित हैं जिनमें गणेश का मुख वाम दिशा में मुड़ा है तथा शुण्ड ओसियाँ की प्रचलित शैली में दक्षिण दिशा की

ओर मुड़ी है। बारहवीं शती ई० की एक स्थानक चतुर्भुज प्रतिमा सचियामाता मन्दिर के शिखर उत्कीर्ण है यहाँ सर्वप्रथम गणेश को करण्डमुकुट से सुशोभित किया गया है।

ओसियाँ में गणेश की आठवीं शती ई० की द्विभुज आसीन प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं। ये प्रतिमाएँ राजस्थान में गणेश मूर्ति के विकास की प्रारम्भिक अवस्था की परिचायक है। द्विभुज मूर्तियों के 19 उदाहरणों में, सचियामाता मन्दिर के एक कक्ष में रखी मूर्ति प्राचीनतम मानी जा सकती है। दो आसीन और बड़ी प्रतिमाएँ महावीर जैन मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर भी सुरक्षित हैं। चतुर्भुजी 11 मूर्तियों में, सूर्य मन्दिर (1-3) में आसीन गणेश की तीन मूर्तियाँ विशिष्ट है। ये मूर्तियाँ सूर्य मन्दिरों के जघां भाग की दक्षिण भद्ररथिकाओं में उत्कीर्ण है, इन मूर्तियों में (आकार 57ग50 से.मी.) पूर्णतया अलंकृत, स्थूलकाय और लम्बोदर गणेश सुखासीन-मुद्रा में है एवं उनके उदर पर सर्प लिपटा है। एक मूर्ति में गणेश के मस्तक के ऊपर दो उड़ते हुए विद्याधर पुष्पपात्र लिए देवता की अर्चना कर रहे हैं।²⁴ रथिका के अधः भाग में दोनों ओर एक-एक स्त्री पद्म लिए खड़ी है, इस प्रकार की गणेश मूर्तियाँ अन्यत्र अनुपलब्ध है। **(चित्र-3)** ओसियाँ में त्रिनेत्र गणेश की एकमात्र उल्लेखनीय मूर्ति साचियामाता मन्दिर के बरामदे में अंकित है। एक अन्य सर्वाधिक बड़े आकार (88ग57 से.मी.) की मूर्ति पीपला देवी मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित है। प्रभामण्डल युक्त इस मूर्ति में देवता सर्पउपवीत पहने हैं, जबकि अन्य मूर्तियों में सर्प उनके उदर पर बँधा है।



चित्र-3 आसीन गणेश, सूर्य मंदिर-3, ओसियाँ

ओसियाँ में नृत्य गणेश सचियामाता मन्दिर के एक कक्ष में अतिभंग मुद्रा में निरूपित है तथा शिखर पर दो चतुर्भुजी मूर्तियों में नृत्यरत गणेश को अन्य देवताओं के साथ मध्य में प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। यहाँ प्रथम बार वनमाला धारण किए गणेश तथा दो पैरों पर खड़ा अंजलिबद्ध मूषक आकर्षक रूप में प्रदर्शित है। एक अन्य रोचक षड्भुज गणेश की नृत्यमूर्ति हरिहर मन्दिर-1 में सनालपद्म पर अंकित है। इस प्रतिमा में गणेश की कोई भी भुजा नृत्यमुद्रा में नहीं है किन्तु शारीरिक भंगिमाओं तथा पद्मपीठिका के नीचे गतिशील अवस्था में वादक द्वारा वाद्य-वादन से ही नृत्य का भाव प्रकट होता है।

ओसियाँ में गणेश की शक्ति सहित आलिंगन-मुद्रा में एक छोटी मूर्ति विष्णु मन्दिर-3 के द्वार पर सप्तमातृकाओं के साथ उत्कीर्ण है। स्वदन्त, पद्म, परशु से युक्त इस मूर्ति में गजशुण्ड उदर पर सीधी लटकी हुई प्रदर्शित है।

इनके अतिरिक्त गणपति की पश्चिम भारत से प्राप्त सत्रहवीं शती ई० की दो कांस्य-मूर्तियाँ भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके हाथ क्रमशः स्वदन्त, परशु, पद्म और मोदक-पात्र से युक्त

हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में प्रदर्शित इन दोनों प्रतिमाओं के साथ मूषक वाहन भी अंकित है।

भुवनेश्वर में गणेश मूर्तियों का निर्माण स्वतन्त्र सम्प्रदाय के देवता के रूप में न होकर शैव परिवार के सदस्य के रूप में किया गया है। फलस्वरूप यहाँ गणेश की आसीन, स्थानक और नृत्य स्वरूपों की कुल 75 मूर्तियाँ मिली हैं। जिनमें 7 द्विभुजी, 36 चतुर्भुजी, 4 षड्भुजी तथा 2 अष्टभुजी हैं। यहाँ की प्रारम्भिकतम द्विभुज मूर्ति परशुरामेश्वर मन्दिर पर उत्कीर्ण है जिसमें गणेश के हाथों में बीजपूरक तथा मोदक—पात्र हैं। घटोदर गणेश के साथ सर्पबन्ध या नागयज्ञोपवीत का अंकन हुआ है। गणेश की आसन मूर्तियों में मूषक वाहन का अंकन अपेक्षाकृत कम हुआ है।¹²⁵ प्रारम्भिक मूर्तियों में गणेश का मस्तक बिना अलंकरण के प्राकृतिक गजरूप में बना है किन्तु बाद में करण्डमुकुट सुशोभित है। गणेश की शुण्ड सामान्यतः बायीं और मुड़कर मोदक—पात्र का स्पर्श कर रही है जिसमें मोदक दिखाया गया है। स्थानक मूर्तियों में मूषक वाहन और कुछ उदाहरणों में पार्श्व में अनुचरों को भी प्रदर्शित किया गया है। सामान्यतः गणेश के हाथों में अक्षमाला स्वदन्त, मोदक—पात्र तथा परशु का अंकन किया गया है, किन्तु कहीं—कहीं स्वदन्त के स्थान पर मूलक या पद्म भी अंकित है। लिंगराज और ब्रह्मेश्वर मन्दिरों में उत्कीर्ण नृत्यरत् गणेश के दो हाथ नृत्य—मुद्रा में हैं एवं मूषक को तन्मयता पूर्वक गणेश—नृत्य का अवलोकन करते हुए प्रदर्शित किया गया है। मुक्तेश्वर मन्दिर की अष्टभुजी गणेश प्रतिमा का एक हाथ गजहस्त—मुद्रा है और शेष में स्वदन्त, अक्षमाला वाला सर्प (दो हाथों में) तथा परशु हैं। लिंगराज मन्दिर के प्रांगण में स्थित मन्दिर की जंघा पर भी नृत्यरत् गणेश की अष्टभुजी मूर्ति आकारित है। जिसका एक हाथ गजहस्त—मुद्रा में है और शेष में स्वदन्त, अभयाक्ष, सर्प (दो हाथों में) एवं मोदक—पात्र हैं। उड़ीसा के अन्य कई स्थलों से भी गणेश की विविध रूपों वाली मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

दक्षिण भारत में गणेश मूर्तियों की पूजा एवं प्रतिमा निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। बादामी की गुफाओं में, जो प्रारम्भिक चालुक्य युगीन छठी शती ई. की हैं, शैव गुफा मन्दिर के बाहरी स्तम्भ गैलरी के बाएँ पत्थर पर शिव को ताण्डव नृत्य करते हुए दिखाया गया है। जिनके चरणों में गणेश की एक छोटी—सी प्रतिमा नृत्य—मुद्रा में अंकित है। इनके सिर के पीछे आभा—मण्डल भी विद्यमान है।¹²⁶ मडुगूल (गुण्टूर जिला) से प्राप्त एक पल्लवकालीन मूर्ति में द्विभुज गणेश को शिव परिवार के साथ निरूपित किया गया है। तंजौर के बृहदीश्वर मन्दिर से गणेश की एक चोलकालीन द्विभुजी मूर्ति मिली है जिसमें पद्मासीन गणेश की शुण्ड मोदक—पात्र का स्पर्श करने की मुद्रा में न होकर सीधी दिखाई गई है। मद्रास संग्रहालय में भी गणेश की दो प्रतिमायें सुरक्षित हैं इनमें से एक दसवीं शती ई. की कांस्य प्रतिमा है जो तंजौर जिले के बेलानकण्डी से मिली थी तथा दूसरी प्रतिमा बारहवीं शती ई. की तंजौर के ही मंगलम स्थान से प्राप्त हुई थी। इस काल में पाषाण में भी गणेश की अनगिनत मूर्तियाँ बनी जिनमें से कई राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में प्रदर्शित है। पट्टडकल के आठवीं शती ई. के पापनाथ मंदिर

पर उत्कीर्ण चतुर्भुज गणेश के तीन अवशिष्ट करों में नाग, अक्षमाला और मोदक प्रदर्शित है। ऐहोल के मन्दिरों में गणेश के विविध स्वरूपों का बड़ा ही भावग्राही अंकन रामेश्वर एवं कैलाश गुफा मन्दिरों में हुआ है। त्रिचनापल्ली और वल्लभ में गणेश की अनेकानेक मूर्तियाँ मिली हैं। जो सातवीं शती ई. में निर्मित प्रतीत होती है। त्रिचनापल्ली में शिवमन्दिर के निकट ही गणेश को खड़े हुए अंकित किया गया है।

हेलेविद के होयसलेश्वर-मन्दिर से प्राप्त बारहवीं शती ई. के आभूषणों से अलं.त अष्टभुज गणपति को नृत्य-मुद्रा में प्रभावशाली रूप से उत्कीर्ण किया गया है। उनका एक हाथ गजहस्त-मुद्रा में और दूसरा विस्मय हस्त-मुद्रा में प्रदर्शित है। इस प्रतिमा में अंजलिबद्ध-मुद्रा में बैठे हुए भक्तों तथा वाद्य-यन्त्रों को बजाते हुए अनुचरों को भी अंकित किया गया, नीचे मोदक खाने में व्यस्त मूषक को भी दिखाया गया है।²⁷ होयसलकालीन एक अन्य त्रिनेत्र-गजमुख मूर्ति एशियन आर्ट संग्रहालय, सनफ्रांसिस्को में भी सुरक्षित है।

उच्छिष्ट गणपति स्वरूप की एक मूर्ति कुम्भकोणम् के नागेश्वरस्वामिन् मन्दिर में उत्कीर्ण है। इस चतुर्भुजी मूर्ति में गजमुख, एकदन्त, शूर्पकर्ण, लम्बोदर गणेश पद्मपीठ पर द्विभंग-मुद्रा में खड़े हैं।²⁸ उनके हाथ क्रमशः अक्षमाला, स्वदन्त, मोदक-पात्र और परशु से युक्त हैं तथा उनके दायीं ओर एक अन्य छोटे पद्मपीठ पर वाहन मूषक प्रदर्शित है।

(चित्र-4)

नेगपटम् के नित्याक्षियम्मन् मन्दिर से प्राप्त हेरम्ब कांस्य मूर्ति में पंचमुखी, दशभुजी गणेश सिंह पर आसीन है। मूर्ति के चार गजमुख चार दिशाओं में तथा एक ऊपर की ओर केन्द्र में प्रदर्शित है। चार हाथों के आयुध स्पष्ट नहीं है, किन्तु शेष में से दो अभय और वरद-मुद्रा में तथा अन्य चार परशु, पाश, स्वदन्त एवं अंकुश से युक्त हैं। गोपीनाथ राव के अनुसार तिथिगत दृष्टि से यह प्रतिमा पन्द्रहवीं शती ई. से बाद की नहीं है।²⁹



चित्र-4 उच्छिष्ट गणपति, नागेश्वरस्वामिन् मन्दिर, कुम्भकोणम्

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में गणेशोपासना की परम्परा अत्यन्त ही प्राचीन है। भारतीय वाङ्मय में गणेश आदिदेव, देवाधिदेव की रूप में पूज्य एवं वन्दनीय हैं। भारत के विभिन्न अंचलों से प्राप्त गणेश की अनेकानेक मूर्तियाँ एवं मन्दिर, भारतीय संस्कृति में गणेश जी की लोकप्रियता के प्रत्यक्ष प्रमाण है। मध्यकालीन कला में तो गणपति-प्रतिमाएँ इतनी लोकप्रिय थी कि विदेशियों ने भी भारतीय प्रतिमा-निर्माण परम्परा का अनुकरण कर गणपति-प्रतिमाओं का निर्माण करवाया इसमें विशेषतः इण्डोनेशिया (चित्र-5) कम्बोडिया, थाईलैंड, पश्चिम बंगाल, नेपाल, तिब्बत व अफगानिस्तान (चित्र-6) आदि देशों से प्राप्त गणेश प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं।



चित्र-5 आसीन गणेश, नवीं शती ई.,
इण्डोनेशिया



चित्र-6 ऊर्ध्वमेढ्र महाविनायक, पांचवीं शती ई.,
अफगानिस्तान

संदर्भ ग्रन्थ

1. एन.पी. जोशी : प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, पटना, 1979, पृष्ठ सं. 67
2. अमरकोश : 1/1/33
3. en.wikipedia.org/wiki/Ganesha
4. गणनां त्वां गणपति हवामहे..... ऋग्वेद : 2/23/1
5. सम्पूर्णानन्द : हिन्दू देव-परिवार का विकास, इलाहाबाद, 1964, पृष्ठ सं. 147
6. R.G. Bhandarkar: Vaisnavism, Saivism and Minor Religious Systems, Poona, 1928, P. 147.
7. J.N. Banerjee : The Development of Hindu Iconography, Calcutta, 1956, Page 355
8. A. Getty : Genesa, New Delhi, 1971, PP. 1-2
9. जनार्दन मिश्र : भारतीय प्रतीकविद्या, पटना, 1959, पृष्ठ सं. 40
10. प्रभाशंकर पाण्डेय : प्राचीन भारतीय कला में प्रतीक, दिल्ली, 2001 पृष्ठ सं. 257
11. जनार्दन मिश्र : भारतीय प्रतीकविद्या, पटना, 1959, पृष्ठ सं. 39
12. A.K. Coomaraswamy : yaksa, Washington, 1928, Page 7
13. वासुदेवशरण अग्रवाल : मथुरा कला, अहमदाबाद, 1964, पृष्ठ सं. 73
14. ए.के. नारायण : गणेश ऑन हर्मियस क्वायन, न्यूमिस्मेटिक डाइजेस्ट, खण्ड-6, भाग 1-2, 1982, पृष्ठ सं. 26-29
15. Archaeological survey of India Annual Reports, 1908-9, PP. 10-11, Fig. 2.
16. Moti Chandra : Stone Sculptures in the Prince of Wales Museum, Bombay, Page 29, Fig. 83
17. बृजभूषण श्रीवास्तव : प्राचीन भारतीय प्रतिमा-विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 2010, पृष्ठ सं. 142
18. J.N. Banerjee : The Development of Hindu Iconography, Calcutta, 1956, Page 361

19. Patna Museum, No. 10601
20. रामाश्रय अवस्थी : खजुराहो की देव-प्रतिमाएँ, आगरा, 1967, पृष्ठ सं. 41-46
21. मारुतिनन्दन तिवारी व कमल गिरि : मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण, वाराणसी, 1977, पृष्ठ सं. 155-156
22. पंकजलता श्रीवास्तव : हिन्दू तथा जैन प्रतिमा-विज्ञान, लखनऊ, 1990, पृष्ठ सं. 16-17
23. दुर्गानन्दन तिवारी : ओसियों के मन्दिरों की देव मूर्तियाँ, वाराणसी, 1999, पृष्ठ सं. 111
24. B.N. Sharma : Sculptures from Osian, Rooplekha- 40, PP. 95-102
25. मारुतिनन्दन तिवारी व कमल गिरि : मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण, वाराणसी, 1977, पृष्ठ सं. 156-157
26. प्रेमचन्द द्विवेदी : भारतीय कला, साहित्य एवं संस्कृति, वाराणसी, 2010, पृष्ठ सं. 171
27. T.A. Gopinath Rao : Elements of Hindu Iconography, Vol. I, Part-I, PP. 66-67, Pl. XV
28. पंकजलता श्रीवास्तव : हिन्दू तथा जैन प्रतिमा-विज्ञान, लखनऊ, 1990, पृष्ठ सं. 23
29. T.A. Gopinath Rao : Elements of Hindu Iconography, Vol. I, Part-I, PP. 65-67, Pls. XIII-XIV



डॉ. ममता रोकना
व्या. चित्रकला
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

19 वीं शताब्दी एवं परवर्ती भारतीय जन आंदोलनों में कला की भूमिका (चित्रकार नन्द लाल बोस द्वारा चित्रित हरिपुरा अधिवेशन पोस्टर्स के विशेष सन्दर्भ सहित)

अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है, भारत की संस्कृति में भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में विभिन्नता के साथ ही अखण्ड मौलिक एकता भी विद्यमान रही है। यहां विभिन्न जाति व धर्मों के लोग रहते हैं जिनकी वेशभूषा, भाषा, परम्पराएँ आदि अलग-अलग हैं किंतु राष्ट्र के प्रति प्रेम व भावनात्मक एकता ने इन सभी को एक सूत्र में बांधे रखा है।

‘अहिंसा’ भारतीय संस्कृति का सनातन गुण है। सभी जीवों के प्रति प्रेम की भावना अहिंसा को ही व्यक्त करती है। अहिंसा का तात्पर्य भय अथवा निष्क्रियता कदापि नहीं है। बल्कि साहसी एवं कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व का अनुशीलन है। हृदय में परस्पर प्रेम, करुणा, मैत्री और विनम्रता का भाव अहिंसा के पालन में सहायक रहे हैं।¹

भारतीय संस्कृति के ऊषा काल से ही भारतीय जीवन-दर्शन में अहिंसा के महत्व को इंगित किया गया है। वैदिक युग में रचित साहित्य में, हिंदूधर्म के महाग्रंथ रामायण, महाभारत में, बौद्ध, जैन व ईसाई धर्म ग्रंथों में अनेकानेक शब्दों व उद्धरणों द्वारा अहिंसा के मार्ग की विराटता को रेखांकित किया गया है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक भारतीय संस्कृति ‘अहिंसा परमो धर्मः’ का अनुशीलन करती रही है।²

भारतीय इतिहास कला, संस्कृति एवं ज्ञान के स्वर्णिम युग का इतिहास रहा है। अहिंसात्मक दृष्टिकोण के कारण ही भारतीय शासकों ने राष्ट्र में अमन व शांति कायम रखी, और यही अमन व शांति का माहौल भारत की कला, संस्कृति व सभ्यता के चहुंमुखी विकास में सहायक रहा। और इतिहास गवाह है कि सृजन एवं विकास वहीं हुआ है जहां शांतिपूर्ण वातावरण रहा। भारतीय इतिहास में अनेक उतार-चढ़ाव, आये किंतु, अहिंसा के मूलमंत्र ने हमारे आंदोलन एवं क्रांतियों को भी विध्वंसक व नाशकारी होने से बचाये रखा।

19 वीं शताब्दी में भारतवर्ष में अनेकों धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलन हुये। इन आंदोलनों की शांत एवं अहिंसात्मक परिणिति में कला, संगीत एवं साहित्य का विशेष योगदान रहा। अपरोक्ष रूप से ही सही, भारतीय लोक संस्कृति कला एवं संगीत की रचनाओं ने अनेक महत्वपूर्ण

आंदोलनों से जुड़कर उन्हें सशक्त किया है। भित्ति चित्रों, पट्ट चित्रों, चित्रित पोथियों, स्क्रोल चित्रों (लपेट कर रखे जाने वाले चित्र) आदि को जन साधारण से संवाद का माध्यम बनाया गया। रंगों व चित्रों के द्वारा हर भाषा का व्यक्ति भाषा के अभाव में भी संदेश को सहज ही ग्रहण कर लेता है। किसी भी संदेश को दूर दराज पहुंचाने में यह एक सफल माध्यम रहा। विभिन्न आक्रमणों व आंदोलनों में भी यह चित्रित सामग्री सुरक्षित बचा लेना अपेक्षाकृत आसान भी था। और एक ही ग्रंथ चित्र की प्रतिलिपियों के द्वारा किसी भी धर्म या समाज के संदेशों के प्रचार प्रसार का यह एक सशक्त माध्यम रहा।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में 19 वीं सदी का विशिष्ट स्थान है। इस सदी के प्रारम्भिक समय तक भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अंग्रेजों के आगमन के कारण पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से आक्रांत हो उठी थी। इस संक्रमण काल में विभिन्न धार्मिक व सामाजिक आंदोलनों ने भारतीय जनमानस को विशेष रूप से प्रभावित किया। भारत को पश्चिमी सभ्यता का अंग बनने से रोकने, भारतीय जन मानस में आत्म गौरव व आत्म सम्मान को पुनः प्रतिष्ठित में ये आंदोलन महत्वपूर्ण हो उठे।

भारत की अधिकांश जनता ग्राम्य अंचलों में रही है और अपनी सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं के लिये निकटवर्ती परिवेश पर आत्म निर्भर रही है। इसी आंचलिक आत्म निर्भरता ने ग्राम वासियों को एक विशिष्ट लोक संस्कृति व लोक जीवन शैली दी है। अंग्रेजों के भारत आगमन तथा उनके व्यापारिक हस्तक्षेप से मशीन निर्मित वस्त्र व वस्तुएँ हमारे हस्तशिल्पों तथा कुटीर उद्योगों का स्थान लेने लगे। इससे परम्परागत कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे व कृषि एवं जन जीवन के बीच बना संतुलन भी बिगड़ने लगा।

महात्मा गांधी ग्रामीण उपलब्ध संसाधनों, कुटीर उद्योगों के महत्व तथा भारतीय आर्थिक आत्म निर्भरता में इनकी भूमिका को लेकर सदैव सजग रहे। 'वर्धा योजना' के रूप में स्वतंत्रता के पश्चात इसका रूपान्तरण भी हुआ।⁹

महात्मा गांधी अपने युग के महान नेता थे। जन-नायक थे, उन्होंने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के आधार पर 1920 ई. से 1947 ई. तक राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किया। सारे देश में राजनैतिक चेतना जागृत की और कांग्रेस के राष्ट्रीय आंदोलन को एक जन आंदोलन के रूप में परिवर्तित कर दिया।

हरिपुरा – गुजरात के सूरत जिले में ताप्ती नदी के किनारे बसा गांव है हरिपुरा। यह बारडोली से लगभग 13 किमी. दूरी पर स्थित है। इंडिया नेशनल कांग्रेस ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विशाल सभा के आयोजन हेतु इस जगह का चयन किया था। यह सभा हरिपुरा सत्र या हरिपुरा अधिवेशन के नाम से प्रसिद्ध हुई जो कि वर्ष 1938 में आयोजित की गई थी। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का यह सत्र 19 से 22

फरवरी-1938 को आयोजित हुआ। इस स्थान के चयन का प्रस्ताव सरदार वल्लभ भाई पटेल ने दिया था।

महात्मा गांधी ने सभा स्थल पर प्रदर्शनी आयोजित करने के लिए बंगाल शैली के सुविख्यात कलाकार नन्दलाल बोस को आमंत्रित किया। गांधी जी की इच्छा थी कि वहां का परिवेश ग्रामीण भारत की सुन्दर तस्वीर प्रस्तुत करे। ग्रामीण आर्थिक स्वावलम्बन की झलक वहां दिखाई दे। यह पहला अवसर था जब चित्रकार सामाजिक सरोकार से जुड़ कर सार्वजनिक स्थल पर अपनी कला को प्रदर्शित करने जा रहे थे। नन्द लाल बोस ने पोस्टर चित्रों का एक सैट तैयार किया जो कि हरिपुरा पोस्टर्स के नाम से जाने जाते हैं।⁴

नन्द लाल बोस:- (3दिसम्बर, 188- 16 अप्रैल, 1966) नन्द लाल बोस बंगाल शैली के प्रमुख भारतीय चित्रकार हैं। अवनीन्द्रनाथ टैगोर के शिष्य नन्द लाल बोस की कला में विशुद्ध भारतीय तत्व नजर आते हैं। ये 1922 में कला भवन शांति निकेतन के प्राचार्य बने।⁵

उनके विचारों पर टैगोर परिवार का प्रभाव रहा, तथा उनकी कला अजंता के भित्ति चित्रों, भारतीय पौराणिक गाथाओं तथा भारतीय ग्रामीण जन जीवन से बेहद प्रभावित थी।

नन्द लाल बोस ने जवाहरलाल नेहरू के आग्रह पर भारतीय सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न व पद्म श्री के प्रतीक चिन्हों का रेखांकन भी किया साथ ही भारतीय संविधान पुस्तक की साज सज्जा भी की थी।⁶

नन्दलाल बोस सामाजिक विषयों के चित्रित कर उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़ना चाहते थे। अपने साथियों व छात्रों को साथ लेकर उन्होंने सामूहिक कला के ऐसे अनेक प्रयोग किये।⁷

तत्कालीन कला जगत के लिये यह एक क्रांतिकारी विचार था कि कोई कलाकार अपनी कला को राष्ट्र व समाज के किसी व्यापक फलक पर प्रस्तुत करे। उनकी राष्ट्रवादी सोच के लिये प्रेरणस्रोत पं. जवाहर लाल नेहरू एवं महात्मा गांधी थे।

उन्होंने अपनी कलाकृतियों में भारतीय जनजीवन के विषयों को चुन कर, लोक चित्रांकन शैली के तत्वों के साथ चटख रंगों को लेकर प्रयोग किये, जो कि पाश्चात्य संस्कृति के संक्रमण को झेलते भारतीय जन मानस को शुद्ध हवा के झोंके सी प्रतीत हुई। और इस प्रकार उन्होंने समकालीन कला धारा का रूख राष्ट्रवाद की ओर मोड़ दिया।⁸

नन्दलाल बोस भारतीय ग्रामीण हस्त शिल्पियों व लोक कलाकारों द्वारा बनाये जाने वाली सुन्दर, सरल व सहज कलाकृतियों दस्तकारियों, खिलौनों आदि को अत्याधिक सम्मान देते थे और अपने चित्रों में उन्होने इस प्रकार के अनेक प्रयोग भी किये। इन कलाओं को वे भारतीय संस्कृति व सभ्यता का सच्चा परिचायक मानते थे। खादी के हाथ से कते बुने वस्त्रों को वे भावनाओं और संस्कारों का ताना बाना समझते थे।⁹

यही विचारधारा गांधी जी के प्रति उनके हृदय में जो सम्मान था, उसे निरन्तर बढ़ाती थी जो कि स्वयं इन कुटीर उद्योगों के कट्टर पक्षधर थे।¹⁰

1930 में गांधी जी की दांडीयात्रा से प्रभावित होकर नन्द लाल बोस ने उनकी एक ब्लैक एण्ड व्हाइट लिनोकट कृति तैयार की जिसमें हाथ में लाठी थामें गांधी जी हर बाधा को पार करने के लिये तत्पर और सक्षम नजर आ रहे हैं। यह छवि गांधी जी की पहचान बन गई।¹¹

1934 में इन्दौर में राष्ट्रीय कांग्रेस के सत्र में आयोजित प्रदर्शनी का जन साधारण पर प्रभाव देख गांधी जी ने इसे राष्ट्रीय कांग्रेस के हर अधिवेशन में दोहराने का निर्णय लिया। 1935 में नन्दलाल बोस ने सर्वप्रथम गांधी जी के आग्रह पर राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन हेतु कला व शिल्प की एक प्रदर्शनी अपने साथियों के साथ मिलकर तैयार की।

नन्द लाल बोस व उनके साथी कलाकार असित कुमार हालदार, प्रभात मोहन, विनोद बिहारी मुखर्जी आदि ने मिलकर अजंता व बाघ के भित्ति चित्रों की प्रतिलिपियों को प्रदर्शनी के लिये तैयार किया। वहीं मुख्यद्वार को बांस, रीड़ व साधारण लकड़ियों तथा घरेलू घास इत्यादि से सजाया गया। गांधी जी ने उद्घाटन सत्र में कहा, ऐसा प्रतीत हो रही है। “मानो कश्मीर से कन्याकुमारी और सिंध से आसाम तक का भारत एक जगह सिमट आया है।” यह पहली प्रदर्शनी थी जो कि पूर्णतः ग्रामीण परिवेश प्रस्तुत कर रही थी, दर्शकों को भारतीय होने के गौरव का अनुभव करा रही थी।

1938 में हरिपुरा में नन्दलाल बोस ने फिर एक बार फिर समूचे वातावरण को ‘स्वदेशी’ के रंग में डाला। ग्रामीण अंचलों में सहज उपलब्ध— सामग्री बांस, लकड़ियों, रेत, टोकरियां, दरिया, बरतन, फसल इत्यादि से सभा स्थल, पांडाल, आवास सजाये गये।¹²

हरिपुरा पोस्टर्स सैट—

यहां नन्दलाल बोस ने लगभग 80 पोस्टर्स चित्रित किये जो कि लगभग 2 फीट से बड़े थे और उनके साथियों व विद्यार्थियों ने मिलकर इन सभी पोस्टर्स की लगभग 400 अनुकृतियां तैयार की। ये सभी चित्र handmade papers पर बने थे। साथ ही चटख खनिज रंगों व काली गहरी रेखाओं में बनाये गये थे। बांस, चटाई, खादी वस्त्रों के सम्मिलित पैन्ल्स को फ्रेम रूप में प्रयोग किया गया। सभा स्थल के हर कोने में ये पोस्टर्स भारत की आत्मा की झांकी प्रस्तुत करते नजर आये। इससे पूर्व सामाजिक स्थलों पर ग्रामीण जीवन से जुड़े सरल व रुचिकर विषयों पर किया गया चित्रण शायद ही कभी प्रदर्शित किया गया था। इन सभी चित्रों में कलकत्ता की कालीघाट पट चित्र शैली का प्रभाव दिखाई देता है।¹³

ये सभी पोस्टर्स ग्रामीण दर्शकों के लिये बेहद अपनत्व भरे थे, दैनिक जीवन के लगभग हर कर्म का सुन्दर रूपांकन, भारतीय शैली में किया गया जो कि बेहद आत्मीय लग रहा था।

शिकारी, संगीतज्ञ, बैल, गाये, चरवाहे, खाती, कुम्हार जुलाहा, खेतों में महिलायें, बच्चों को खिलाती, खाना पकाती महिलायें, बेहद सरल विषय और सरलतापूर्ण चित्रण। ये चित्र तत्कालीन ग्रामीण जन जीवन को आजादी के बाद के खुशहाल ग्रामीण भारत की झलक दिखाने में समर्थ हुए और साथ ही एक आत्म विश्वास जगा पाये कि ग्रामीण भारत भी आजादी के बाद आर्थिक रूप से स्वतंत्र और खुशहाल होगा। नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली में नन्दलाल बोस की लगभग 7000 कृतियां, जिनमें गांधी जी का 'दांडी यात्रा' चित्र तथा हरिपुरा अधिवेशन हेतु निर्मित पोस्टर्स में से 7 चित्रों का सैट सुरक्षित है।¹⁴ (सहायक संदर्भ चित्र पृ.सं.7)

यह एक छोटा सा किंतु सशक्त उदाहरण है कला व कलाकार के द्वारा भारतीय अहिंसात्मक सत्याग्रह को सुदृढ़ बनाने का। भारत जैसे विशाल गणतंत्र में जहां विचारों व अधिकारों को लेकर अनेक धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक आंदोलन समय-समय पर होते हैं, कलाएं अपने विविध रूपों में उन्हें अहिंसात्मक तो बनाती ही हैं, साथ ही रंगों व रेखाओं के द्वारा अभिव्यक्ति के माध्यम से सशक्त बनाती हैं। चित्रित पोस्टर्स, नारे, रेखाकन आदि पूर्ण अहिंसा के साथ हमारे विचारों को व्यक्त करने का पूरा सामर्थ्य रखते हैं।

हाल ही में 16वीं शताब्दी की प्राचीन मधुबनी चित्रकला को मधुबनी जिला, बिहार के ही षष्ठी नाथ झा के नेतृत्व में महिला कलाकारों द्वारा नेशनल हाईवे 52 के धने छायादार वृक्षों को बचाने के लिये प्रयोग किया गया। लगभग 100 से अधिक वृक्षों पर मधुबनी लोक कलाशैली में गणेश, सरस्वती, कृष्ण, लक्ष्मी आदि चित्रित किये गये और उन्हें कटने से बचाया गया। अहिंसा एवं रचनात्मकता से परिपूर्ण प्रदर्शन का एक और उदाहरण है 'सुदर्शन पटनायक' की रेत शिल्प कला (Sand art)। उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से लगभग 60 किमी दूर पुरी में जन्में सुदर्शन लगभग 7 वर्ष की आयु से ही मिट्टी में आकार गढ़ने लगे और आज वे इस कला के एक सफल व ख्यातनाम कलाकार हैं।¹⁵

सुदर्शन सभी राष्ट्रीय व सामाजिक पर्वों पर, राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय समस्याओं तथा वर्तमान समय के हर ज्वलंत पहलू पर समुद्री रेत में विशाल रचनाओं का सृजन करते हैं, जो मौन रह कर भी एक बड़े जन समुदाय के विचारों को अभिव्यक्ति देती हैं।

हमारे युवा आज हर छोटे बड़े सामाजिक पहलू पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये Face Painting जैसे रचनात्मक माध्यम का बखूबी प्रयोग करते हैं। समस्या कोई भी हो, वे अपने शब्दों, भावनाओं को सुंदर रंगों और आकार में व्यक्त कर अहिंसात्मक रूप से अपना मत प्रस्तुत करते हैं। – पूर्ण अहिंसात्मक प्रदर्शन का एक रूप भूतपजंहमूसा के रूप में भी देखने को मिलने लगा है। आधुनिक Technology व Digital Development ने इसे और अधिक Fast और Paper free बनाया है जिसमें हम Messaging / Emails इत्यादि के द्वारा किसी भी आंदोलन के प्रति अपनी विचारधरा को व्यक्त कर पाते हैं और राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अन्तराष्ट्रीय स्तर

पर भी अपना सहयोग या विरोध प्रकट करने की स्वतंत्रता रखते हैं। सम्भव है भारतीय अहिंसात्मक विचारधारा व आधुनिक तकनीक मिलकर भविष्य में होने वाली क्रांतियों को कुछ नया ही रूप दे पायेगी। उपरोक्त प्रयास प्रयावरण की दृष्टि से तो अनुशंसनीय हैं ही, साथ ही भारतीय दर्शन के अहिंसात्मक पक्ष का भी अनुशीलन करते हैं। न शाब्दिक हिंसा, न शारीरिक अथवा मानसिक हिंसा, फिर भी जनजन की विचारधारा व सोच को झकझोरने का महत्वपूर्ण माध्यम बन जाती है कला।

संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय इतिहास, प्रयाग पुस्तक भवन, 1999.
2. अर्पिता माथुर— भारत की तस्वीर, राज.हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2000.
आचार्य बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन,शारदा मंदिर, वाराणसी, 1997. पृ.सं. 562–581
बसंत निरगुणे— लोक संस्कृति,म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1996, पृ.सं. 10–11
3. एल. सी. नागोरी— आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. सं. 377 प्रणव देव
4. Bengal school of art- exhibition to open in u.s. The Economic Times, June, 24,2008.
5. Zimer h- The Art of Indian Asia, Pantheon Books Inc., Newyork 1955
6. The constitution of India, world digital library 2009-05-07. Retrieved 2010-12-09
7. अविनाश बहादुर वर्मा— भारतीय चित्रकला का इतिहास,बरेली, 1984, पृ.सं. 296–297
8. डा. प्रेम चंद गोस्वामी— आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, 'राज.हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1995, पृ.सं. 21.24
9. Dinkar Kaushik- Nandlal Base, The Doyen of Indian art, National Book Trust, India, 1985,P. 37
10. K. G. Subrananyan- The nandlal,Gandhi, Randhi, Rabindranath connection, Rhytham of India. The art of India, 2008. P. 92
11. अविनाश बहादुर वर्मा— उपरोक्त,
डा. प्रेम चंद गोस्वामी — उपरोक्त
12. Nandlal Bose. Vision and creation Vishav Bharti विश्व भारती, 1999, P, 235
13. Bengal school of art- Exhibition
15. Read it the Magazine- Sudarshan Pathaik the magicsand artist-India



डॉ.त्रिलोकी नाथ गौतम
कार्यवाहक प्राचार्य
गांधी महिला महाविद्यालय
किशनगढ़, रैनवाल

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में कला सृजन

मानव जीवन की ही भांति कला सृजन का इतिहास भी बहुत असीमित एवं बहुआयामी रहा है। कला सृजन की तीन प्रमुख धाराएं आदिकाल से चली आ रही है—

पहली स्वतः स्फूर्त जहां कला का प्रशिक्षण प्रायः सम्भव दिखाई नहीं देता है। दृश्य जगत में उसके द्वारा जो देखा गया उसी का उद्वेगपूर्ण या स्वतः रेखीय प्रतिक्रिया।

दूसरी सामुदायिक प्रचलन के अन्तर्गत कला सृजन जहां से कला सृजन की परम्परा जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्वाभाविक रूप से स्थानांतरित होती रही।

तीसरी एक विशिष्ट शिक्षण—प्रशिक्षण के अन्तर्गत विकसित श्रेष्ठतम कला सृजन की परम्परा जो गुरु—शिष्य परम्परा पर आधारित है।

कला सृजन के बारे में आरम्भिक जानकारी आदिम काल से मिलती है। जब आदिम मानव अनगढ़ शिलाओं एवं गुफाओं की दीवारों, छतों आदि पर अंकन करने लगा। प्रागैतिहासिक युग के जो अवशेष खुदाई में मिले उनमें प्रस्तरकालीन पत्थर के औजार व आभूषण आदि है। प्रागैतिहासिक कलावशेषों की गवेषणा करने वाले पुरातत्वज्ञ विद्वानों का अभिमत है कि आज की भांति आदि मानव भी सौन्दर्य उपासक था। उसकी इसी सौन्दर्य दर्शन की भावना ने ही उसके अमूर्त भावों को मूर्त रूप में चित्रित करने के लिए बाध्य किया होगा।¹ गुहावासी मानव ने जादू—टोना, टोटका से सम्बद्ध आकारों का निर्माण किया होगा जिनमें उसका तत्कालीन जीवन परिलक्षित होता है।

आदि मानव अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए विविध चित्रांकन के प्रति कोई विशेष रुचि रखता हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। ऐसा लगता है कि मानों वह एक स्वतः स्फूर्त प्रक्रिया में अनायास ही टेड़ी—मेड़ी रेखाओं में अपनी बात कह देता था।

कुछ विद्वानों ने प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला के संदर्भ में स्टुडियों जैसे स्थान की कल्पना विंध्यांचल गुफाओं के पास प्राप्त होने वाले रोड़ों के पिसे हुए नमूनों के आधार पर की है।²

अभ्यास के दौरान प्राप्त कौशल और तकनीकी दक्षता की बात भी कला के क्षेत्र में शुरू से रही है। सिंधुकालीन सभ्यता में मोहनजोदड़ों के रूपाकारों में इस अभ्यासगत दक्षता के दर्शन

होने लगते हैं। यहां बने भवन, स्नानागार, चौड़ी एवं समकोण पर काटती सड़कें, तांबे की मूर्तियां, टिकरे, बर्तन—भाड़े आदि पर बनी आकृतियां उस समय के दक्ष आर्किटेक्चर एवं शिल्पकारिता को दर्शाते हैं।

संस्थागत ढांचे में कला के प्रशिक्षण की विधिवत शुरुआत मानव के विकसित काल के बाद ही हुई होगी, जिसका प्रारम्भिक स्वरूप वैदिक युग में गुरु—शिष्य परम्परा के रूप में परिलक्षित होता है। यहां शिष्यों को गुरु के मार्गदर्शन में रहकर विद्याध्ययन करना पड़ता था। शिष्यों को विभिन्न प्रकार की कलाओं का ज्ञान इस रूप में दिया जाता था कि वह सदभावी बन सके, साथ ही वह अपने कला क्षेत्र में भी पारंगत हो जावे। ऋग्वेद में हमें कलाओं के मूल स्रोत अनेक पथों से प्रवाहित होते हुए प्राप्त होते हैं। वैदिक कालीन चित्रों के प्राचीन उल्लेख के सन्दर्भ में ऋग्वेद (1 / 145) में चमड़े पर बने अग्नि के चित्र की चर्चा मिलती है। इससे हमारी चित्रकला परम्परा उस काल से प्रमाणित होती है। इसी तरह अथर्ववेद में वास्तु रचना विधि गोष्ठीशाला, यज्ञशाला आदि की रचना विधि का वर्णन मिलता है। स्कंध पुराण के माहेश्वर खण्ड तथा वैष्णव खण्ड में वास्तु विद्या का वर्णन प्राप्त होता है। गरुड़ पुराण में वास्तु कला प्रतिपालक अध्यायों तथा दो सम्पूर्ण अध्यायों में मूर्ति रचना कला का वर्णन किया गया है। मत्स्य पुराण के आठ अध्यायों में मूर्ति रचना कला का वर्णन मिलता है। अग्नि पुराण के 13 अध्यायों में मूर्ति रचना कला का निरूपण तथा तीन अध्यायों में वास्तुकला को वर्णित किया गया है।

प्राचीन भारत के अन्तःपुर, नाट्यशालाएं, देव मंदिर, राज भवनों के बहिःप्रकोष्ठ सुकुमार कलाओं का आश्रय बने हुए थे। नभ कुलालेभ्य कमारिभ्यश्च कहकर यजुर्वेद में कुम्हार और बढई का भी स्तवन किया गया है। वेदकाल में मिट्टी, पत्थर और लकड़ी की मूर्तियां देव शिल्पियों द्वारा बनवाई जाने के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। वृहदारण्यक का कहना है कि विश्वकला का समस्त शिल्प देव शिल्पियों की अनुकृति मात्र है।³ वैदिक युग में "ऋभृत्" शब्द का हस्त कुशलता या निपुणता के सम्बन्ध में प्रयोग हुआ है। इस तरह के कुशल या कलाकार वेदिकाओं का भव्य निर्माण करते थे।⁴ दूसरी शती ई.पू. के वांग्मय से पता चलता है कि उस समय हमारे जीवन का चित्रकला से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वर—वधु की अनुपस्थिति में चित्र बनाकर उनका विवाह किया जाता था। ऐतिहासिक घटनाओं के चित्र बनाकर रखे जाते थे। इन सब बातों का पता भास के नाटकों से चलता है। प्रतिज्ञायौगंधरायण के अंत में उज्जैन का राजा चंद्र महासेन अपनी कन्या वासदत्ता और वत्स के राजा उदयन का चित्रफलक रखकर वैवाहिक कृत्य पूरा करता है।⁵

वैदिक काल से पूर्व ही रमणियां सर्वकलाओं से सर्वगुण सम्पन्न रही हैं। अनेक नृत्य, गायन एवं वादन में निपूण थी तो बहुत सी मूर्ति निर्माण एवं चित्रांकन में निष्णात थी। विष्णु पुराण भी इस तथ्य को उजागर करता है कि अप्सराएं सुन्दरियां इन कलाओं में निपूण होती थीं। ऐसी सुन्दरियों का समाज तथा देवताओं की जमात में सम्मानीय एवं प्रतिष्ठित स्थान था।⁶ भागवत

पुराण में यह उल्लेख भी प्राप्त हुआ है कि स्त्रियां चित्रकला में गहरी रूचि रखती थी। इसमें बताया गया है कि वाणासुर के मंत्री कुम्भाण्ड की कन्या चित्रलेखा स्मृति चित्रण में अत्यंत निपुण थी। जब उषा स्वप्न में अनिरुद्ध को देखकर उस पर मोहित हो जाती है तब उसकी विरह दशा को देखकर चित्रलेखा देव, सिद्ध, चारण, दैत्य व मनुष्यों के चित्र बनाकर उषा से उसके प्रेमी को पूछती है ओर उषा उन चित्रों में से अनिरुद्ध का चित्र पहचान कर उसे बता देती है। इस प्रकार चित्रकला के उस समय पर्याप्त विकसित एवं लोकप्रिय होने का संकेत प्राप्त होता है तथा इससे यह भी संकेत मिलता है कि उस काल में स्मृति से भी व्यक्ति चित्र अंकित करने का अभ्यास प्रचलित था।⁷

रामायण काल में बाल्मिकि ने चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, रंगमंच, नृत्य और स्थापत्य कला के विषय की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। रामायण के बालकांड में बाल्मिकि ने अयोध्यावासियों के वर्णन में उनकी कलानुरागिता तथा सौन्दर्यप्रियता का भी अच्छा दिग्दर्शन किया है। चित्रकला के प्रति समाज का अनुराग इतना अधिक था कि हाथियों के मस्तक और स्त्रियों के कपोलों पर भी आकर्षक चित्र रचना की जाती थी। तत्कालीन समाज के कलानुराग से राम भी प्रभावित हुये बिना नहीं रह सके थे। " राम वैहारिकाणां शिल्पानां ज्ञातां।" अर्थात् राम मनोरंजन के उपयोग में आने वाले संगीत वाद्य, चित्रकारी आदि शिल्पों के जानकार थे।⁸ बाल्मिकि कृत ग्रंथों में नगरों, दुर्गों और प्रासादों के वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि स्थापत्य विज्ञान का एक व्यवस्थित एवं उन्नत रूप उस समय तक स्थिर हो चुका था। इस संदर्भ में किष्किन्धा कांड (सर्ग 51) में एक कथा मिलती है कि दानवों के स्थपति मय ने तपस्या करके ब्रह्मा से शुक्राचार्य की शिल्प विद्या का समस्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। मतस्य पुराण में बताया गया है कि मय और शुक्र किसी समय वास्तु विद्या के 18 आचार्यों में सुप्रसिद्ध थे।⁹ रावण के सुविख्यात पुष्पक विमान को तत्कालीन कला-कौशल का सर्वोत्कृष्ट नमूना माना जा सकता है। उसमें दृष्टि और मन को सुख प्रदान करने वाले अनेक आश्चर्यजनक दृश्य थे, उसकी दीवारों पर बेलबूटे (भक्ति चित्र) बने हुए थे। रावण के राजमहल के वर्णन में चित्रशाला का भी उल्लेख हुआ है जो अपने युग की विख्यात चित्रशालाओं में से एक थी।

भारतीय कला सृजन में प्राचीन काल से ही मन की भूमिका का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस संदर्भ में महाभारत का यह उदाहरण दृष्टव्य है—

"अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा।

मयेन मनसा सृष्टं पाताल तल माश्रितम॥"

यहां सहस्र कलाओं के सृष्टा विश्वकर्मा द्वारा की गई विश्व सृष्टि वस्तुतः उसकी मानस सृष्टि (मन के द्वारा की गई) है। इसी प्रकार का विचार रामायण में भी मिलता है जहां विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लंका "मनसैवकृता" कही गई है।¹⁰ महाभारत विराट पर्व के 11वें अध्याय में वर्णित

विवरण की उत्तरा मतस्य नरेश विराट की पुत्री थी जिसकी कला शिक्षा के लिए राजा ने अनेक शिक्षक रखे हुए थे, से ट्यूटर रखे जाने की पुष्टि होती है।

कामसूत्र में वात्सायन ने जिन 64 कलाओं का उल्लेख किया है, उनमें ललित कलाओं के साथ-साथ श्रम मूलक एवं कौशल युक्त शिल्पों का समाहार है जिसमें चित्रकला को विशेष महत्व दिया गया है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड में पैतीसवें अध्याय से लेकर तैत्तलीसवें अध्याय तक चित्रसूत्र प्रकरण है जिसमें चित्रकला सम्बन्धी ज्ञान का प्रचुर विवरण संवादात्मक है। मार्कण्डेय मुनि राजा वज्र को चित्र निर्माण के नियम और प्रकार बताकर उनकी चित्र सम्बन्धी सभी जिज्ञासाएं पूर्ण करते हैं। पूर्वकाल में नारायण मुनि ने अति सुगन्धित आम का रस लेकर पृथ्वी पर एक उत्तम स्त्री (उर्वशी) का चित्र बनाया। चित्रकला के शुभ लक्षणों से सम्पन्न चित्र को अच्युत कर्म से च्युत न होने वाला विश्वकर्मा को सुपुर्द कर दिया।

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।

मांगल्यं प्रथमं चैतदगृहे यत्र प्रतिष्ठितम् ॥ 38 ॥

चित्रसूत्र में चित्रकला को सभी कलाओं से श्रेष्ठ माना है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाली है। जिस घर में इसकी प्रतिष्ठा की जाती है वहां पहले से मंगल होता है।¹¹ अजन्ता आदि के चित्रों से प्रत्यक्ष है कि चित्रसूत्र चित्र विद्या का कोरा शास्त्र न था बल्कि उसके सिद्धान्त एवं विधान का पूर्ण रूप से पालन किया जाता था।

चित्रलक्षण विश्वकर्मा और राजा नग्नजित (भयजीत) के द्वारा बताये गये चित्रकर्म के लक्षणों का संग्रह है। चित्र रचना सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन इसके तीसरे अध्याय में निरूपित है। इसमें पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष आदि के चित्रांकन की भिन्न विधियों तथा विभिन्न आकृतियों के अंगों तथा उपांगों के अनुपात में लम्बाई-चौड़ाई आदि का वर्णन मिलता है।¹² कुषाण राज्य के सम्राट कनिष्क के युग में भारतीय यूनानी कला का निर्माण हुआ। अनेक भव्य स्तूप और बड़े-बड़े नगरों की रचना उसके कला प्रेम और निर्माण कार्यों की परिचायक है। भारतीय कला और ज्योतिष के क्षेत्र में ग्रीकों का प्रभाव सर्वथा अपूर्व था। वास्तुकला और तक्षण कला के जो भी नमूने भारत में ग्रीक कला के अनुकरण पर निर्मित हुये मिलते हैं, उनमें प्रथम शताब्दी ईसवीं के तक्षशिला में एक देव मंदिर के ऊंचे पवन स्तम्भ और कुछ भवन उल्लेखनीय हैं।¹³

सारनाथ में अशोक स्तम्भ का सिंह मस्तक और बिहार के रामपुरवा में अशोक स्तम्भ का सांड मस्तक मौर्य युगीन कला के शक्ति व गति के प्रतीक हैं। मौर्य युग में लोककला का भी विकास हुआ जिसके फलस्वरूप यक्ष-यक्षिणियां, देवी-देवता आदि लोक विश्वास सम्बन्धी मूर्तियों का निर्माण हुआ।¹⁴ प्रस्तर स्तम्भों के अतिरिक्त कई सुन्दर मूर्तियों का निर्माण हुआ है जिनमें दीदारगंज (पटना) में मिली चामरधारिणी स्त्री की मूर्ति प्रमुख है। मौर्य सम्राट अशोक के समय अनेक स्तम्भ, स्तूप (सांची जैसा प्रसिद्ध स्तूप), चैत्य ग्रह, लोक मूर्तियों का

निर्माण हुआ। सारनाथ का स्तम्भ शीर्ष स्तम्भ कला की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है। दीर्घ अवधि तक मूर्तिकला के अभ्यास के बिना इस प्रकार की निर्मिति सम्भव नहीं लगती है। मार्शल की सम्मति में इस सर्वश्रेष्ठ कृति जैसी कोई दूसरी वस्तु प्राचीन विश्व में नहीं मिली। यह उस शिल्पी का बनाया हुआ है जिसके पूर्वजों ने सैकड़ों वर्षों तक कलात्मक तक्षण का पुष्कल अभ्यास किया होगा।¹⁵

गुप्तकाल में निर्मित अनेकों दिव्य मूर्तियां न केवल उस युग के धार्मिक अभ्युदय की सूचना देती हैं अपितु वे तत्कालीन भाष्कर्य कला की व्यापकता पर भी प्रकाश डालती हैं। भगवान बुद्ध की समाकर्ष धर्म-चक्र प्रवर्तन मुद्रा तत्कालीन भारतीय तक्षकों के असाधारण कला-कौशल का जीवित उदाहरण है। गुप्त सम्राटों ने अनेक सुन्दर मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण करवाया। स्तूपों, स्तम्भों एवं विशाल देव मंदिरों पर चित्रकला के भव्य नमूने अंकित करवाये।¹⁶

उपनिषद् काल से गुप्तकाल तक की कला पुस्तकों के अध्ययन से विदित होता है कि इस कालावधि में चार प्रकार के चित्र बनाये जाते थे। जिनका उल्लेख बाद में चालुक्य वंशीय सोमेश्वर द्वारा रचित अभिलषितार्थ चिंतामणि (मानसोल्लास) में मिलता है।

1. विद्व चित्र : जो दर्पण में पड़ी परछाई के समान वास्तविक अनुकृति होते थे।
2. अविद्व चित्र : जिन्हें चित्रकार मनोगत भावों के आधार पर अपनी कल्पना से बनाते थे।
3. रस चित्र : जो भिन्न रसों की अभिव्यक्ति के लिए बनाये जाते थे।
4. धूलि चित्र : अल्पना, चौक पूरना, सांझी आदि।¹⁷

संस्कृत नाटककार भास, कालिदास, हर्ष तथा अन्यान्व आदि ने अपनी-अपनी अमर कृतियों किसी न किसी प्रसंग से चित्रकला के आदर्श प्रस्तुत किये हैं। कालिदास के प्रत्येक नाटक का नायक चित्रकला का ज्ञाता, कला समीक्षक एवं चित्रकार रहा। उस समय की शिक्षा में ललित कला और उसमें भी विशेषकर चित्रकला का ज्ञान अनिवार्य था। मेघदूत में कालिदास ने लिखा—

“त्वामालिख्य प्रणय कुपितां धातु रागैः शिलायाम।”

यक्ष गैरु के रंग से पत्थर पर यक्षिणी का चित्र लिखता था।¹⁸

संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के उल्लेख भरे हुए हैं जिनमें चित्रकर्म में निपुण नायक-नायिका मन बहलाने के लिये एक दूसरे का चित्र लिखते थे, इन्हें रूपालेख्य भी कहा जाता था। केयूरक कादम्बरी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए चन्द्रापीड से कहता है कि वहां हेमकूट के अन्तःपुर में जो चित्रकला का अभ्यास किया जाता है उसमें आपकी ही आकृति के चित्र बनाये जाते हैं।

“त्वदाकारमयाश्चित्र कलाभ्यासः” (अनु. 241)

इसी तरह मेघदूत में वर्णित—

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा ।

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ति ।। (414-24)

अर्थात् देखो मेघ या तो वह तुम्हें वहां देवताओं को पूजा चढ़ाती मिलेगी या अपनी कल्पना से मेरे इस विरह से दुबके शरीर का चित्र बनाती मिलेगी ।

कालिदास ने तो अपने ग्रंथों में वर्तिका, तूलिका, चित्रफलक, चित्रशाला, चित्रवत्, चित्राचार्य आदि पारिभाषिक शब्दों तक का प्रयोग व्यापक रूप में किया है। अभिज्ञान शाकुंतलम में दुष्यंत द्वारा शकुन्तला के प्रतिकृति चित्र बनाने का वर्णन भी मिलता है। विद्वच्चित्रांकन परम्परा में या तो बने-बनाये चित्रों का विवरण मिलता है या फिर बनाये जाने का।

प्राकृत की जैन कहानी तरंगवति में तो ऐसा प्रसंग आया है जिससे उस समय चित्रों की प्रदर्शनियों के होने की सम्भावना की पुष्टि होती है— तरंगवति का नायक कहीं चला गया है अतः वह यह सोचकर अपने घर में चित्र प्रदर्शनी का आयोजन करती है कि शायद उसके द्वारा उसका पता चल जावे क्योंकि उस समय भी ऐसे आयोजन व स्थल कला के प्रति अभिरुचि रखने वालों के लिए उत्तम मनोरंजन और आकर्षण के केन्द्र समझे जाते थे। आज दिन भी मूर्तिकार को चित्रकार, मूर्तियों के लिए स्केच देता है। सम्भवतः ऐसी ही प्रथा उस समय थी क्योंकि कथा सरितसागर की एक कहानी में यह प्रसंग आया है कि चिकने खम्भे पर चित्रकार ने चित्र बना दिया। इसी तरह हेमचन्द्राचार्य के त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित से पता चलता है कि राजभवनों में एक चित्रसभा रहती थी जिसमें भित्ति चित्र बने होते थे।¹⁹ कभी-कभी ऐसी कार्यशलाओं के भी वर्णन मिलते हैं जहां पर एक आवसानी (आचार्य) के निर्देशन में कार्य किया जाता रहा। परकम व सींग का नागला से प्राप्त यक्ष-यक्षिणि की मूर्तियों के नीचे यह लेख मिला है—

“निभद पूगे रान अथन्पि कुणिकान्तेवासिना गोमित केनकाता।”

इसमें गोमित (कुनिका के शिष्य) द्वारा निर्मिति का वर्णन है।

इन कथा ग्रंथों के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उस समय भी चित्रकला में रुचि थी। पाठ्यचर्या में धर्म, विज्ञान, दर्शन की शिक्षा के अलावा ललित कला भी शामिल थी। उस युग में स्थापत्य, चित्र, मूर्ति, संगीत, वाद्य आदि कलाएं जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी थी और कला को संस्कृति में प्रमुख स्थान प्राप्त था।

संदर्भ ग्रन्थ

1. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1972 पृष्ठ 134
2. कला एक अध्ययन, मनोहर लाल, पृष्ठ 2
3. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, (सम्पादकीय)
4. ऋग्वेद (1-145-5)

5. भारतीय चित्रकला, रायकृष्ण दास, पृष्ठ 7
6. कला किरण, अंक जनवरी, 1999, पृष्ठ 5
7. भागवत पुराण (10.62.18-21)
8. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृष्ठ 80,81
9. कला अंक सम्मेलन पत्रिका, पृष्ठ 88,89
10. रामायण (4.2.22) मनसैवकृतां लंका निर्मितां विश्वकर्मणाः
11. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृ. 475
12. भारतीय चित्रकला का इतिहास, अविनाश बहादुर वर्मा, पृष्ठ109
13. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृष्ठ 136,137
14. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृष्ठ 136
15. भारतीय कला, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ 138
16. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, पृष्ठ 137
17. कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, (सम्पादकीय)
18. मेघदूत (2 42)
19. भारतीय चित्रकला, रायकृष्ण दास पृष्ठ 27,28



डॉ. श्री कृष्ण यादव
प्राचार्य, आर्य कॉलेज
सिंघाना, झुंझुनू

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

झुंझुनू स्थित चिड़ावा के प्रमुख मन्दिरों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक परिदृश्य

शेखावाटी में झुंझुनू से 36 कि.मी. दूर स्थित यह गौरवपूर्ण ऐतिहासिक नगर है। खेतड़ी के राजा बाधासिंह जी ने 'वादा विजयगढ़' का किला बनवाया था। यहाँ की सबसे प्राचीन बस्ती बोड़िया कुआ भंगीणिया जोहड़ है जो प्राचीनता का प्रतीक है।

19वीं शताब्दी चिड़ावा का स्वर्णयुग था। इस समय कई विभूतियों का आर्विभाव हुआ, सेठ सूर्यमल जैसे दानवीर, श्री दुलीचन्द जी जैसे संगीतकार, पं. रामलाल जी जैसे वेदों के ज्ञाता और नानूराम जैसे ख्याल गायक तथा नरसी रो मायरो के प्रणेता श्री पीरामल वैद्य। इसके अलावा अनेक कवि, संगीतज्ञ एवं काव्य मर्मज्ञ हुये हैं।

यहाँ प्रसिद्ध उद्योगपतियों डालमियां, भगेरिया, सोमानी, अडूकिया सेठों, सेक्सरिया आदि की जन्मस्थली है। यहाँ इन सेठों की हवेलियाँ स्थापत्य कला का जीता जागता नमूना है। डालमिया परिवार, सोमानी सेठों का शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में विशेष योगदान है। 'पं. गणेशनारायण जी' की साधना स्थली भी यही है। इस प्रकार यह विद्वानों, संतों, समाज सेवियों, उद्योगपतियों, संगीतज्ञों, कवियों की कर्मस्थली रही है। यहाँ के प्रमुख मंदिर व लघु धाम निम्नलिखित हैं :-

चिड़ावा के नगर देव परमहंस पं. गणेशनारायण :- एक चमत्कारी औघड़ संत पं. बावलिया चिड़ावा अघोरी सम्प्रदाय में अवतरित पं. गणेशनारायण आज पूरे देश में पूजे जाते हैं। शेखावाटी की संत परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र सदृश बावलिया बाबा के नाम से प्रसिद्ध परमहंस महात्मा पंडित गणेशनारायण का जन्म राजस्थान के झुंझुनू जिले में नवलगढ़ के निकट स्थित बुगाला गाँव के खण्डेलवाल ब्राह्मण परिवार में पोष कृष्ण प्रतिपदा गुरुवार संवत् 1903 (1846 ई.) में हुआ। शैशव काल के बाद आपके पिता घनश्याम दास तथा माता गौरी देवी बुगाला छोड़ कर नवलगढ़ आ बसे। वही आपका बचपन बीता, शादी हुई लेकिन आप विरक्त भाव से ही रहे। बचपन में सनातन संस्कृति के परिवेश में पले गणेशनारायण ने अल्पायु में ही कर्मकाण्ड, ज्योतिष, वेद तथा धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाल लिया कि यह संसार दुःखों का घर है और शरीर नश्वर है। अतः मानव को अपने कल्याण का मार्ग अपनाकर जन्म-मृत्यु के बंधन से छुटकारा

पाने का कोई उपाय अवश्य करना चाहिये। धर्मपत्नी स्योनदी के आग्रह पर आप आजीविका हेतु नवलगढ़ के एक सेठ के घर संतानोत्पत्ति की कामनार्थ भगवती देवी अनुष्ठान कर रहे थे, तब सहसा माँ की असीम अनुकम्पा से आप के ज्ञान—चक्षु खुले और गृहस्थी परित्याग कर अवधूत बनकर विचरण करते रहे। काली की उपासना करने लगे। उसी काली द्वारा शिव आराधना का आदेश पाकर आप ङः बीज मंत्र का जाप करने लगे, शिव स्वरूप हो गये। वे पूर्ण अघोरी हो गये थे। सभी वस्तुओं, व्यक्तियों एवं पशु—पक्षियों में भी अभेद वृत्ति समझते थे। ऐसी वृत्ति के कारण लोग उन्हें पागल समझते थे तथा 'बावलिया पंडित' कहकर पुकारते थे।

गुढ़ा गौड जी की बारे में कहा जाता है कि छप्पनिवें अकाल के समय आप यकायक चिड़ावा नगर पधारे तो आपके पदार्पण से चिड़ावा में अकाल का दुष्प्रभाव मिट गया और ईश्वर कृपा से अच्छी पैदावार होने से नगर में यह चर्चा फैल गई कि बावलिया बाबा परमहंस पं. गणेशनारायण जैसे सिद्ध संत के नगर में निवास करने से अकाल की विभिषिका से मुक्ति मिली है, फिर तो पूरा चिड़ावा इन्हें नगर देव के रूप में मानने लग गया और आपने भी चिड़ावा नगर को ही अपनी कर्मस्थली मानकर अन्यत्र जाने का विचार छोड़ दिया।

आपके अन्य भक्तों में एक थे 'जुगल किशोर बिड़ला' जिन्हें आपने ही सर्वप्रथम पिलानी से शुभ मुहूर्त बताकर कोलकाता विदा करते हुये कहा था "अरे जुगल किशोर, आज तो तेरा शुभ दिन आया है जा भाग जा और करणी वरणी चालू रख" और सेठ जुगल किशोर बिड़ला अपने भाग्य विधाता की बात पर उसी समय कोलकाता हेतु रवाना भी हो गये किन्तु रास्ते में उन्हें दायीं ओर फन उठाए काला नाग मिला जिसे सेठ ने न जाने क्यों अशुभ—शकुन मान लिया और भावावेश में कोलकाता जाने का विचार छोड़ दिया, पर जब वापिस लौटकर पं. परमहंस को सेठ ने यह घटना बताई तो वे बहुत नाराज हो गये और कहने लगे, अरे जुगल किशोर तूने बहुत बड़ी भूल कर दी। यदि काले सर्प का तू दर्शन करते हुये सीधे कोलकाता जाकर व्यापार शुरु कर देता तो तू चक्रवर्ती बन जाता पर अब वापिस जाता है तो भी तेरी कीर्ति सर्वत्र फैलेगी और तू उद्योग व्यापार में बहुत लाभ कमा सकेगा और इतिहास गवाह है कि बावलिया बाबा के कहने पर सेठ घनश्यामदास बिड़ला कोलकाता रवाना हुये और आज भारत के प्रमुख उद्योगपतियों में बिड़ला परिवार भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

आप मरघट में और शिव मंदिर में 'ङः' बीज मंत्र का जाप करते हुये अपने भक्तजनों, श्रद्धालुओं को यह उपेदश देते थे कि—

पल में पवन घणेशी चलती, पल में पत्ते हले ना चले।

पल में पंछी उड़ते देखे, पल में आप कटादे गल।।

पल में कूप तालाब सुखादे, पल में कर दे जल ही जल।

पल में भीख मंगा दे, जिनके लारे लशकर दल।।

पल भर में वह राजा कर दे, जिसके कर्म में स्वाति जल।

पल भर में वो जवान बना दे, पल में कह दे वृद्धावल।।

करते हैं—कर्त्ता डरिये, करता लावे घड़ी न पल।।

पंडित जी अनेक लीलाएँ करने के पश्चात् अन्ततः चौरासियों के शिवालय में पौष सुदी नवमी संवत् 1969 (1912 ई.) को आपने अपनी इहलीला समाप्त कर ली। तब चिड़ावा नगर की गली—गली से निकली बैकुंठी में पूरा नगर जय—जयकारा करता हुआ नाच—कूदकर भजन—कीर्तन में लीन अपने आराध्य देव की अंतिम यात्रा में शामिल हुआ। तब कुछ श्रृद्धालुओं को यही चिंता सता रही थी कि बाबा की दाह क्रिया के समय तक यदि सूर्यास्त हो गया तो क्या होगा। किन्तु कहते हैं कि उस दिन तो स्वयं भगवान भास्कर (सूर्य देव) का स्थ भी आकाश मार्ग से परमहंस बावलिया बाबा की अभूतपूर्व, अनुपम, अदभुत बैकुंठी देखने रुक गया और जब दाह संस्कार हुआ तब सभी भक्तजन नतमस्तक थे क्योंकि तब तक सूर्यास्त नहीं हुआ।

चिड़ावा की शमशान भूमि ही पंडित जी की साधना स्थली रही। शिव की क्रीड़ा स्थली शमशान है अतः वही उन्हें अधिक प्रिय लगी।

आज भी लोग चिड़ावा के पश्चिम—उत्तर का गाँव शिवपुरा (श्योपुरा) कहलाता है। पंडित जी इसे कैलाशपुरी एवं शिवपुरी कहते थे। इसी पुनीत भूमि में कभी सरस्वती नदी बही होगी। किसी समय यह नगर ख्याति प्राप्त राज्य रहा होगा, क्योंकि इसके उत्तर में पुराने अवशेष, मूर्तियाँ आदि 6—7 कि.मी दूरी पर मिले हैं। सम्भवतः यही मुख्यतः सारस्वत प्रदेश रहा होगा।

शिव नील लोहित है, इसीलिये पंडित जी नीले वस्त्र धारण करते थे। खप्पर की जगह मिट्टी की हंडिया तथा त्रिशूल की जगह लकड़ी तथा शमशान में रहकर साधना करते थे। इससे आपमें अदभुत वाक् शक्ति थी।

चिड़ावा में आज भी लोग किसी शुभ कार्य से पूर्व या यात्रा से पूर्व पंडित जी के मंदिर में जाकर दर्शन करते हैं तथा आशीर्वाद पाते हैं। प्रत्येक वर्ष पुण्यतिथि पर पौष सुदी नवमी को भव्य जागरण व मेला भरता है जिसमें हजारों की संख्या में लोग मनौतियां मांगते हैं। प्रत्येक गुरुवार को भी समाधि स्थल तथा चौरासियों के मंदिर में जागरण किया जाता है। वर्तमान में पंडित गणेशनारायण के नाम पर अनेक संस्थाएँ तथा ट्रस्ट समाज सेवा के कार्यों में संलग्न है।

मंदिर के मुख्यद्वार पर दो छतरियाँ व विशालकाय गणेश जी की मूर्ति है जिसके दोनों तरफ दो स्त्रियाँ पूजा की थाली लिये खड़ी है। दो चीते की मूर्तियाँ भी दोनों तरफ की दीवार पर शोभायमान है। गेट पर लिखा है यह गेट श्री पंसारी परिवार ने बनवाया है। मंदिर के अन्दर के कक्षों के ऊपरी भाग पर धार्मिक चित्र चित्रित है। नीचे तरफ बावलिया बाबा को विभिन्न देवी—देवताओं के साथ दर्शाया है।'

नरहड़ की प्राचीन दरगाह (चिड़ावा) :- यूं तो शेखावाटी क्षेत्र में मंदिर—मस्जिद व अन्य धार्मिक स्थल सैकड़ों व हजारों की तादाद में मिल जायेंगे, लेकिन झुन्झुनू से 40 कि.मी.

दूर चिड़ावा—पिलानी सड़क मार्ग पर देव रोड़ से 3 कि.मी. दूर स्थित है— एक गाँव 'नरहड़'। गाँव के एक ओर बनी 'हजरत हाजिब शक्करबार शाह' की प्राचीन दरगाह। इस दरगाह के कारण यह स्थल एक तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। नरहड़ में प्रत्येक जन्माष्टमी के दिन दरगाह के बाहर एक बड़ा मेला लगता है।¹ इस अवसर पर सभी धर्मों के लोग बिना भेदभाव के न केवल हिन्दु एवं मुसलमान वरन् सभी धर्मों और सम्प्रदायों के अनुयायी भाग लेते हैं और अपनी मन्तते मंगवाने व बच्चों के जात-जडूलों के संस्कार पूर्ण करने के लिये आते हैं। बड़ी संख्या में जायरीन राजस्थान से ही नहीं अपितु हरियाणा प्रान्त से भी आते हैं और पीर बाबा की मजार पर चादरें और पुष्प चढ़ाते हैं। दरवाजे पर रखी तिजोरी में नकदी भी चढ़ाई जाती है। महिलाएँ भी यहीं से बाबा की हाजरी लगाती है।

भावात्मक एवं सांस्कृतिक एकता के प्रतीक इस मेले में जायरीन द्वारा सत्य, अहिंसा, त्याग, संयम, क्षमा, अनुशासन और सदाचार जैसे मानवीय गुणों का अक्षरशः पालन किया जाता है। एक मान्यता यह भी है कि जिसको बाबा बुलाता है वही उनके दरबार में हाजरी देने पहुँचता है। भक्तजनों के कारण यहाँ की दरगाह धार्मिक सदभाव, न्याय एवं प्रेम का केन्द्र बन गई है। श्रद्धालु भक्तों द्वारा नरहड़ के पीर बाबा को एक दिव्यात्मा के रूप में स्वीकारा है। इसी कारण जन्माष्टमी के दिन मेले में लाखों जायरीन पहुँचते हैं। किवदन्ती है कि कभी नरहड़ प्राचीन जोड़ राजाओं की राजधानी था और उस समय उसमें 52 बाजार हुआ करते थे। पठानों के जमाने में लोदीखां गवर्नर थे। उनके राजपूतों के बीच हुये युद्ध में वे निरन्तर परास्त हो गये और यहाँ आकर उनके सैनिक तथा घोड़े भी थकते गये। तभी दिव्यवाणी के रूप में पीर बाबा ने कहा कि तुम कैसे जीत सकते हो ? यदि मजार से हटकर लड़ोगे तो जीत जाओगे। जब दिल्ली के सैनिक दूर हट-कर लड़े तो जीत भी गये। उसी समय से यहाँ के पीर बाबा की आस्था कायम है। यह भी कहा जाता है कि पीर बाबा शहीदों में से एक है। यह बात सत्य है कि उस दिव्यवाणी के प्रकटीकरण के साथ ही हजरतशाह शक्करबार की मजार तैयार कराई गई और उसके बाद दरगाह का निर्माण कराया गया। मजार और दरगाह निर्माण के बाद पीर बाबा की प्रसिद्धी बढ़ी थी। जायरीनों का तांता सा लग गया। इस दरगाह में 'तीन' दरवाजे हैं जिनमें पहला 'बुलन्द दरवाजा', दूसरा 'बसन्ती दरवाजा' और तीसरा 'बगली दरवाजा'। इन तीनों द्वारों के बाद मजार शरीफ एवं मस्जिद है। मजार का गुम्बद चिकनी मिट्टी से बना हुआ है जिसकी खासियत है कि उसमें कहीं भी पत्थर नहीं लगा हुआ है। यह भी कहा जाता है कि कभी गुम्बद से शक्कर बरसती थी इसलिये पीर बाबा को शक्करबार नाम दिया गया है।

दरगाह क्षेत्र में एक ओर पीर बाबा के साथी भी समीप ही दफना दिये गये थे, जिसे 'घरसों वालों की मजार' कहा जाता है। दरगाह स्थित बारादरी में रात्रिजगा और जिकड़ी के कार्यक्रम रखे जाते हैं। यहाँ कव्वालियाँ भी होती हैं जिनका रूप श्रद्धान्जलियों जैसा होता है। दरगाह के मुख्यद्वार के ऊपर बनी खिड़कियों से ऊपर निकलकर एक तरफ से दूसरी ओर जाने का

मतलब स्वर्ग द्वार तक पहुँचना है। यहाँ आश्चर्य यह है कि घरसों वाली मजार पर विकृत मस्तिष्क वाली महिलाएँ बिना होशहवास के भी पहुँच जाती है। इन महिलाओं का ईलाज दरगाह में पहुँचने पर अवश्य होता है। यहाँ आने वाला रोगी निराश होकर नहीं लौटता। दरगाह में एक जाल का वृक्ष है जहाँ पर जायरीन अपनी मिन्नतों के डोरे टांगते हैं और बाबा उनकी मिन्नतें पूरी करते हैं। इस प्रकार से अजमेर के गरीब नवाज ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती दरगाह को भारत स्तर की एक बड़ी दरगाह और उन्हें सूफियों का बादशाह कहा जाता है। उसी प्रकार पीर बाबा की दरगाह को राजस्थान स्तर की बड़ी दरगाह और पीर बाबा को बागड़ के धणी कहा गया है।³

पीर बाबा ख्वाजा साहब के अजमेर पहुँचने से पहले यहाँ आ गये थे। कोई पाँच एकड़ क्षेत्र में लगने वाले इस बहुरंगी मेलों में जायरीन के लिये ट्रस्ट द्वारा धर्मशाला, दुकाने, भोजन सहित यहाँ अन्य सुविधाएँ भी उपलब्ध करवाई जाती है। मुस्लिमान जायरीन शुक्रवार की नमाज अदा करने के बाद ही मेले से लौटते हैं। यहाँ की संदल पवित्र मिट्टी के कुंड में स्नान करने से मानसिक विकृति वाले लोग ठीक हो जाते हैं। दरगाह में पहुँचने के लिये जयपुर-लुहारु व दिल्ली जयपुर रोड़ द्वारा चिड़ावा-पिलानी के बीच देवरोड़ से उतरने के बाद टेम्पों आदि की सुविधा हर दिन उपलब्ध रहती है। 'कौमी एकता के लिये विख्यात है, नरहड़ की दरगाह शक्करबार के दरबार में जन्माष्टमी को मेला लगता है।⁴

शहर के अन्य बने प्राचीन मंदिरों में 'जगदीश मंदिर', 'जैन मंदिर' तथा 'राणी सती मंदिर' है। 'श्याम मंदिर' में बाहरी दीवारों पर सुन्दर अलंकरण है। गर्भगृह के ऊपर कृष्ण गोपियों एवं ग्वालों सहित बाग में बांसुरी बजाते चित्र चित्रित है। पिलानी रोड़ स्थित 'श्री रामेश्वर धाम बालाजी के मंदिर' का विशाल द्वार आकर्षक है। छतरियों के मध्य आदमकद हनुमान, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, सरस्वती, लक्ष्मी, आदि की रंगीन मूर्तियाँ सुशोभित है। बाहर की तरफ स्तम्भों के बीच दुर्गा व विष्णु के चित्र चित्रित है।

चिड़ावा का ही 'विधा निकेतन' का द्वार भी अजंता शैली से उठाये गये फूल पत्तियों, कमल के अलंकरणों एवं मोर व हाथी के रूपाकारों से उभार रूप में चित्रित है।⁵

संदर्भ ग्रन्थ

1. हकीम यूसुफ झुन्झुनवी से प्राप्ति जानकारी के आधार पर
2. टी.सी. प्रकाश; शेखावाटी वैभाव, झुन्झुनू, 1993, पृ. 138-139
3. मदनलाल वर्मा; (मास्टरजी) शेखावाटी अंचल 555 वर्ष, कला, संस्कृति, त्याग, बलिदान एवं दान, जयपुर, 2000, पृ. 107
4. तारादत्त निर्विरोध; शेखावाटी (सांस्कृतिक इतिहास के विविध आयाम), जयपुर, 1988, पृ. 149-150
5. सर्वेक्षण के आधार पर लिखा गया लेख



रितिका कुमारी मीना

शोधार्थी

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय

उदयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

सिटी पैलेस – एक अध्ययन

जयपुर शहर अपनी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत के लिए विश्वप्रसिद्ध है। जयपुर शहर की स्थापना महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय (1699–1744) के द्वारा 18 नवम्बर 1727 ई. को की गई थी।¹ जयपुर शहर का निर्माण पूर्ण समरूपता व एकरूपता के साथ किया गया है। यहां की सड़के लम्बी व चौड़ी हैं। जो एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं तथा ये शहर की धमनियों के समान प्रतीत होती हैं। इन सड़कों के साथ शहर की गलियां भी जुड़ी हुई हैं, जो कि सड़कों की भांति ही एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं। इन गलियों के किनारे दोनों ओर घर बने हुए हैं, जो कि व्यापारियों एवं आम जनता के निवास स्थान हैं। शहर की सड़कों का नक्शा कुछ इस तरह से बनाया गया है कि वे एक समान कलात्मक रूप लिये हुए प्रतीत होती हैं। शहर की योजना एक बंगाली ब्राह्मण जिनका नाम विद्याधर भट्टाचार्य था, के द्वारा तैयार किया गया था।

जयपुर शहर बढ़ती हुई सी घाटी, जो तीन तरफ से पहाड़ियों से आवृत है के मध्य स्थित है जो प्राकृतिक तथा कलात्मक रूप से किलेबंद सी प्रतीत होती है। वही चौथी व दक्षिणी तरफ से शहर की सुरक्षा के लिए दीवार का निर्माण किया गया है। यह दीवार 20 से 25 फिट ऊंची है जो कि पत्थरों से निर्मित है। दीवारें काफी चौड़ी हैं जिसकी मुंडेर पर थोड़े-थोड़े अंतराल पर गोली मारने के लिए खुला स्थान छोड़ा गया है। दीवार पर कुछ अंतराल में अटारियां बनी हुई हैं तथा शहर में प्रवेश के लिए मुख्य-मुख्य स्थानों पर प्रवेश द्वारा बनाये गये हैं। ये दरवाजे वैभवयुक्त एवं कलात्मक रूप से बहुत ही सुंदर दिखलाई पड़ते हैं। दरवाजों के जगह पर दीवारों की चौड़ाई काफी अधिक बढ़ा दी गयी है, जिससे कि उनके अंदर खाली जगह का निर्माण किया गया है। जो कि द्वारपाल के रहने का निवास स्थान सा प्रतीत होता है। इन दरवाजों को अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जैसे सांगानेरी गेट, अजमेरी गेट, सूरजपोल, चांदपोल आदि।²

जयपुर शहर पूर्व से पश्चिम की ओर 2 मील तक फैला हुआ है जो कि दो द्वारों के मध्य विस्तृत है, सूरज एवं चांद (ये सूरजपोल एवं चांदपोल के नाम से जाने जाते हैं।) दरवाजों

के बीच का विस्तृत भाग कई आयताकार खण्डों में बंटा हुआ है। इसके मध्य का अहता 120 फिट चौड़ा है, जिसकी लम्बाई से तीन मुख्य सड़के गुजरती है जो कि शहर के इस भाग को आठ बराबर भागों में बांटती है। ये आठ बराबर भाग भी दूबारा से आयताकार भागों में बंटे हुए हैं। ये बंटे हुए उपखण्ड फिर छोटी-छोटी आंतरिक गलियों से मिलती है। शहर अपनी चौड़ाई में उत्तर से दक्षिण की ओर 1 मील विस्तृत है, जो कि अजमेरी गेट से लेकर नाहरगढ़ मार्ग तक फैला है।

शहर के मध्य खण्ड को 'शरहद' के नाम से जाना जाता है जो कि चन्द्रमहल के एक तरफ स्थित है। चन्द्रमहल का प्रांगण शहर के 1/7वां भाग को घेरे हुए है। चन्द्रमहल को अब हम "सिटी पैलेस" के नाम से पुकारते हैं। यह शहर के दिल के रूप में उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित है। सिटी पैलेस का इतिहास जयपुर शहर और इसके शासकों के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। सिटी पैलेस का परिसर कई एकड़ में फैला है। इसकी बाहरी दीवारों का निर्माण भी जयपुर शहर के परिसर के निर्माण कार्य के साथ ही प्रारम्भ हो गया था, जिसका श्रेय महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय को ही दिया जाता है।

1744 ई. में जयसिंह की मृत्यु के बाद राजपूत राजाओं के संबंध सौहार्दपूर्ण रहे। ब्रिटिशकाल में महाराजा रामसिंह के द्वारा स्वयं को इम्पीरियल शासकों के साथ स्थापित करने के लिए उसने जयपुर के प्रमुख भवनों एवं स्मारकों (सिटी पैलेस सहित) को "पिंक या गुलाबी" रंग से रंगवा दिया गया और तब से शहर को "पिंकसिटी" या "गुलाबी नगर" का नाम दिया गया।

सिटी पैलेस एक स्थानिक मिश्रण है जिसमें कि अन्दर प्रवेश करते ही अनुक्रमिक रूप से भवनों से घिरा हुआ एक प्रांगण दिखाई पड़ता है। जो कि महाराजा तथा उनकी रानियों के निवास स्थान है। ये राजभवन अपने आप में अलग विशेषताएं समेटे हुए हैं। इसके निर्माण में भारतीय मुगल तथा यूरोपीय शैलियों का अद्भूत समन्वय किया गया है। सिटी पैलेस में प्रवेश हेतु विभिन्न द्वार बने हुए हैं। वीरेन्द्र पोल, जितेन्द्रपोल, त्रिपोलिया पोल तथा सिरह ड्योढी पोल मुख्य प्रवेश द्वार हैं। त्रिपोलिया गेट केवल राजपरिवार के प्रयोजन हेतु तथा अन्य द्वारा सामान्य जन हेतु उपयोग किया जाता है।

वैकल्पिक रूप में सिटी पैलेस को प्रांगण को एक सीधी रेखा के रूप में देखा जा सकता है। सिटी पैलेस में आगे बढ़ते हुए केन्द्र में पहुंचने पर ऐसा आभास होता है कि इसका निर्माण करते समय इसे एक सुरक्षित केन्द्र के रूप में निर्मित किया गया था। पूर्वी ओर देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसके अन्दर द्वार को जाने का मार्ग अनुक्रमिक रूप से सात दरवाजों से होकर गुजरता है।⁹ इनमें से प्रथम द्वार सिरह ड्योढी या बाहरी दरवाजा कहलाता है। यह गुलाबी रंग से रंगा हुआ है। ताकि बाजार में स्थित अन्य स्मारकों के समतुल्य प्रतीत हो, क्योंकि वहां की

सारी इमारते गुलाबी रंग से रंगी है। द्वार के कुछ दूरी पर आगे बढ़ते ही “नक्कार वालों” का दरवाजा है। इसके नाम से ही इसके कार्य का पता चलता है। यह दुदुम्बी ग्रह है जो कि संगीतज्ञों सुसज्जित एक बरामदा है जहां से संगीतकार महाराजा के आने जाने की घोषणा किया करते है।

जहाँ जयपुर शहर की अन्य इमारते गुलाबी रंग से रंगी हुई है। वही सिटी पैलेस “दुधिया पीले” रंग से रंगा हुआ है जिससे कि यह हमें देखने पर विशाल प्रतीत होता है। यहां आगे “जलेबी चौक” स्थित है, जो चारो तरफ से महिलों के विभिन्न दतरों से घिरा हुआ है। इसके आगे तीन दरवाजे दिखलाई पड़ते है। उदयपोल जो कि पूर्व के ओर देखता हुआ है। इसके कारण इसका नाम “उदयपोल” पड़ा है उदयपोल के पास अन्य दो दरवाजे है जो कलात्मक रूप से कम आकर्षित प्रतीत होते है। ये एक समान दरवाजे है “उजयपोल” तथा “जयपोल” है।

इन्हें छोड़कर दक्षिण की ओर आगे बढ़ने पर हम एक प्रांगण में प्रवेश करते है। जिससे होकर हम छोटे प्रांगण में पहुंचते है जिसे दीवाने आम के नाम से जाना जाता है। यहां से पश्चिम की ओर आगे बढ़ने पर ‘अम्बापोल’ नामक दरवाजा स्थित है। अम्बापोल से हम एक विशाल प्रांगण में प्रवेश करते है जिसे “सर्वोतो भारदा” कहते है। इसके पश्चिम में अंतिम एक दरवाजा दिखलाई पड़ता है जो कि “गणेश पोल” कहलाता है। गणेश पोल के भीतर एक गैलेरी से गुजर कर हम सिटी पैलेस के निजी राजनिवास “चन्द्र महल” में प्रवेश करते है।⁴

चन्द्रमहल के निर्माण में एक विशिष्ट वास्तुशैली का प्रयोग किया गया है, जो कि परम्परागत तथा शुभ सात अंक की प्रणाली पर आधारित है। यह समानान्तर एवं लम्बवत दोनों ही रूपों में प्रयोग में लाई जाती है। वास्तुशास्त्र के आधार पर पद्धति सिद्ध होती है। इसी के अनुरूप चन्द्रमहल का निर्माण किया गया है। सात मंजिलों वाले भवन क्षत्रिय राजाओं के अनुकूल माने जाते है। इसी परम्परा को कछवाहा शासकों ने भी अनुसरण किया। और इसी तरह चन्द्रमहल का निर्माण हुआ। सिटी पैलेस का निर्माण 1729–1732 ई. के मध्य हुआ है। सिटी पैलेस प्रमुख इमारतों का वर्णन निम्न प्रकार है :-

1. चन्द्रमहल –

चन्द्रमहल एक सात मंजिला इमारत है जिसकी सबसे नीचे वाली इमारत “प्रीतम निवास” है। जो कि एक छोटा श्रौता गृह है। इसके ऊपर की दो मंजिले जो बाहर से देखने पर दो मंजिला प्रतीत होती है परन्तु वास्तविक रूप में यह एक मंजिल इमारत है जिसे “सुख निवास” कहते है। इसके ऊपर “रंगमहल” स्थित है, जिसे “शोभ निवास” भी कहा जाता है। यह भवन रंगीन कांच की कलात्मक पच्चीकारी से सुसज्जित है। इससे ऊपरे वाली इमारत “चाबी निवास” के नाम से जानी जाती है जो कि नीले रंग से सुसज्जित है। इसके ऊपर “श्री निवास” स्थित हैं यह एक शीश महल है। सबसे अंतिम और सातवी मंजिल “मुकुट मंदिर” के नाम से जानी जाती

है। इस मंजिल पर राजपरिवार का पचरंगी ध्वज लगा हुआ रहता है। चन्द्रमहल में राजपरिवार निवास करता है। सामान्य जन के दर्शनार्थ के लिए उपयोग में नहीं लाया जाता है तथा महल के सामने छोटी सी झील तथा गोविन्द देव जी का मंदिर है।⁶

2. प्रीतम निवास –

यह चन्द्रमहल की सबसे निचली इमारत है, जिसमें यह भीतरी आंगन है। यह छोटे श्रोतागृह के रूप में भी जाना जाता है जो चार सूत्रों तथा चार देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। विष्णु, शिव-पार्वती, गणेश तथा देवी का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें मुख्य रूप से “मयूरगेट” भी है।

3. मुबारक महल –

इस महल का निर्माण माधोसिंह द्वितीय द्वारा “शुभ पैलेस” के रूप में एक स्वागत महल के रूप में 19वीं सदी के अन्त में विभिन्न शैलियों का अनूठा प्रयोग करके बनवाया गया था। वर्तमान में यह एक संग्रहालय के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। जिसमें मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के परिधान रेशमी साड़ियां, सांगानेरी प्रिंट, कश्मीरी शॉल तथा विचित्र परिधान माधोसिंह द्वितीय का है।

4. दीवान-ए-खास :-

दीवान-ए-खास महाराजाओं का निजी दर्शक हॉल जो श्वेत संगमरमर का बना हुआ था। जो शस्त्रागार तथा आर्ट गैलरी के बीच में अवस्थित है। इसकी सबसे विचित्र बात इसमें रखे दो रजत पात्र जो कि 5.2 फिट, पानी की क्षमता 4000 लीटर तथा 340 किग्रा. वजन था जिनका नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में दर्ज है, जिनको बनाने का माधोसिंह द्वितीय द्वारा 1901 में एडवर्ड सप्रम के राज्याभिषेक में इंग्लैण्ड जाने पर इनमें अपने धर्म की रक्षा हेतु गंगा जल का पानी ले गया था।

5. दीवान-ए-आम :-

सभा निवास के नाम से सुविज्ञ, सार्वजनिक दर्शको हेतु बना हुआ जो लाल व सोने के रंग से रंगा है। वर्तमान में यह आर्ट गैलरी के रूप, उत्तम लघु चित्रों, राजस्थानी, मुगल तथा फारसी रजा के रूप में तथा कश्मीरी शॉल तथा भगवतगीता पवित्र ग्रंथ आदि आकर्षण के केन्द्र है तथा इसके प्रवेश द्वारा यह दो हाथी है।

6. महारानी पैलेस :-

शाही क्वीन्स का मूल निवास था। जहां युद्ध के दौरान रायल्टी द्वारा हथियारों का इस्तेमाल किया जाता है इसमें अद्वितीय भित्ति चित्र तथा चित्रकारी तथा हथियारों की प्रदर्शनी लगी हुई है। कटार तथा पिस्तौल मुख्य आकर्षण का केन्द्र है।

7. बग्गी खाना :-

यह संग्रहालय परिसर है। जहां पुराने पालकी, यूरोपीय कैब तथा बग्गियों का प्रदर्शन है। पालकी, तथा रथ आकर्षण का केन्द्र है। जो हिन्दू देवी देवताओं को ले जाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था।

8. गोविन्ददेव जी मंदिर :-

सिटी पैलेस परिसर का हिस्सा भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित मंदिर। यह मंदिर चन्द्रमहल के सामने है जिसका मुख्य उद्देश्य राजा को उठते ही भगवान के दर्शन होने चाहिए। वर्तमान आम लोगों के लिए दिन में सात बार खुलता है गोविन्द देव जी के मंदिर का निर्माण भी चन्द्रमहल की तर्ज पर ही निर्मित है मंदिर परिसर दतिया एक पांच मंजिल इमारत जो कि दो मंजिला उपखण्ड पर बनी हुई है। यह मंदिर 16वीं सदी में निर्मिता जूना महल (डूंगरपुर) के समकक्ष ही कलात्मक रूप से निर्मित है। सिटी पैलेस में एक विशेष कला तथा प्रधान वास्तुकला की शैली का निर्माण दिखलाई पड़ता है। जिसकी अपनी ही अलग विशेषताएं है। इसमें विभिन्न तरह के झरोके, मेहराब, कॉलमस, खुले भवन, प्रांगल दिखलाई पड़ते है जो कि सीधे रूप में राजपूत, मुगल फारसी तथा यूरोपीय शैलियों के भवनों से परस्पर संबंधित है। इस प्रकार की समकालीक इमारते विभिन्न राजपूत रियासतों से संबंधित है। जैसे जोधपुर, जैसलमेर, उदयपुर, बूंदी, डूंगरपुर आदि। परन्तु जयपुर की वास्तुकला अपने आप में अनुपम है।

सिटी पैलेस में निर्मित मेहराब तथा झरोखे अपने आप में अनूठी कला को प्रदर्शित करते है इस प्रकार की कला अपने आप को सीधे क्षेत्रीय कला से संबंधित करती है जिसका कि अपना एक छोटी काशी का वास्तुशिल्पी शब्द संग्रह होता है। उस समय में निर्मित जहां चन्द्रमहल में एक प्रकार की सम्पूर्ण समरूपता, एकरूपता तथा व्यवस्था प्रदर्शित होती है। वही दूसरी तरफ प्राय राजपूत योजनाकारों ने इससे नीची श्रेणी की विशेषताओं का अनुसरण किया है जो वास्तविक आनन्ददायक तो प्रतीत होती है परन्तु उनमें विषमरूपता तथा अव्यवस्था भी दिखलाई पड़ती है। इस कारण चन्द्रमहल अपने समय के प्रसिद्ध महलों में से एक जाना जाता है।

सिटी पैलेस की विशेषताएं अपने आप में अनूठी है जो अन्य महलों से अतुलनीय है परन्तु मजबूती में इसके समान अन्य महल भी है। जैसे ओरझा तथा दतिया के महल। जो क्रमशः 16 की तथा प्रारम्भिक 17वीं सदी में निर्मित है लेकिन सिटी पैलेस एक अपवाद स्वरूप नहीं है क्योंकि यह एक प्रकार परम्परागत राजपूत महलों की भांति ही है। उन्हीं की योजनानुसार ही इसका निर्माण हुआ है इसी प्रकार के भवनों में हम सम्मिलित कर सकते है। 1530 ई. में निर्मित रत्नसिंह का "चित्तोड़ महल" तथा साथ 1500 में ग्वालियर का "मान मंदिर" फिर भी चन्द्रमहल ने अपने निर्माण के द्वारा कुछ नई योजनाओं एवं विचारों को राजपूत वास्तुकला को अनुपम रूप में स्थापित किया है।⁹

संदर्भ सूची

1. जयपुर रिकार्ड, हिन्दी, सीतामऊ कलेक्शन, Vol. III, पृ. सं. 53
2. ए हिस्ट्री ऑफ जयपुर, जदुनाथ सरकार, पृ. 206
3. Building Jaipur - The making of an Indian city, Vibhuti Sachdev and Giles Tillotson, P.No. 63
4. Newell, 1915, Page No. 9, Nath 1993, Page No. 131
5. Building Jaipur - The making of an Indian city, V. Sachdev and G. Tilloston, Page No. 65
6. Building Jaipur - The making of an Indian city, V. Sachdev and G. Tilloston, Page No. 66 - 67



राजेश कुमारी

प्रवक्ता

महाराजा सूरजमल इन्स्टीट्यूट

जनकपुरी, नई दिल्ली

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्य में भित्ति चित्रांकन परम्परा : एक दृष्टि

मनुष्य द्वारा चित्र रचना का प्रारम्भ उस समय हुआ था जब उसके मन में शरीर की नग्नता को ढकने तक के लिये चेतना उत्पन्न नहीं हुई थी। चित्रण के इतिहास में चित्रों के निर्माण के लिये पहला प्राप्त आधार गुफाओं की भित्तियाँ तथा छत थी। मानव की अभिव्यक्ति के यह प्राचीनतम् उदाहरण आज भी अनेक भित्तियों पर उपलब्ध है। अनेक गुफाओं की भित्तियों एवं शिलाओं पर आदिम मानव की कला चेतना के दर्शन विश्व में अनेक स्थानों पर देखने को मिलते हैं। प्रागैतिहासिक काल के उपरान्त भारत में भित्ति चित्रों के उपलब्ध उदाहरणों में अजंता, बाघ, बादामी, सित्तनवासल, ऐलोरा, तंजौर और लेपाक्षी हैं।

भारतीय साहित्य में भी भित्ति चित्रण के प्रमाण प्राप्त होते हैं। 'स्कन्दपुराण' में ऐसे स्थानों का वर्णन है जहाँ भवनों का चित्रण होता था। 'वाल्मीकि रामायण' में उल्लेख है कि कैकयी का राज प्रासाद भित्तिचित्रों से सुशोभित था साथ ही भगवान राम के महल में भी भित्ति चित्र उत्कीर्ण थे।²

लंका नगरी का मुख्य द्वार भी चित्रों से सुसज्जित था। 'महाभारत' में युधिष्ठिर की सभा का एक बड़ा रोचक वर्णन देखने को मिलता है। सभागृह की दिवारों को भाति-भाति के चित्रों से अलंकृत किया जाता था। इन चित्रों को देखकर दर्शकों को एक प्रकार का भ्रम उत्पन्न होता था और वह उस दृश्य को सच्चे रूप में समझने लगता था।

संस्कृत के महाकवि 'कालिदास' (प्रथम शताब्दी ई.पू.) के ग्रंथों में भी अनेक स्थानों पर चित्रकला का वर्णन है। 'मेघदूत' नामक ग्रंथ में विरहणी यक्षणी द्वारा अपने प्रवासी यज्ञ का चित्र बनाने की चर्चा की गई है। इनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि उस समय के स्त्री पुरुषों द्वारा चित्र बनाने की प्रथा थी। देवी-देवताओं के चित्र तथा विवाह आदि पर्वों पर भित्ति चित्र अलंकरण परम्पराओं का प्रचलन था। राजमहलों की भित्तियों पर सुन्दर अलंकरण प्रयुक्त किये जाते थे।

कालीदास के 'रघुवंश महाकाव्य'³ में भी ललित कला के सृजन का उल्लेख है। एक स्थल पर भित्ति चित्रों के वर्णन में पद्भवन के चित्रण का उल्लेख है। इस चित्र के चित्रित हाथियों को सजीव हाथी समझकर सिंहों ने अपने नाखूनों से विदीर्ण कर दिया। साथ ही अयोध्यापुरी के उजड़ने का वर्णन करते हुये वहाँ के भित्तिचित्रों का एक दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

आचार्य 'भरतमुनि' (प्रथम शताब्दी ई.पू.) ने नाट्यशाला का स्वरूप प्रतिपादित किया था और नाट्यशालाओं को सुसज्जित करने के लिये विविध प्रकार के भित्तिचित्रों का भी उल्लेख किया है।⁴

वैदिक युग का जन-जीवन भी कला के प्रति बहुत अनुरागी था। 'ऋग्वेद' में यज्ञ शालाओं के द्वारों की चारों चौखट पर अंकित अलंकृत स्त्री आकृतियों का सौम्य रूप सृजन के लिये उल्लेखित है।⁵

'अजंता' के भित्ति चित्रों में बौद्ध संबंधित विषयों का सुन्दर अंकन गुफाओं के भीतर विशाल छतों पर हुआ है।

बौद्धकालीन चित्रकला का दूसरा उत्कृष्ट उदाहरण 'बाघ गुफाओं' के भित्तिचित्र है। श्रीलंका की 'सिगिरिया गुफाओं' में भी अप्सराओं के सुन्दर भित्ति चित्र उत्कीर्ण है। 'बादामी सितनवासल' आदि गुहा मंदिरों में भी भित्तिचित्रों के उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त हैं।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण का 'चित्रसूत्र', नग्नजित द्वारा रचित 'चित्र लक्षण', भोज द्वारा रचित 'समरांगण सूत्रधार', सामेश्वर रचित 'मानसोल्लास', श्री कुमाररचित 'शिल्प रत्ना', यशोधरा रचित 'जय मंगला' में चित्रकला के सिद्धान्त व तकनीकी जानकारी उपलब्ध होती है।

पांचवी शताब्दी के चीनी यात्री 'फाह्यान' तथा 'ह्वेनसांग' ने अपने यात्रा वृतान्त में भारत के आवासों में बने भित्ति चित्रों का उल्लेख किया है।

पुराणों एवं अन्य ग्रंथों में भित्ति निर्माण प्रक्रिया का शिल्पशास्त्रीय विवेचन:

रामायण के बाद पुराणों में शिल्प और कला विषयक सामग्रियों का उल्लेख अधिकांश मिलता है। हरिवंश पुराण, मत्स्य पुराण, स्कंधपुराण, गरुडपुराण, पदमपुराण आदि प्राचीन ग्रंथों शिल्पकला एवं चित्रकर्म पर लिखा गया है। इनके अतिरिक्त विष्णुधर्मोत्तरपुराण, समरांगण सूत्रधार, अभिलषितार्थ चिन्तामणि, शिल्परत्न, चित्रलक्षण आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें चित्रकर्म एवं उनके निर्माण सामग्री का विधि-विधान के साथ विस्तार से उल्लेख है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण

छठी शताब्दी में लिखित ग्रंथ के अन्तर्गत तृतीय खण्ड के 35वें अध्याय से लेकर 43 वे अध्याय पर्यन्त 'चित्रसूत्रम्' नामक प्रकरण में चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ माना है। सम्पूर्ण चित्रसूत्र के नौ अध्यायों में चित्र के आयाम सामान्य विषय, प्रमाण, आकृति के लक्षण, रंग, रेखा, रूप, भाव, चित्र में दोष तथा चित्रों की विभिन्न सामग्री। भित्ति के लेप पद्धति उसकी प्रयोग विधि आदि के विषय पर पर्याप्त चर्चा की गई है।

भित्ति निर्माण एवं सामग्री में तीन प्रकार के ईंटों के चूर्ण को तीन भाग में रखकर मिट्टी का तीसरा अंश अर्थात् 1/3 में मिलाकर गगल, मधुच्छिष्ट (मोम) मधुप (मधु) मुदग (मुंग) गुड और कुसुम्भ (केसर) को तेल में मिलाकर बराबर भाग कर ले। आग में जले सुधा (हर्रे) का 1/3 भाग उसमें मिलाना चाहिये। चतुर कलाकार बल की बनी हुई औषधि का दो भाग मिलाकर मषक और कष डालकर तब बालू का अंश उसी के अनुसार मिलाये। अब जल में डूबे हुये स्निग्ध पदार्थ से उसे सराबोर करे। इस सारे आर्द्र पदार्थ को एक माह तक सुरक्षित रखे। एक महिने में गीलापन चले जाने पर चतुर कलाकार को सोच समझकर यत्नपूर्वक सूखे लेप को दीवार पर लगाना चाहिये। यह भली-भाँति विभाजित हो, समतल हो, ऊँची नीची न हो और न अधिक मोटी व न अधिक पतली। जब दीवार सूख जाये और उसका लेप भला प्रतीत न हो तो शाल वृक्ष के रस तथा तेल मिश्रित मिट्टी से चिकने मंजन वाले लेपों से यत्नपूर्वक चिकना करना चाहिये। बार-बार दूध से सिक्त तथा मार्जन द्वारा शीघ्र सूखी हुई दीवार को सौ वर्ष तक नष्ट नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार दो प्रकार के रंगों वाले लेपों से युक्त अनेक मणिमय भूमि चित्र की आकृति के अनुसार कल्पित करे। पूर्व में मुख करके इष्ट देव का ध्यान करते हुये चित्र बनाना प्रारम्भ करे। उजली, गहरे पीले रंग की काली तूलिकाओं से क्रमशः पूर्वाक्त एवं स्थान के अनुसार चित्र लिखे और अनुकूल रंगों से रंग भर दे। अर्थात् जिस स्थान पर जैसा रंग उपयुक्त हो वैसा रंग उसमें भरना चाहिये और वैसी ही उसकी छवि अंकित करनी चाहिये। श्यामा (हरा) गौरी (सफेद) प्रदर्शित करना चाहिये।

समरांगण सूत्रधार

भारतीय कलाओं को प्रतिपादित करने वाला एक अनन्य ग्रंथ है जिसमें चित्रकला को सर्वजन प्रिय ही नहीं माना गया, अपितु अन्य कलाओं से सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है। यह ग्रंथ अध्यायों में विभक्त है तथा इसका चित्रकर्म विद्वतापूर्वक लिखा गया है चित्रोद्देश्य, भूमिवंधन, लैप्यकर्म, अण्डक प्रमाण मनोत्पत्ति और रस दृष्टिलक्षण। इसके

लैप्यकर्म और दृष्टिलक्षण नामक अध्याय चित्रकला के लक्षण ग्रंथों की परम्परा में उत्कृष्ट सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

समरांगण सूत्रधार में वास्तु एवं चित्रों का संबंध तथा दोनों की भिन्नता प्रदर्शित की है। इसमें भवनों में चित्र संबंधी योजना योज्य पर वृत्त वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है यानि सभी गोपुर तथा विमान मनोहर तथा विचित्र चित्र संयोजन से परिपूर्ण होने चाहिये। कुडय भूमि बंधन हेतु स्तुही वास्तुक कुष्माण्ड कुधाली वस्तुओं को इक्कट्टा करे। अपामार्ग अथवा गन्ने के रस से अथवा दूध में उसको सात रात तक रखे। शिंशया सन और कुटज का कषाय क्षार मुक्त सामुद्रिक नाम द्रवों से पहले कुडम (भित्ति) को एक सार बनाकर सीचें। दुबारा स्थूल पत्थर वर्जित चिकनी मिट्टी लाकर दुगना न्यास करके बालु का मृदा (बालकामयी मिट्टी) का शोधन करना चाहिये, फिर कुकुम मास (उदड) शाल्मली श्रीफल आदि का रस कालानुसार देना चाहिये। प्राचीन समय में जिस प्रकार भूमि बंधन बताया गया है उसी प्रकार का सब बालू से एकत्र करके पहले हाथी की मोटाई के बराबर दीवार की लिपाई करे। पुनः इसे दर्पण सदृश्य चिकना एवं स्फटित करे। विशुद्ध, विमलस्निग्ध, पाडुर, मृदुल स्फुट, प्रथम प्रतिपादन कर कट-शर्करा (भुरभुरी मिट्टी को विधिपूर्वक कूटकर घिस कर कल्क बनाकर पूर्वावत प्रकार से भाग का लेपन और निर्यास करना चाहिये। अथवा उसे कट शर्करा के साध देना चाहिये। इस प्रकार विचक्षण लागे कुडयं का लेपन करते हैं। हल से हस्त मात्र लेपन कर शर्करा देनी चाहिये। इस विधि से कुडयं बंधन उत्तम सम्पन्न होता है।

अभिलषितार्थ चिन्तामणि (मानसोल्लास)

चालुक्य राजा विक्रमादित्य के पुत्र सोमेश्वर ने 1131 ई. में अभिलषितार्थ चिन्तामणि नामक एक विश्वकोष के रूप में ग्रंथ की रचना की जिसका नाम मानसोल्लास भी है। इसके तीसरी विशंती के प्रथम अध्याय में चित्रकला संबंधी सिद्धान्तों का समावेश किया गया है। जिसमें वज्रलेप, कूचदी लेप्यकर्म और नाना प्रकार के वर्णों को बनाने की विधि बताई गई है। यही नहीं चित्रों के प्रमाण के लिये भी मानसोल्लास में अनेक तरीके बताये गये हैं। चित्रों के चार प्रकार माने गये हैं- रस चित्र, विद्ध चित्र, अविद्ध चित्र और धूलि चित्र। विद्ध चित्र यानि शबीह जो दर्पण पर पड़े बिंब के समान आकृति या प्रतिरूप हो। अविद्ध चित्र जो भावना या कल्पना के आधार पर बनाया गया हो। रस चित्र पर दृष्टि पड़ते ही शृंगार आदि नव रसों में से किसी एक रस का भी अनुभव हो। धूलि चित्र में चौक पूरना, अल्पना रंगोली आदि के चित्र आते हैं जो रंगों के चूर्ण के लेप से धरती पर बनाये जाते हो।

मानसोल्लास में नाट्य मंडप की सजा में भित्तिलेप्यकर्म की प्रक्रिया का वर्णन निम्नलिखित है

सफेद से लेप की हुई खड्डों से रहित न सम बनी भित्ति पर लेप चढाये। सफेद मिट्टी लाकर वज्रलेप के साथ मिलाये और उसके पश्चात् उस मिट्टी को सूखी भीत पर तीन बार लेप करे। जब वह भित्ति सलक्षण नहीं हो जाये तब तक वज्रलेप से युक्त किया हुआ सफेद शंखचूर्ण भित्ति पर लगाये। नीलगिरी पर उत्पन्न हुई नग नाम की शीला में मिलने वाले श्वेत चंद्रमा के समान धातु लाकर वज्रलेप के साथ मिलाये और हाथ से उस लेप को सफाई से स्वच्छ ढंग से धीरे-धीरे लेप करें।

शिल्परत्न

इस ग्रंथ में वास्तुकला एवं चित्रकला के सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। चित्रों हेतु भित्तियों के लेप्य कर्म, वर्ग तथा विभिन्न वर्णों के मिश्रण एवं तूलिका सामग्री एवं निर्माण विधि का उल्लेख है।

कुडय चित्रों की भित्ति हेतु लेप्य कर्म में सुधा का प्रयोग करना चाहिये। शंख आदि को जलाकर उसका चूर्ण जो बनाया जाता है सुधा कहलाता है। एक चौथाई चूर्ण को जो बालू का कणों से युक्त होता है उसे क्वाथ के कणों के साथ गुल के जल से सीचें। सुधा के एक चौथाई अंश को ही प्रमाण माना है। कालाग्नि से पक्के हुये केले के फल को पीस कर उसमें मिलाये। इस पिसे हुये का प्रमाण भी उस सुधा का चौथाई अंश कहा गया है। इसके बाद तीन महिने तक उसे अच्छी तरह मथ कर रख ले। ओखली में उसे डालकर पिसे गुल के साथ जल तब तक अच्छी तरह पीसना चाहिये जब तक नवनीत की तरह नहीं हो जाता। इसके बाद कुडप (भित्ति) को नारियल के मुलायम त्वचा से जो कि बहुत बारीक हो एकदम गीली हो, अच्छी तरह से बराबर कर ले। पुनः गुल के जल से उसे गीला करके छोड़ दे। और बाद में उसे सुधापिष्ट के बुश से लेप करे। बुश का आकार और विशालादि का औचित्य सभी जगह है एवं लोहे की लकड़ी की अथवा चिकनी पीत वर्ण होनी चाहिये। उस बुश के पृष्ठ भाग से जो कि ऊँचा नीचा न हो। पिसी हुई सुधा को अच्छी तरह से धीरे - धीरे क्रमशः नारियल की छाज से लेप करके उसके सूख जाने पर फिर रंगों से चित्र बनाने के लिये लेप करें। पलक आदि पर तत्काल गीले धरातल पर सनिग्घ वर्णों का प्रयोग करना चाहिये। फलक आदि पर सुधा का लेप नहीं करना चाहिये।

चित्रलक्षण

इस ग्रंथ का रचना काल छठी या सातवीं शताब्दी के मध्य माना जाता है। इस ग्रंथ में विश्वकर्मा और राजा नग्नजित (भयजीत) के द्वारा बताये गये चित्रकर्म के लक्षणों का संग्रह है। ग्रंथ के तीसरे अध्याय में चित्रकला के नियमों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। जिसमें विभिन्न आकृतियों के अनुपात के विषयों का उल्लेख किया गया है। तथा भाव प्रधान चित्रों को विशेष स्थान दिया गया है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रंथ जिनमें 'सुरसुन्दरी', 'तरंगवती', 'वर्णसुन्दरी', 'त्रिष्टिशला का पुरुष चरित्रम्', 'कथासरितसागर', 'वृहतकथा मंजरी' आदि हैं। इन ग्रंथों में इस युग की चित्रकला पर प्रकाश डाला गया है जिसमें राजाओं के महलों की भित्तियों पर सुन्दर चित्रकारी का उल्लेख है।

उपरोक्त ग्रंथों के आधार पर यह कह सकते हैं कि चित्रकला का भारतीय समाज में व्यापक रूप से प्रचलन था। इसका उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास एवं मनोरंजन का साधन मात्र न था बल्कि कला व्यवहारिक जीवन के लिये आदर्श रूप थी। और पारमार्थिक दृष्टि से श्रेय प्राप्ति का साधन, धार्मिक दृष्टि से उसके मागल्य का सूचक समझा जाता या और लोक हित के विचार से शिवमयी आराधना। इस दृष्टि से कला में सत्यं शिवं, सुन्दरम् के दर्शन होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. रमाशंकर भट्टाचार्य, स्कन्दपुराण में वर्णित कतिपय कलों, सम्मेलन पत्रिका, पृ. 77
2. रामायण 2-15-35, डॉ. व्यास, रामायण कालीन कला सिद्धान्त और साधन, पृ. 82
3. रघुवंश महाकाव्य, 6/86
4. नाट्यशास्त्र, 2/85
5. ऋग्वेद, 1-5-5



डॉ. शालिनी गोयल

प्रवक्ता, चित्रकला

अलवर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

आमेर क्षेत्र के मंदिरों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक स्वरूप

आमेर

यह ढूंढाड़ राज्य की तृतीय महत्वपूर्ण राजधानी रहा है। जमवारामगढ़ के पश्चात् कछवाहा नरेश 'कोकिलदेव' ने मीणों की शक्ति को परास्त कर अपनी राजधानी को आमेर स्थानान्तरित किया था। 1727 ई. में जयपुर की स्थापना व राजधानी को जयपुर स्थानान्तरित करने तक लगभग 700 वर्षों तक आमेर ढूंढाड़ राज्य की राजधानी बना रहा। यहाँ के प्रतापी शासकों में 'राजा भगवानदास', 'भारमल', 'मानसिंह', 'मिर्जा राजा जयसिंह' व 'सवाई जयसिंह' प्रमुख हैं।'

आमेर क्षेत्र के मन्दिर

इस प्रकार आमेर लगभग सात सौ वर्षों तक ढूंढाड़ राज्य की राजधानी बना रहा। इस नगर का प्राचीन नाम 'अम्बिकेश्वर' था, जिसका तात्पर्य है 'अम्बिका का पति' अर्थात् 'शिव'। यहाँ पर बावडियों, कुओं, कुण्डों, उद्यानों, मंदिरों इत्यादि की बहुलता है। कहा जाता है कि आमेर क्षेत्र में छोटे-बड़े कुल मिलाकर लगभग तीन सौ पैसठ मंदिर हैं। इन मंदिरों में 'अम्बिकेश्वर का मंदिर', 'जगतशिरामणि मंदिर', 'नृसिंह मंदिर', 'सांघी जूठाराम का मंदिर', 'लक्ष्मीनारायण मंदिर', 'कल्याणजी का मंदिर', 'शिलादेवी का मंदिर' आदि प्रमुख हैं।

अम्बिकेश्वर का मंदिर

यह मंदिर विश्व के अद्भुत मंदिरों में से एक है। मूल शिवलिंग धरती माता के गर्भ में लगभग पन्द्रह फुट की गहराई पर विराजमान है। वर्षा के दिनों में यह मंदिर जलमग्न हो जाता है तथा छः-सात माह तक इसी स्थिति में रहता है। इस कारण भगवान अम्बिकेश्वर के दर्शन वर्ष में मात्र पांच-छः महीने ही हो पाते हैं। इस मंदिर का निर्माणकाल किसी को भी भली-भांति ज्ञात नहीं है। एक मान्यता के अनुसार अयोध्या नरेश 'मान्धाता' के पुत्र 'अम्बरीश' ने आमेर नगर की स्थापना की थी तथा 'अम्बिकेश्वर' नामक इस मंदिर का निर्माण करवाया था।

मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग के समीप शिव के वाहन नंदी की पीतल से निर्मित प्रतिमा विराजमान है। मंदिर के फर्श, दीवारों, छतों इत्यादि की कुछ ही समय पहले मरम्मत की गई है और गर्भगृह का फश व दीवारें संगमरमर की बनायी गई हैं। गर्भगृह के बाहर सभामण्डप है,

जो स्तम्भों पर आधारित है। यह मंदिर 'स्थ शैली' के अनुरूप निर्मित है। गर्भगृह, सभामण्डप तथा प्रवेश द्वार के ऊपर शिखर बने हुए हैं। सभामण्डप में नंदी की तीन प्रतिमाएं विराजमान हैं। मध्य की प्रतिमा में नंदी खड़ी हुई अवस्था में तथा अन्य दो में बैठी हुई अवस्था में हैं।

सभामण्डप के ऊपर गोलाकार छत में सुन्दर कांच की कारीगरी की गई है। जो एक भक्त के द्वारा सन् 1987ई. में करवाया गया है। गोलाकार छत के नीचे के भाग में चारों ओर बारह प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गई हैं। जिनमें ढोल, डमरू, सितार, बांसुरी आदि वाद्ययन्त्र बजाते हुए नारी तथा पुरुष आकृतियाँ अंकित की गई हैं।

मंदिर परिसर में मुख्य मंदिर के चारों ओर श्रीविष्णु, शीतलामाता, वराह-अवतार इत्यादि के लघु मंदिर भी स्थित हैं। अम्बिकेश्वर का यह मंदिर सामान्य भू-तल से लगभग दस-बारह फुट नीचे बना हुआ है, जहां तक पहुंचने के लिए पन्द्रह सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ये सीढ़ियाँ पूर्व में पत्थर से निर्मित थी, बाद में इन्हें मरम्मत कर संगमरमर से बनाया गया है। मंदिर के बाहर की ओर बने प्रवेश द्वार के दोनों ओर संगमरमर के चबूतरे बने हुए हैं। इन चबूतरों पर सामने की ओर फूल-पत्तियों का सुन्दर अलंकरण बनाया हुआ है।

यह मंदिर ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। एक मान्य के अनुसार अम्बिकेश्वर मंदिर के नाम पर ही इस स्थान का नाम 'आमेर' पड़ा है।

जगतशिरोमणी मंदिर

'जगतशिरोमणी मंदिर' आमेर में महल की ओर जाने वाली मुख्य सड़क के बाईं ओर स्थित है। इस मंदिर का निर्माण 'महाराजा मानसिंह प्रथम' (सन् 1589-1614 ई.) की 'महारानी श्रृंगारदेवी कनकावत' के द्वारा अपने पुत्र जगतसिंह की स्मृति में करवाया गया था। मंदिर का निर्माण सन् 1599 से प्रारम्भ होकर 1608 में पूर्ण हुआ था। यह मंदिर 'द्रविड़ शैली' के अनुसार निर्मित है। यह भव्य मंदिर 'महामेरू शैली' का उत्तम उदाहरण है। मंदिर में स्थानीय पत्थर के अतिरिक्त सफेद एवं काले संगमरमर तथा करौली के लाल बलुए पत्थर का उपयोग किया गया है। यह मंदिर 'कीर्तिमुखो', 'हाथियों', 'घोड़ों' तथा सामाजिक एवं पौराणिक दृश्यों की पंक्तियों से सुसज्जित ऊँचे अधिष्ठान पर निर्मित है।

गर्भगृह के ऊपर उरुश्रृंगों एवं कर्णश्रृंगों की पंक्तियों से सुसज्जित ऊँचा शिखर निर्मित है। मंदिर के गर्भगृह में भगवान विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप की श्वेत संगमरमर से निर्मित प्रतिमा प्रतिष्ठित है, जो हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म लिए हुए सुशोभित है। श्रीविष्णु की ठोड़ी में हीरा जडा हुआ है, जिसने उनके स्वरूप की आभा को द्विगुणित कर दिया है। इस प्रतिमा के नीचे की ओर काले पाषाण से निर्मित श्रीकृष्ण की प्रतिमा विराजमान है, जिन्हें गिरधारीजी की मूर्ति भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि महाराजा मानसिंह के द्वारा चित्तौड़ से लाकर इस प्रतिमा को यहां प्रतिष्ठित किया गया था। इस प्रतिमा के विषय में कहा जाता है कि 'मीरा'

के द्वारा इसी प्रतिमा की पूजा की जाती थी। संभवतया इसी कारण मंदिर में इस प्रतिमा के बाईं ओर सप्तधातु से निर्मित मीरा की प्रतिमा को प्रतिष्ठित किया गया है। मीरा की प्रतिमा की स्थापना के कारण इस मंदिर को 'मीरा मंदिर' के नाम से भी जाना जाता है। मंदिर में श्रीविष्णु की प्रतिमा अचल है, जबकि श्रीकृष्ण व मीरा की प्रतिमाएं, चल प्रतिमाएं हैं। विभिन्न धार्मिक अवसरों पर इन चल प्रतिमाओं की सवारी निकाली जाती है।

मंदिर के गर्भगृह की दीवारें व चौखट संगमरमर से निर्मित हैं। गर्भगृह की दीवारें मूर्तियों की तीन पंक्तियों से अलंकृत हैं। चौखट के ठीक ऊपर मध्य में, श्रीविष्णु के चतुर्भुज स्वरूप को उत्कीर्ण किया हुआ है। जिसके दोनों ओर चँवर ढुलाती हुई सेविकाएं अंकित की गई हैं। इसके ठीक नीचे गणेशजी की प्रतिमा विराजमान है। चौखट के दोनों ओर दो द्वारपाल हाथ में दण्ड लिए हुए उत्कीर्ण किए गए हैं। गर्भगृह की चौखट के दोनों ओर श्रीविष्णु के अवतारों को उत्कीर्ण किया गया है। दायीं ओर ऊपर से नीचे की तरफ वामनावतार, वराहावतार, नृसिंहावतार तथा बायीं ओर हल-मूसल लिए हुए संकर्षण, शिव-पार्वती आदि अंकित किए गए हैं।

गर्भगृह की चौखट के ऊपर के भाग में सामाजिक घटनाओं का अंकन किया गया है; इनमें पालकियाँ, छत्र, चंवर, हाथी-घोड़े, गृहकार्य करती हुई नारी मूर्तियाँ, वृद्ध व्यक्ति के पैर दबाती हुई व हवा करती हुई मानव आकृतियाँ, शिशु को गोद में लेकर दुलार करती हुई व हवा करती हुई मानव आकृतियाँ, शिशु को गोद में लेकर दुलार करती नारी मूर्तियाँ इत्यादि अंकित की गई हैं। इनके अतिरिक्त गर्भगृह की चौखट के दोनों ओर हाथ जोड़े हुए मत्स्य कन्याएँ, विभिन्न मुद्राओं में नर्तकियाँ तथा ढोलक, मृदंग, सितार इत्यादि बजाती हुई नारी मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं।

गर्भगृह की चौखट के नीचे की ओर दोनों तरफ दो मुखाकृतियाँ बनाई गई हैं, जिन्हें भगवान विष्णु के सेवक 'कच्छ व मच्छ' कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि ये दोनों द्वापर युग में भगवान के सेवक थे। इन्होंने भगवान से वरदान मांगा था कि जब भी आप कक्ष से बाहर आवें अथवा भीतर पधारें तो हमारे सिर पर पैर रखकर जावें। इसी कारण इनको गर्भगृह के बाहर लेटी हुई अवस्था में अंकित किया गया है।

गर्भगृह की चौखट के बाहर नीचे फर्श पर भगवान विष्णु को सुशोभित होने वाले संगमरमर से निर्मित शंख व पद्म बने हुए हैं। गर्भगृह के बाहर बायीं ओर की ताख में गणेश प्रतिमा तथा दायीं ओर की ताख में शिव पार्वती की प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है। इसमें शिव को उनके वाहन नंदी के ऊपर विराजे हुए तथा पार्वती को उनकी गोद में बैठे हुए अंकित किया गया है।

गर्भगृह के बाहर विशाल दुमंजिला सभामण्डप बना हुआ है। यह मण्डप करौली के लाल बलुआ पत्थर से निर्मित है। सभामण्डप आठ विशाल स्तम्भों पर टिका हुआ है, जिन्हें बेलबूटों से अलंकृत किया गया है। इन स्तम्भों पर प्रत्येक पर एक-एक नारी मूर्ति विभिन्न मुद्राओं में

जैसे, चंवर ढुलाते हुए, नृत्य करते हुए, छोटे बालक को खिलाते हुए, इत्यादि मुद्राओं में उत्कीर्ण की गई है। इन मूर्तियों का कुछ हिस्सा समय के साथ खण्डित हो गया है।

सभामण्डप की दीवारों पर दोनों ओर जालीदार खिडकियाँ बनी हुई हैं, जिनसे हवा व सूर्य का प्रकाश मंदिर में प्रवेश करते हैं। सभामण्डप की दीवारों पर सुन्दर अलंकरण बनाए गए हैं। मण्डप की ऊपरी मंजिल की दीवारों तथा छतों पर सफेद रंग से सांगानेरी पेन्टिंग द्वारा सुन्दर भित्तिचित्र चित्रित किए गए हैं। सभामण्डप की ऊपर की मंजिल में तीनों ओर झरोखे बने हुए हैं। राजपरिवारों के समय महिलाओं में पर्दाप्रथा के प्रचलन के कारण इन झरोखों से महिलाएं भगवान के दर्शन किया करती थीं।

सभामण्डप के बाहर गर्भगृह के ठीक सामने विपरीत दिशा में गरूड-मण्डप निर्मित है। संगमरमर व करौली के लाल बलुआ पत्थर से निर्मित यह मण्डप चार स्तम्भों पर टिका हुआ है, जिसके ऊपर शिखर निर्मित है। इस शिखर के चारों कोनों पर चार लघु आकार के शिखर बने हुए हैं। गरूड-मण्डप पर सुरुचिपूर्ण तक्षण किया हुआ है तथा यह ब्रेकेट मूर्तियों से सुसज्जित है।

गरूड-मण्डप के मध्य में संगमरमर से बने चबूतरे पर गरूड की बैठी हुई अवस्था में प्रतिमा प्रतिष्ठित है, जिसके ऊपर लघु शिखर बना हुआ है। इस शिखर के नीचे के भाग में मध्य में भगवान विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप को उत्कीर्ण किया गया है। गरूड-मण्डप की मंदिर के गर्भगृह की ओर की दीवार के सिरदल के मध्य भाग में देवी प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है। जिसके दायीं ओर सिंह व गाय को एक ही बर्तन में पानी पीते हुए दर्शाया गया है।

गरूड-मण्डप के चारों स्तम्भों को अलंकरणों व मूर्तियों से पूर्णतः सुसज्जित किया गया है। स्तम्भों के किनारों पर कमल के पुष्पों की शृंखला बनाई गई है तथा चारों ओर नारी मूर्तियों का अंकन किया गया है। जिनमें शिशु को दुग्धपान कराती, नृत्य करती, चंवर ढुलाती इत्यादि मुद्राओं में नारी आकृतियों का अंकन किया गया है। बायीं ओर के सतम्भ पर श्रीविष्णु को शंख, चक्र, गदा व कमल लिए हुए चतुर्भुज रूप में उत्कीर्ण किया गया है। इसके ऊपर की ओर नंदी के ऊपर विराजमान शिव-पार्वती को उत्कीर्ण किया गया है, यहाँ पर पार्वती, शिव की गोद में बैठे हुए अंकित है तथा शिव के एक हाथ में त्रिशूल है।

मंदिर के प्रवेशद्वार पर भव्य तोरणद्वार बना हुआ है, जिसके दोनों ओर विशाल हाथी की प्रतिमाएं स्थापित की गई हैं। तोरणद्वार के दोनों ओर दो लघु शिखर भी निर्मित हैं। श्वेत संगमरमर से निर्मित यह तोरणद्वार विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाओं, फूल-पत्तियों, बेल-बूटों इत्यादि से अलंकृत है। इनके साथ ही विभिन्न मुद्राओं में नारी एवं पुरुष आकृतियों को भी उत्कीर्ण किया गया है। एक स्थान पर एक युगल को ऊँट पर सवारी करते हुए अंकित किया गया है।

यह मंदिर स्थापत्यकला एवं मूर्तिकला की दृष्टि से बेजोड़ है। यह मंदिर आमेर क्षेत्र के मंदिरों में सबसे अधिक सुंदर एवं वैभावपूर्ण है। इस मंदिर का निर्माण अठारहवीं शताब्दी के अंत में हुआ था। इस काल में निर्मित लगभग सभी भवनों की स्थापत्यकला पर 'मुगल शैली' का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है, यह मंदिर भी इससे अछूता नहीं रहा। इस मंदिर का स्थापत्य, मूर्तिकला, विन्यास इत्यादि पूर्णतः भारतीय शैली पर आधारित है, परन्तु सभामण्डप का भीतरी ढांचा व छत की चित्र मुगल शैली से प्रभावित है। ढूंढाड क्षेत्र का यह महत्वपूर्ण मंदिर है।

नृसिंह मंदिर (आमेर)

आमेर में जगतशिरोमणी मंदिर के पीछे 'नृसिंह भगवान का प्राचीन मंदिर' स्थित है। इस मंदिर का निर्माण नृसिंहजी की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए करवाया गया था। वह प्रतिमा गलता ठिकाने के संत 'पयोहारीजी' के द्वारा 'राजा पृथ्वीराज' (1503-1527) की पत्नी 'बालाबाई' को दी गई थी। ऐसा माना जाता है कि पयोहारीजी ने भविष्यवाणी की थी कि जब तक यह प्रतिमा मंदिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित रहेगी, तब तक राजा पृथ्वीराज का ढूंढाड प्रदेश का एकछत्र राज्य स्थापित रहेगा। इस प्रतिमा की सेवा-पूजा के लिए परोहारीजी ने अपने एक शिष्य 'पर्वत पुजारी' को भी नियुक्त किया था।²

मंदिर के गर्भगृह में सालिग्राम में निर्मित भगवान नृसिंह का स्वरूप स्थापित है। कहा जाता है कि पूर्व में यहां नृसिंह भगवान की बड़ी प्रतिमा थी। किसी ने उस प्रतिमा के टुकड़े-टुकड़े कर दिए तथा उन्हें चुराकर ले गया। इस विग्रह का एक टुकड़ा यहीं पर पड़ा रह गया, जिसकी वर्तमान में पूजा-अर्चना की जाती है।

मंदिर में सफेद रंग का एक तोरण लगा हुआ है। इस तोरण के स्तम्भ पर तैंतीस देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। मंदिर परिसर में संगमरमर से निर्मित एक तोरणयुक्त झूला भी निर्मित है, जिस पर कृष्णजी की मूर्ति विराजमान है।

जिस महल में यह मंदिर बना हुआ है, वह 'पुराना महल' के नाम से जाना जाता है तथा कछवाहों के आमेर आने के बाद के प्रारम्भिक महलों में से एक है। जयपुर नरेश अपने विवाह के पश्चात् पहला प्रणाम करने इसी मंदिर में आते थे।

सांघी जूठाराम का मंदिर (आमेर)

आमेर महल की ओर जाने वाली सड़क पर जगतशिरोमणी मंदिर से कुछ पहले दायीं ओर यह मंदिर स्थित है। इस मंदिर का निर्माण 'जयसिंह तृतीय' के कामदार 'जूठाराम' के द्वारा करवाया गया था। प्रारम्भ में यह एक 'जैन मंदिर' था, जिसे बाद में 'शिव मंदिर' में परिवर्तित कर दिया गया। मात्र सोलह वर्ष की आयु के जयसिंह तृतीय की हत्या जूठाराम के द्वारा करवा दिए जाने के पश्चात् जयपुर राज्य की प्रजा में जैनियों के विरुद्ध भयानक रोष पनपा था।

जिसके परिणामस्वरूप जूठाराम द्वारा बनवाया गया यह जैन मंदिर, शिव मंदिर में बदल दिया गया। इस मंदिर के साथ-साथ कुछ अन्य जैन भी हिन्दू मंदिरों में बदल दिए गए।

सांघी जूठाराम के मंदिर के विशाल गर्भगृह में संगमरमर से निर्मित लगभग चार फुट ऊँचे चबूतरे पर मध्य में पंचमुखी शिवलिंग प्रतिष्ठित है। यह शिवलिंग भी संगमरमर से निर्मित है। इस शिवलिंग के पीछे की ओर एक फ्रेम के मध्य में पार्वती की, दायीं ओर राधाकृष्ण की व बायीं ओर गणेशजी की प्रतिमाएं स्थापित हैं। मंदिर के गर्भगृह के ऊपर तीन विशाल शिखर निर्मित हैं, जो गर्भगृह में लगे हुए स्तम्भों पर आधारित हैं। गर्भगृह की प्रतिमाओं के ऊपर निर्मित शिखर के भीतरी भाग में चारों ओर मानव आकृतियाँ बनाई हुई हैं, जो समय के साथ क्षतिग्रस्त हो गई हैं। इनमें ढोलक बजाती हुई एक मानवकृति स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है।

गर्भगृह में प्रवेश के तीन द्वार बनाए हुए हैं। इन द्वारों की चौखट के ऊपर मध्य में जैन तीर्थंकर को ध्यानस्थ आसन मुद्रा में अंकित किया गया है, जो इस मंदिर को पूर्व में जैन मंदिर होने को प्रमाणित करते हैं। इस प्रतिमा के ऊपर चौखट के ऊपरी भाग में पुनः जैन तीर्थंकर को आसन मुद्रा में उत्कीर्ण किया गया है। जिसके दोनों ओर हाथियों के द्वारा अभिषिक्त जैन तीर्थंकर को आसन मुद्रा में बैठे हुए अंकित किया गया है।

गर्भगृह के बाहर खुला परिसर है, जिसमें दोनों ओर बरामदे बने हुए हैं। इस परिसर में जगह-जगह पर शिवलिंग स्थापित हैं, जिनकी कुल संख्या ग्यारह हैं। यह मंदिर प्रथमतः पर निर्मित है। मंदिर में प्रवेश के लिए प्रवेशद्वार के दोनों ओर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। जिनमें सबसे ऊपर प्रवेशद्वार की ओर मुँह किए हुए हाथियों की विशाल प्रतिमाएं स्थापित हैं। गर्भगृह के द्वार की भांति ही मंदिर के प्रवेशद्वार के ऊपर भी जैन तीर्थंकर की आसन मुद्रा में ध्यानस्थ मूर्ति उत्कीर्ण की गई है। प्रवेशद्वार की चौखट के दोनों ओर संगमरमर से निर्मित स्तम्भ बने हुए हैं, जिन पर शिशु को दुग्धपान कराती, नृत्य करती, हाथ में माला लिए, इत्यादि मुद्राओं में नारी प्रतिमाओं को उत्कीर्ण किया गया है।

मंदिर के गर्भगृह की दीवारें, छतें, सतम्भ इत्यादि देख-रेख के अभाव में क्षतिग्रस्त होकर अपनी आशा खो चुके हैं। गर्भगृह के ऊपर निर्मित तीनों शिखरों की प्रस्तर की गुणवत्ता खराब होने के कारण शिखर तेजी से खराब हो रहे हैं।

लक्ष्मीनारायण मंदिर (आमेर)

आमेर में स्थित 'लक्ष्मीनारायण मंदिर' का निर्माण कछवाहा शासक 'पृथ्वीराज' की पत्नी रानी 'बालाबाई' के द्वारा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में करवाया गया था। उनके गुरु गलता ठिकाने के संत 'पयोहारीजी' थे, जिनके प्रभाव में वे परम वैष्णव भक्त बन गई थीं।

यह मंदिर सलेटी रंग के बलुए प्रस्तर से निर्मित है, जो लगभग दस फुट ऊँचे अधिष्ठान पर निर्मित है। मंदिर में प्रवेश के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मंदिर के गर्भगृह में भगवान विष्णु

की संगमरमर से निर्मित, चतुर्भुज स्वरूप की प्रतिमा स्थापित है। जिसमें उन्हें शंख, चक्र, गदा व कमल से सुशोभित दर्शाया गया है।

गर्भगृह के द्वार की चौखट को पूर्णतया अलंकृत किया गया है। इस पर चारों ओर फूल-पत्तियाँ, कमल, अप्सराएँ, नृत्य करती हुई एवं वाद्ययंत्र बजाती हुई नारी मूर्तियाँ तथा विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का अंकन किया गया है। गर्भगृह की बाहरी दीवारों पर नृसिंहावतार, वराहावतार, कृष्ण, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, महिषासुरमर्दिनी इत्यादि तथा नारी-पुरुष आकृतियों की प्रतिमाएं भी उकेरी हुई हैं।

गर्भगृह के सामने सभामण्डप है, जो सोलह स्तम्भों पर टिका हुआ है। मण्डप के ऊपर लघु शिखर निर्मित है। सभामण्डप की गोलाकार छत का भीतरी भाग पूर्णतः अलंकृत है। छत के मध्य में पेन्डल की भांति कमल लटकता हुआ उत्कीर्ण किया गया है। मण्डप के स्तम्भों पर चारों ओर जंजीर तथा घंटियाँ उकेरी हुई हैं तथा मण्डप के मध्य भाग की ओर मुंह किए हुए वाद्ययंत्र बजाती हुई नारी मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं।

अन्य वैष्णव मंदिरों की भांति यहां भी मंदिर के सभामण्डप के ठीक सामने गरूड-मण्डप बना हुआ है, जिसमें गरूड की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है। यह गरूड-मण्डप भी विभिन्न प्रकार के अलंकरणों से पूर्णतया सुसज्जित है।

कल्याणजी का मंदिर (आमेर)

यह मंदिर 'भाटों के मंदिर' के नाम से भी जाना जाता है। इस मंदिर का निर्माण लगभग ग्यारह सौ वर्ष पूर्व भाटों के द्वारा करवाया गया था। मंदिर के गर्भगृह में पीछे की ओर भगवान विष्णु की संगमरमर से निर्मित विशाल चतुर्भुज प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसमें श्रीविष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा व कमल को प्रदर्शित किया गया है। श्रीविष्णु की प्रतिमा के आगे काले पाषाण से निर्मित श्रीकृष्ण की प्रतिमा स्थापित है।

गर्भगृह के द्वार की चौखट अन्य वैष्णव मंदिरों की भांति ही विभिन्न नारी मूर्तियों तथा देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के अंकन से अलंकृत है। गर्भगृह की चौखट की दीवार के दायीं ओर की दीवार के आले में शिव-पार्वती की प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है, जिसमें उन्हें नंदी पर बैठी हुई अवस्था में दर्शाया गया है। इस दीवार के ठीक सामने वाली दीवार, जो गर्भगृह के प्रवेशद्वार के बायीं ओर है, के आले में गणेशजी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

मंदिर में गर्भगृह के बाहर सभामण्डप बना हुआ है, जो चारों ओर से दीवारों से घिरा हुआ है। सभामण्डप की छत पर चित्रकारी की हुई है। गर्भगृह एवं उसके ऊपर निर्मित शिखर के अतिरिक्त मंदिर का अन्य भाग नया बना हुआ है।

सभामण्डप वर्तमान में मंदिर के पुजारी के निवास के कक्ष के रूप में उपयोग में आ रहा है। नया निर्माण होने के कारण सभामण्डप के ऊपर शिखर निर्मित रही है। एक मात्र शिखर

गर्भगृह के ऊपर निर्मित है, जो मंदिर निर्माण के समय का है। मंदिर के गर्भगृह की पीछे की बाह्य दीवार के आने में ब्रह्मा—विष्णु—महेश की त्रिमूर्ति की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार बायीं ओर की दीवार की ताक में गणेशजी की तथा दायीं ओर नृसिंहावतार की प्रतिमा विराजमान है।

मंदिर के प्रवेशद्वार के ठीक सामने गरुड़—मण्डप को दर्शाता हुआ एक छोटा कक्ष बनाया हुआ है। यह कक्ष पूर्णतया साधारण है तथा इसमें कोई प्रतिमा स्थापित नहीं है।

शीलादेवी का मंदिर (आमेर)

‘शिलादेवी का मंदिर’ आमेर महल के परिसर में स्थित है। मंदिर के गर्भगृह में शिलादेवी के रूप में ‘अष्टभुजी दुर्गा’ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति को महाराजा ‘मानसिंह’ (प्रथम) सोलहवीं शताब्दी के अन्त में पूर्वी बंगाल से लाए थे। मंदिर के प्रवेशद्वार पर लिखे हुए पुरातत्वीय विवरण के अनुसार ‘केदार राजा’ को पराजित करने के प्रयास में असफल रहने के बाद राजा मानसिंह ने काली की उपासना की थी। तत्पश्चात् काली देवी ने प्रसन्न होकर स्वप्न में उनसे अपने उद्धार का वचन लिया तथा उन्हें विजयी होने का वरदान दिया। उसी के फलस्वरूप युद्ध में विजयोपरान्त समुद्र में शिला रूप में पड़ी हुई यह प्रतिमा महाराजा द्वारा आमेर लाकर शिलादेवी के रूप में प्रतिष्ठित की गई। एक अन्य मान्यता के अनुसार केदार राजा ने युद्ध में हार स्वीकार कर अपनी पुत्री महाराजा मानसिंह को ब्याह दी थी तथा साथ में यह मूर्ति भेंट स्वरूप दी थी।

शिलादेवी की यह प्रतिमा पहले पूर्वाभिमुखी प्रतिष्ठित थी। महाराजा ‘सवाई जयसिंह’ द्वारा जयपुर नगर की स्थापना किए जाने पर निर्माण में व्यवधान होने लगा, क्योंकि शिलामाता की इस ओर तिरछी दृष्टि पड़ रही थी। अतः पण्डितों की राय पर सवाई जयसिंह ने इस प्रतिमा को वर्तमान गर्भगृह में उत्तराभिमुखी प्रतिष्ठित करवाया।

शिलादेवी की काले चमकीले प्रस्तर से निर्मित यह अष्टभुजी प्रतिमा एक पाषाण शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण है। यहाँ पर शिलादेवी ‘महिषासुरमर्दिनी’ के रूप में प्रतिष्ठित है। मूर्ति हमेशा वस्त्रों तथा पुष्पों से ढंकी रहती है, अतः दर्शन करने पर माता का मुख तथा हाथ ही दिखाई देते हैं। ‘महिषासुरमर्दिनी’ के रूप में देवी महिषासुर को एक पैर से दबाकर दाहिने हाथ से त्रिशूल से मार रही है, इसलिए देवी की गर्दन दाहिनी ओर झुकी हुई है। अष्टभुजी शिलादेवी की दाहिनी भुजाओं में खड्ग, चक्र, त्रिशूल, तीर तथा बाईं भुजाओं में ढाल, अभयमुद्रा, मुण्ड और धनुष उत्कीर्ण है।

इस प्रतिमा के ऊपर भाग में बाएं से दाएं अपने-अपने वाहनों पर आरूढ गणेश, ब्रह्मा, शिव, विष्णु एवं कार्तिकेय की छोटे आकर की सुन्दर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। शिलादेवी की बाईं ओर अष्टधातु से निर्मित ‘हिंगलाज’ की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति कछवाहा शासकों से पूर्व आमेर

के शासक 'मीणा राजाओं' के द्वारा ब्लूचिस्तान से लाई गई थी। शिलादेवी की प्रतिमा के दाईं ओर गणेशजी की प्रतिमा विराजमान है।

मंदिर का मुख्यद्वार चांदी का बना हुआ है। जिस पर बायीं ओर के द्वार पर नवदुर्गा तथा शैलीपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्मण्डा, स्कन्दमाता, कातयायनी, कालरात्रि, महागौरी एवं सिद्धीदात्री उत्कीर्ण हैं तथा दायीं ओर के द्वार पर दस महाविद्याओं के रूप में काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुर-भैरवी, धूमावती, बागलामुखी, श्रीमातंगी तथा कमलादेवी को उकेरा गया है। दरवाजे के ऊपर लाल पत्थर से निर्मित गणेश मूर्ति प्रतिष्ठित है। मंदिर में प्रवेश करते ही दाँयी ओर महालक्ष्मी तथा बाँयी ओर महाकाली के चित्र हैं।

मंदिर के गर्भगृह, सभामण्डप, फर्श इत्यादि सभी पूर्णतः संगमरमर के बने हुए हैं। पूर्व में यह मंदिर साधारण चूने से निर्मित था, संगमरमर का यह कार्य सन् 1906 में महाराजा 'सवाई मानसिंह' (द्वितीय) के द्वारा करवाया गया है।⁹

संदर्भ ग्रन्थ

1. सी.सी. शर्मा; पृ. 285
2. चन्द्रमणि सिंह; प्रोटेक्टेड मॉन्यूमेंट ऑफ राजस्थान, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, 2002, पृ. 217
3. सर्वेक्षण के उपरान्त लिखा गया लेख



ममता यादव,
व्याख्याता, इतिहास,
म.ल.व. राजकीय महाविद्यालय,
भीलवाडा (राजस्थान)

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

प्राचीन भारत में बौद्धकालीन शिक्षा एवं आयुर्विज्ञान के प्रमुख केन्द्र

बौद्ध धर्म का उद्भव एवं विकास ग्रामीण एवं नगरीय पृष्ठभूमि में हुआ, बौद्ध धर्म को न केवल राजकीय संरक्षण (बिम्बिसार, अजातशत्रु, अशोक, कनिष्क आदि) ही प्राप्त हुआ अपितु व्यापारिक एवं धनाढ्य वर्ग (अनाथपिण्डक आदि) ने भी इसके विकास में महत्ती भूमिका निभाई। चूँकि महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को उपदेशों या शिक्षा के रूप में जन सामान्य के मध्य प्रचलित लोकभाषा में (पालि) प्रस्तुत किया था, अतः अपने जीवन काल के दौरान भगवान् बुद्ध जिस स्थल पर उपदेश हेतु या अन्य प्रयोजन वश ठहरे, वही बौद्धकाल में शिक्षा केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ, जैसे बोधगया, सारनाथ, वैशाली, श्रावस्ती, पाटलीपुत्र, नालंदा, तक्षशिला, कुशीनगर इत्यादि।

शिक्षा का अर्थ यहाँ केवल बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से ही न होकर सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान यथा-इतिहास, साहित्य, ज्यातिष, आयुर्विज्ञान, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, योगशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, गणित, तर्कशास्त्र, संगीत व शिल्पशास्त्र इत्यादि से है। प्राचीन समय में शिक्षा के दो पक्ष महत्वपूर्ण थे, अध्ययन-अध्यापन, इनके लिए गुरु-शिष्य परम्परा ही माध्यम था। अध्ययन-अध्यापन क्रम में यास्क¹ ने दो प्रकार की विद्या का उल्लेख किया है। 1. जानपदीय विद्या, 2. भूयसी विद्या, उपनिषद् में इनको परा और अपरा नाम से कहा गया है। पराविद्या अर्थात् ब्रह्म ज्ञान और अपरा विद्या अर्थात् जानपदीय विद्या, बुद्धिकाल में इसे शिल्प कहा गया है। तक्षशिला विश्वविद्यालय में इन्हीं शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी²

गुरु के समीप रहकर छात्र विद्या ग्रहण करते थे। प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश्य ईश्वरभक्ति, धर्मविश्वास, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्तव्यों का निर्माण आदि था। शिक्षा या ज्ञान का क्रियात्मक रूप भी प्रचलित था, औषधि सम्बन्धी ज्ञान को प्रयोगों के आधार पर ही प्रमाणित किया जाता था। आयुर्वेदीय शिक्षा का उद्देश्य भी कर्तव्य की शिक्षा देना था, ग्रंथों में स्थान-स्थान पर वैद्य को याद कराया गया है कि उसका धर्म रोगी की सेवा करना है, धन कमाना नहीं, रोगी को पुत्र के समान समझना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।³

वैद्य को सम्पूर्ण औषधियों का ज्ञाता होना चाहिए।⁴ केवल धर्म प्राप्ति हेतु रोगों से बचाने के लिये, धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिए आयुर्वेद को साधन समझना चाहिये। आयुर्वेद का उपदेश सर्वभूतानुकम्पा व प्रजा हितकामना से किया गया है।⁵

प्राचीन समय में आयुर्वेद विद्या के ज्ञाता वैध के समान अन्य विद्याओं और शिल्पों हेतु गुरु तथा आचार्य भी अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूर्ण ईमानदारी से करते थे। इनका प्रमुख कार्य अध्ययन-अध्यापन ही था, बौद्ध आचार्य बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का उपदेश देते थे। श्रावस्ती, वैशाली, कौशांबी, जेतवन, वेणुवन, कपिलवस्तु, सारनाथ व बोधगया इत्यादि प्रमुख केन्द्र थे।⁶ जहाँ आचार्य एवं भिक्षुओं तथा स्वयं तथागत के द्वारा अहिंसा, तप, पाप न करना, शुद्ध आचरण संयमित जीवन, लोकल्याण आदि की शिक्षा दी जाती थी।

‘सब्वपापस्स अकरणं...बुद्धान सासनं। अनूपवादो अनूपद्यातो पातिमोक्खो च संवरो...एतं बुद्धान सासनं।’⁷ अर्थात् सभी पापों को न करना, पुण्यों का संचय करना, चित्त की शुद्धि, निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकांतवास एवं चित्त को योग में लगाना यही बुद्धों की शिक्षा है।

शिक्षा संस्थाओं का प्रारम्भ

प्राचीन शिक्षा के केन्द्रों में तो शिक्षण कार्य भिक्षु ही करते थे, इनके निर्वाह का प्रबंध विद्यालय की ओर से रहता था। भारत में शिक्षा संस्थाओं का जन्म मठों या बौद्ध विहारों से हुआ है। महात्मा बुद्ध ने उपासकों की विधिवत शिक्षा-दीक्षा पर बहुत जोर दिया था। दस वर्ष तक अध्ययन करने के बाद उपासकों को ‘प्रव्रज्या’ दी जाती थी। उनके विहार, गुरुकुलों के ही समान थे। विहारों का मुख्य-आचार्य योग्य भिक्षु होता था। विहारों, मठों में भोजन तथा वस्त्र आदि का सुभिता शिष्यों को मिलता था।⁸ विद्या समाप्ति पर गुरु दक्षिणा देना आचार माना जाता था। जो गुरुदक्षिणा नहीं चुकाते थे उनको समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। ‘मिलिन्दप्रश्न’⁹ से पता चलता है कि राजा मिलिन्द ने अपने गुरु नागसेन को अब बहुत दक्षिणा दी तो उन्होंने उसे लेने से इनकार कर दिया। तब मिलिन्द ने कहा यदि मैं आप को कुछ नहीं दूँगा तो लोग मुझे धिक्कारेंगे।

भारत वर्ष में विद्या या चिकित्सा का विक्रय नहीं होता था¹⁰ क्योंकि विद्या एवं चिकित्सा दोनों ही सेवा कर्म समझे जाते थे। किसी भी राष्ट्र अथवा सभ्यता की उन्नति के लिए उसे विद्या आदि से समृद्ध तत्कालीन राष्ट्रों का अध्ययन करना चाहिए। वहाँ की सभ्यता, आदर्श, जीवन, लोककल्याणभाव, साहित्य, चिकित्सा संबंधी ज्ञान आदि की पूर्ण जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।¹¹ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कुछ प्रसिद्ध शिक्षा एवं चिकित्सा संस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है-

तक्षशिला विश्वविद्यालय

ब्राह्मण और उपनिषद् काल में अर्थात् ईसा पूर्व 600 के पहले तक्षशिला प्राचीन गान्धार राज्य की राजधानी थी। इस प्रकार तक्षशिला भारत और मध्य एशिया के बीच बहुत बड़ा व्यावसायिक तथा व्यापारिक केन्द्र था। इसके फलस्वरूप यह बहुत समृद्ध और ऐश्वर्यशाली नगर बन गया था। यहाँ सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन होता था जहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए देश-विदेश के विद्यार्थी ज्ञान-विज्ञान प्राप्ति के लिए आते थे।¹²

अभी तक प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय सबसे प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय था। अनेक विदेशी आक्रमणों के होने पर भी यह ईसा पूर्व सातवीं सदी से ईसा पूर्व पहली शदी तक शिक्षा और ज्ञान का प्रसिद्ध केन्द्र था।¹³ यहाँ पर मानवीकी और विज्ञान की अनेक शाखाओं के अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था।¹⁴ तक्षशिला विश्वविद्यालय ने यशस्वी संस्कृत व्याकरण पाणिनी तथा महान राजनीतिज्ञ विष्णुगुप्त कौटिल्य या चाणक्य जैसी प्रतिभाओं को उत्पन्न किया। चिकित्सा विज्ञान के प्रारंभिक उपदेशकों में अत्यन्त तेजस्वी व्यक्ति भिक्षु आत्रेय भी तक्षशिला के आचार्य थे। उन्होंने चिकित्सा विज्ञान की महत्वपूर्ण विचार पद्धति की स्थापना की। इसकी यश व कीर्ति सुदूर देशों में फैल गई थी। जीवक ने 7 वर्ष तक आयुर्वेद का अध्ययन इसी विश्वविद्यालय में किया था।¹⁵ तक्षशिला विश्वविद्यालय का अष्टाध्यायी के लेखक 'पाणिनी' ने ईसा पूर्व 7वीं सदी में उल्लेख किया है। ऐसा भी संभव हो सकता है कि यह विश्वविद्यालय इससे भी प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा हो, जहाँ पुनर्वसु-आत्रेय, अग्निवेश का भी सम्पर्क रहा हो परन्तु चरक में तक्षशिला का उल्लेख न होने से ऐसा होना असंभव लगता है।¹⁶

अश्वघोष¹⁷ की रचनाओं के आधार पर यह ज्ञात होता है कि एक चीनी राजकुमार अपनी आँख का रोग की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आया था। इसके स्नातकों के दूसरों कीर्तिस्तम्भ सुप्रसिद्ध काय-चिकित्सक जीवक थे, जिन्होंने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पर्यटन किया और चिकित्सा जगत में आश्चर्यजनक कार्यों का सम्पादन किया। उन्होंने शस्त्रचिकित्सा में भी कुशलता प्राप्त की थी।¹⁸

कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि प्राचीन काल में शल्य प्रधान चिकित्सा का केन्द्र काशी (वाराणसी) और काय चिकित्सा का प्रधान केन्द्र तक्षशिला था।¹⁹ कुछ ऐसे भी तथ्य प्राप्त होते हैं जिनसे पता चलता है कि तक्षशिला में काय-चिकित्सा के साथ-साथ गौण रूप से शल्यविज्ञान भी प्रचलित था। आत्रेय (चरक संहिता में), भेल (भेल संहिता), कश्यप (काश्यप

संहिता) आदि आचार्यों ने शल्यशास्त्रियों के लिए 'धान्वन्तराः' इस बहुवचनान्त शब्द का प्रयोग किया है। जिससे पता चलता है कि शल्यशास्त्रियों की संख्या बहुवचन में थी।²⁰

पाठ्यक्रम

तक्षशिला विश्वविद्यालय की स्थापना भरत ने की थी, किन्तु शासन का कार्य तक्ष के हाथों होने से इसका नाम 'तक्षशिला' पड़ा। यहाँ पर भारत के अतिरिक्त बाबुल, ग्रीस, सीरिया, अरब, चीनादि देशों से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। यहाँ पर कुल 68 विभागों के अन्तर्गत शिक्षा के विविध पाठ्यक्रमों का संचालन होता था। इनमें प्रमुख थे- वेद, व्याकरण, भाषा, ज्योतिष विज्ञान, संगीतशास्त्र, नृत्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, खगोलशास्त्र, धर्म, दर्शनशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, शल्यशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, युद्धशास्त्र आदि विषय यहाँ पर आचार्य आत्रेय के अतिरिक्त जीवक, चन्द्रगुप्त मौर्य, कौशल शासक प्रसेनजित, चरक, कौटिल्य आदि विद्वानों ने भी शिक्षा प्राप्त की थी।²¹

'विलडूराण्ड' नामक विद्वान अपने ग्रंथ 'स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन'²² में लिखते हैं तक्षशिला, काशी, उज्जयिनी एवं विदर्भ आदि नगरों में भारतीय विश्वविद्यालय थे।

'विल डूराण्ड' के अनुसार जब अलेकजेण्डर (सिकन्दर) ने तक्षशिला पर आक्रमण किया उस समय वहाँ यह एशिया का सबसे बड़ा एक सम्पन्न विश्वविद्यालय था।²³ सिकन्दर अपने साथ अनेक भारतीय विद्वानों (चिकित्सकों) को ले गया था तथा भैषज्य-विद्या में भारतीय विद्वानों में से तक्षशिला से आदरपूर्वक साथ लाए हुए कलनोस (कल्याण) नामक भारतीय विद्वान का वह अन्य सब दार्शनिकों की अपेक्षा अधिक सम्मान करता था।²⁴

सुश्रुत संहिता में दिवोदास के शिष्य सुश्रुत के सहपाठी के रूप में अनेक देश वाले व्यक्तियों का परिचय मिलता है। उनमें से शल्य के विषय में विशेष तंत्रों का निर्माण करने वाले पौष्कलावत का भी उल्लेख है। संभवतः यह प्राचीन गंधार की राजधानी के रूप में ज्ञात पुष्कलावत का रहने वाला हो।²⁵

आयुर्विज्ञान का सबसे बड़ा केन्द्र

तक्षशिला में अनेक विषयों के साथ आयुर्वेद का भी विषय था, यह विभाग अत्यधिक उन्नति के स्तर पर था। इसका कारण यह रहा था कि यहाँ वैदिक काल से ही आयुर्वेद संबंधी अन्वेषण और परीक्षण होते रहते थे, जो संहिताकाल तक पूर्ण विकसित स्वरूप को प्राप्त कर चुके थे।²⁶ इसकी प्रसिद्धि का एक अन्य कारण यह भी था कि यह सीधा प्राणों की रक्षा तथा सुखायु की प्राप्ति की इच्छा करता है, साथ ही साथ स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा तथा आतुर के विकार प्रशमन के उद्देश्यों से युक्त आयुर्वेद सर्व-साधारण

के साथ-साथ राजाओं द्वारा भी अधिक पसंद किया गया।²⁷ तथा यहाँ उस समय अष्टांग आयुर्वेद की उच्च शिक्षा का प्रबंध था।

500 ईसा पूर्व जब संसार में चिकित्सा शास्त्र की परम्परा भी नहीं थी, तब तक्षशिला आयुर्वेद विज्ञान का सबसे बड़ा केन्द्र था। जातक कथाओं एवं विदेशी पर्यटकों के लेख से पता चलता है कि यहाँ के स्नातक मस्तिष्क के भीतर तथा अन्तड़ियों तक का ऑपरेशन बड़ी सुगमता से कर लेते थे। अनेक असाध्य रोगों के उपचार सरल एवं सुलभ जड़ी-बूटियों से करते थे। इसके अतिरिक्त अनेक दुर्लभ जड़ी-बूटियों का भी उन्हें ज्ञान था। शिष्य आचार्य के आश्रम में रहकर विद्या अध्ययन करते थे। एक आचार्य के पास विद्यार्थियों की संख्या 100 से 500 तक होती थी।²⁸ अध्ययन में क्रियात्मक कार्य को बहुत महत्त्व दिया जाता था। छात्रों को देशाटन भी कराया जाता था।

विश्वविद्यालय का स्वरूप

शिक्षा पूर्ण होने पर परीक्षा ली जाती थी। तक्षशिला विश्वविद्यालय से स्नातक होना उस समय अत्यन्त गौरवपूर्ण माना जाता था। यहाँ धनी व निर्धन दोनों तरह के छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था थी धनी छात्र आचार्य को भोजन, निवास, अध्ययन का शुल्क देते थे तथा निर्धन छात्र अध्ययन करते हुए आश्रम के कार्य करते थे। शिक्षा पूरी होने पर वे शुल्क देने की प्रतिज्ञा करते थे। प्राचीन साहित्य से विदित होता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में सुप्रसिद्ध विद्वान, चिंतक, कूटनीतिक, अर्थशास्त्री, चाणक्य ने भी अपनी शिक्षा यही से पूर्ण की थी। उसके पश्चात् यहीं शिक्षण कार्य करने लगे। अपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। इस विश्वविद्यालय की स्थिति ऐसे स्थान पर थी जहाँ पूर्व और पश्चिम से आने वाले मार्ग मिलते थे।

चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व से ही इस मार्ग से भारत वर्ष पर विदेशी आक्रमण होने लगे²⁹ विदेशी अक्रान्ताओं ने इस विश्वविद्यालय को काफी क्षति पहुँचायी। अन्ततः छठवीं शताब्दी में यह आक्रमणकारियों द्वारा पूरी तरह नष्ट कर दिया गया।³⁰

काशी विश्वविद्यालय

तक्षशिला विश्वविद्यालय के अतिरिक्त एक अन्य विश्वविद्यालय 'काशी' था जहाँ शल्य प्रधान आयुर्वेद का विशिष्ट महत्त्व था। जिसके कुलपति काशीराज दिवोदास धन्वन्तरि थे। यहाँ दूर-दूर के लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते थे। इसका उदाहरण इनके अनेक शिष्य हैं। भारत के प्राचीनतम विद्या केन्द्र और महायान सांस्कृतिक नगरी काशी का एक नाम वरुणा और असी नामक नदियों के बीच में बसा होने के कारण 'वाराणसी' भी है। वाराणसी को काशी नगर या काशीपुर³¹ भी कहा जाता है। जातकों में इस नगर

का विस्तार योजना बतलाया गया है।³² यह उद्योग एवं व्यापार का एक बड़ा केन्द्र था तथा वाराणसी, श्रावस्ती एवं तक्षशिला में व्यापारिक संबंध थे।³³ हिन्दु, बौद्ध एवं जैन साहित्य के विशिष्ट रूप से वर्णित वाराणसी की गणना आनंद द्वारा बुद्ध परिनिर्वाण के लिए अनुकूल बताए गए बड़े नगरों में की गई थी।³⁴

यहाँ के निवासी उदार एवं विद्याध्ययन में तत्पर थे। तथा कुछ ही लोग बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखते थे।³⁵ यह एक धनी एवं समृद्धशाली नगर था।³⁶ बौद्ध ग्रन्थों विशेषतः जातकों से इस विषय में हमें पूरी जानकारी प्राप्त होती है।³⁷ बुद्ध काल में काशी एक स्वतंत्र व समृद्ध राष्ट्र था। वह सप्त रत्नों से युक्त था। इसका साक्ष्य देते हुए भगवान बुद्ध ने कहा है, 'भूतपुब्बं भिक्खवे..कोट्टागारो।' ³⁸ अर्थात् 'भूतपूर्व युग में भिक्षुओं ब्रह्मदत्त नामक काशी राजा था, जो आढ्य, महाधनवान, महायोगसम्पन्न, महाबली, महान् वाहनों वाला, महान् विजित् वाला था तथा उसके कोष और कोषागार (धन और अनाज से) भरे हुए थे।'

काशी-वाराणसी बुद्ध काल तथा उसके बाद में राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अपना प्रमुख स्थान रखती है।³⁹

नालन्दा विश्वविद्यालय

उस काल का एक अन्य प्रसिद्ध विश्वविद्यालय बिहार प्रदेश में मगध के नालन्दा नामक स्थान में था जो नालन्दा विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हमें जानकारी मिलती है कि नालन्दा महाविहार में महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी दोनों वहाँ ठहरे थे। यह उस समय का एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त आवासीय मठ था। 'नालन्दा' का तात्पर्य है- 'ज्ञान देने वाला'। प्राचीन समय में यह राजगीर का उपनगर था तथा यह राजगीर से पटना जाने वाली मुख्य सड़क के मार्ग पर स्थित था। पुराने बौद्ध साक्ष्यों व स्रोतों से पता चलता है कि मौर्य शासक अशोक ने (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) में नालन्दा में एक मंदिर बनवाया था। यह शिक्षा का एक सुप्रसिद्ध केन्द्र था जहाँ पर दार्शनिक एवं रसायज्ञ नागार्जुन ने अध्ययन किया तथा दूसरी शताब्दी ईस्वी तक यहाँ पर अध्यापन कार्य करवाया।⁴⁰ यहाँ आयुर्वेद की शिक्षा अनिवार्य विषय के रूप में दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय में एक समय में 10,000 विद्यार्थियों तथा लगभग 100 अध्यापकों की व्यवस्था थी। इसके परिसर में 8 अलग-अलग प्रांगण, 10 मंदिर, तालाब, सरोवर, विद्यार्थी निवास आदि थे। इससे इसकी भव्यता का आभास होता है। विदेशों से यथा- चीन, तिब्बत, श्रीलंका, कोरिया आदि से भी विद्यार्थी यहाँ पर विद्या अध्ययन करने के लिए आते थे। यहाँ पर बौद्ध धर्म, वेद, वेदान्त, सांख्य, धर्मशास्त्र, चिकित्साशास्त्र,

ज्योतिष आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी।⁴¹ धातु विद्या की भी शिक्षा थी, इसका प्रमाण खुदाई से प्राप्त भट्टियाँ हैं।⁴² चीनी यात्री च्वांगशांग के अनुसार, नालंदा विहार के अध्ययन के अन्य विषयों में आध्यात्मविद्या (त्रिपिटक भी शामिल थे), हेतु विद्या शब्द विद्या तांत्रिक विद्या आदि भी शामिल थे। इन्होंने नालंदा विहार के कुछ आचार्यों के नाम भी बताये हैं, यथा- शीलभद्र (प्रधान आचार्य), धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, जिनमित्र और जिनचन्द्र आदि प्रमुख उपाध्याय थे।⁴³ माना जाता है कि सन् 1193 में बख्तियार खिलजी ने आक्रमण कर इस विश्वविद्यालय को ध्वस्त कर दिया था।⁴⁴ पुस्तकालय जला दिया गया। आग की लपटें कई दिन तक उठती रही, सब कुछ समाप्त हो गया। इस प्रकार 12वीं शताब्दी तक यह शिक्षा व चिकित्सा का प्रसिद्ध केन्द्र रहा। नालंदा विश्वविद्यालय प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के प्रयास अभी भी जारी हैं जो उसकी महत्ता को वर्तमान में प्रदर्शित करता है।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय

इस विश्वविद्यालय की स्थापना बंगाल के पालवंशीय शासक धर्मपाल ने की थी।⁴⁵ यह बौद्ध धर्म के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र था। अनेक बौद्ध मंदिरों व विहारों का निर्माण करवाया गया था। इन विहारों के कक्षों में व्याख्यान हुआ करते थे तथा सर्वदा दर्शन एवं धर्म की चर्चाएँ आयोजित की जाती थी। यहाँ अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न ग्रंथों की रचना की, जिनका बौद्ध साहित्य और इतिहास में नाम है। उन विद्वानों में प्रसिद्ध हैं- रक्षित, विरोचन, ज्ञानपद, बुद्ध, जोतारि, दीपंकर, अभयंकर आदि।⁴⁶

यहाँ बौद्ध धर्म व दर्शन के अतिरिक्त न्याय, तत्त्वज्ञान, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। देश के ही नहीं अपितु विदेशों के भी छात्र यहाँ अध्ययन करने के लिए आते थे। यहाँ तंत्रप्रधान विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। संभवतः रसशास्त्र की शिक्षा भी दी जाती थी क्योंकि रसशास्त्र तन्त्रप्रधान विद्या से संबंधित है।⁴⁷ यद्यपि विक्रमशिला विश्वविद्यालय की प्रसिद्धि मध्यकाल (12वीं-13वीं शताब्दी) तक रही है। तथापि बौद्धकालीन आयुर्वेदिक चिकित्सा एवं तंत्र संबंधी अध्ययन के लिए इस विश्वविद्यालय ने अत्यन्त महत्ती भूमिका निभाई। इन शिक्षा केन्द्रों के अलावा अन्य बौद्ध शिक्षा एवं चिकित्सा के केन्द्रों में कुछ नाम और प्रसिद्ध हैं-

औदन्तपुरी (लगभग 550-1040 ईस्वी तक) जो कि बिहार में स्थित था। सोमपुरा, जो वर्तमान बांगलादेश में स्थित है, यह भी बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र रहा है। जगदल्ला, जो बंगाल में स्थित था। इसका वर्चस्व पाल वंश के शासकों के काल से लेकर तुर्की मुस्लिम आक्रमणकारियों के समय तक माना जाता है। इसी तरह, बौद्ध कला एवं शिक्षा

का अन्य केन्द्र नागार्जुन कोंडा था, जो कि आंध्रप्रदेश में स्थित था। वल्लभी (गुजरात) नामक स्थल भी प्राचीन समय में शिक्षा के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है।⁴⁸

प्राचीन समय में ही निमि के संरक्षण में विदेह नगरी में शालाक्य प्रधान स्कूल था। दक्षिणी भारत में भी विषविद्या एवं रस शास्त्र का ज्ञान विकसित हुआ।⁴⁹ उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मठ एवं विहारों से प्रारंभ हुई बौद्ध शिक्षा एवं चिकित्सा की पद्धति कालान्तर में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालयों तक्षशिला, काशी, नालन्दा, वल्लभी इत्यादि में फलीभूत हुई। इसके सुखद परिणाम वर्तमान में भी ना केवल भारतीय समाज व संस्कृति वरन वैदेशिक क्षेत्रों में भी देखे जा सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. निरुक्त, यास्क, मण्डकोपनिषद, 5
2. जातक भाग-5, पृ. 347
3. सूत्रस्थान अध्याय 1, चिकित्सा स्थान अध्याय 1/4
4. ऋग्वेद, 10/97/6
5. सुश्रुत संहिता
6. अभिधम्मत्थसङ्ग्रहो, आचार्य अनुरुद्ध महास्थविर, पञ्चम परिच्छेद
7. धम्मपद, अनुवादक भिक्षु धर्मरक्षित, पृ.60
8. आयुर्वेद का वृहत् इतिहास, अत्रिदेव विद्यालंकार, पृ. 518
9. मिलिन्दपन्हो
10. चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, 1/4/55-59
11. आयुर्वेद का प्रामाणिक इतिहास, डॉ. भागवत राम गुप्त, पृ.471
12. वही, पृ. 472
13. भारतीय भेषजी का इतिहास, प्रो. गोरख प्रसाद श्रीवास्तव, पृ. 59
14. वही, पृ. 60
15. अलतेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ. 74-76
16. आयुर्वेद का प्रामाणिक इतिहास, डॉ. भागवत राम गुप्त, पृ. 522-23
17. सौन्दरानंद, अश्वघोष।
18. महावग्ग, विनयपिटक।
19. आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, डॉ. विद्याधर शुक्ल एवं डॉ. रविदत्त त्रिपाठी, पृ. 151
20. वही, पृ. 150-151
21. आयुर्वेद का इतिहास, प्रो. रामहर्ष सिंह, पृ. 373

22. 'विल टूराण्ड', स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन
23. आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, डॉ. विद्याधर शुक्ल एवं डॉ. रविदत्त त्रिपाठी, पृ. 157
24. आयुर्वेद का प्रामाणिक इतिहास, डॉ. भागवत राम गुप्त, पृ. 475
25. सुश्रुत संहिता
26. आयुर्वेद का इतिहास, डॉ. अनूप कुमार गवखड़ एवं डॉ. अनिल गवखड़, पृ. 178-179
27. वही, पृ. 179
28. एन्शियेंट इंडियन एजुकेशन, श्री राधाकुमुद मुखर्जी, पृ. 368
29. www.taksha.org/about_lect/history
30. अलतेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ. 84-86
31. जातक -V, 54, 115 धम्मपद कमेन्ट्री, 1.87
32. जातक IV, 377, 160 तुलनीय मज्झिम कमेन्ट्री, द्वितीय, 608
33. धम्मपद, III, पृ. 429, प्रथम पृ. 123
34. दीघ निकाय III, 146
35. बील, बुद्धिस्ट रिकाड्स ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, 1.44
36. अंगुत्तर निकाय, I, 293, दीघ निकाय II, 75
37. अंगुत्तर निकाय, IV, पृ. 216 IV पृ. 252, 256, 260
38. महावग्ग, विनयपिटक, II, पृ. 262
39. भारत के प्रमुख बौद्ध केन्द्र, डॉ. दानपाल सिंह, पृ. 50
40. Nalanda Bihar.nic.in/history.asp.
41. आयुर्वेद का इतिहास, प्रो. राम हर्ष सिंह, पृ. 374
42. आयुर्वेद का प्रामाणिक इतिहास, डॉ. भागवत राम गुप्त, पृ. 522
43. आयुर्वेद का वृहत् इतिहास, अत्रिदेव विद्यालंकार, पृ. 586
44. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, आचार्य प्रियव्रत शर्मा, पृ. 565
45. आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, डॉ. विद्याधर शुक्ल एवं डॉ. रविदत्त त्रिपाठी, पृ. 172-173
46. वही, पृ. 173
47. आयुर्वेद का प्रामाणिक इतिहास, डॉ. भागवत राम गुप्त, पृ. 523
48. www.en.m.wikipedia.org/wiki-ancient_education_institutes
49. आयुर्वेद का प्रामाणिक इतिहास, डॉ. भागवत राम गुप्त, पृ. 522



“भारतीय समाज में नारी का स्थान एवं भूमिका” वर्तमान परिदृश्य में

तुमसे ही घर ‘घर कहलाया’ ‘घर की शोभा’ ‘गृहलक्ष्मी’ ‘अन्नपूर्णा’ जैसे न जाने कितने ही नामों से नारी को नवाजा गया, लेकिन मध्यवर्गीय घरों की चारदीवारी में रहते हुए औरत पर क्या गुजरती रही न किसी ने देखा न जाना और नहीं उस पर सवाल उठाया। नारी के मुंह के ताले जड़ दिए गए।¹

प्राचीन परम्पराओं और मान्यताओं के अनुसार नारी का स्थान समाज में सदैव राधेश्याम में ‘राधा’ का नाम, सीताराम में ‘सीता’ का नाम व गौरी शंकर में ‘गौरी’ का नाम प्रथम आता है। नारी को गृहस्थ जीवन की धुरी माना गया है। गृहस्थ जीवन में नारी के कई रूप हैं – वह मां के रूप में बालक व बालिका की जन्मदात्री और लालन-पालन करने वाली माता होती है, तो पत्नी के रूप में वह पति की सहचारिणी होती हो, धार्मिक कर्मकाण्डों में वह पति की सह धर्मिणी तथा घर-गृहस्थी के कार्यों में वह पति को मित्र के रूप में परामर्श देने वाली सहयोगी होने के साथ-साथ वह अपने पति के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाली महान दानी भी होती है।²

शास्त्रों में महान व्यक्तियों के पीछे उनकी प्रगति एवं ख्याति में भी नारी का ही योगदान रहा है। महाकवि कालिदास के पीछे विद्योत्तमा की प्रेरणा, राम चरित्रमानस के रचयिता तुलसीदास के पीछे उनकी पत्नी रत्नावली की प्रेरणा, जिसने उनको सांसारिक माया-मोह के लिए धिक्कारा और महाराजशिवाजी की प्रेरणा स्रोत भी उनकी माता जीजाबाई ही थी। महात्मा गांधी के जीवन में उनकी माता पुतलीबाई और पत्नी कस्तुरबा की मूल प्रेरणा ही कार्यरत थी।³ जो आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है।

नारी हमारे समाज की अमूल्य धरोहर है, वह सम्पूर्ण समाज की जननी है, किन्तु आज उनका स्थान बहुत गिर चुका है।⁴

मध्यकाल में मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दु समाज का मूल ढांचा चरमरा गया और वे परतंत्र होकर मुसलमान शासकों का अनुकरण करने लगे उससे समय से नारी का समाज में स्तर गिरता चला गया।

आज की नारी आधुनिता के परिवेश में जी रही है। वह अनेक समस्याओं के साथ संघर्ष कर रही है। सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त उसे आर्थिक समस्याओं से भी जूझना पड़ रहा है, इसलिए वह नौकरी करके अपने परिवार को आर्थिक संकट से उबारने का प्रयत्न कर रही है।⁶ लेकिन वर्तमान समय में उसे बाहर तो क्या घर में भी हीन दृष्टि से देखा जाने लगा है। समाज में बाल-विवाह पर्दा प्रथा-नारी उत्पीड़न, बलात्कार, कन्या भ्रूण हत्या जैसी कुप्रथाएं प्रचलित होने से नारी का स्थान गिरता जा रहा है। वर्तमान समाज में मां-बेटे का बाप-बेटी व अन्य सभी रिश्ते मेले हो चुके हैं। नारी हर प्रकार से असुरक्षित होने लगी है। उसे जन्म देने वाले मां-बाप से ही खतरा पैदा होने लगा है। इस युग में नारी योग-विलास और वासना तृप्ति का साधन बनकर रह गई है। लोगो ने लड़कियों को पढ़ाने के लिए पाठशालाओं में भेजना बंद कर दिया, इससे समाज में बाल-विवाह का प्रचलन शुरू हो गया।⁷

भारतीय नारी का अतीत निश्चित रूप से गौरवपूर्ण था, परन्तु कालान्तर उसकी स्थिति में परिवर्तन आया और धीरे-धीरे स्थिति और भी भयावह होती चली गयी। समाज में पुरुष का आधार अंग मानी जाने वाली नारी आज "पुज्य से भोज्या" व "रानी से नौकरानी" बनकर रह गई है।

हमारी संस्कृति में कहा गया है "यह नार्यास्तु पुज्यते रमन्ते तत्र देवताः" पर राष्ट्र का दुर्भाग्य ही कहां जाएगा की समय के चक्र के परिवर्तन के साथ-साथ ये धारणाएं केवल सैद्धान्तिक रूप से ही शेष हैं। प्राचीन धर्मशास्त्रों में नारियों को समुचित सम्मान प्राप्त है परन्तु आज समाज में चारो और हिंसा, शोषण, व्यभिचार का बोलबाला है जिसका परिणाम समाज में व्याप्त अनेक कुप्रथाएं सती प्रथा, पर्दा प्रथा, तलाक, दहेज प्रथा आदि बढ़ती जा रही है। हमें नारी को समाज में उसका वहीं स्थान व सम्मान दिलाना होगा जो उसका हक है।

मानव सभ्यता के संतुलन में महिला-पुरुष दोनो का योगदान बराबर होता है। अतः नारी को ज्ञान सद्व्यवहार, सही जीवन यापन, चरित्र निर्माण, लगन, एक निष्ठा, अव्यवसाय, दृढ़ता, निश्चयात्मकता, प्रयोजनात्मकता, गृह-व्यवस्था, बच्चों की शिक्षा आदि से संबंधित सभी प्रकार की शिक्षा एवं ज्ञान दिया जाना चाहिए ताकि वह जीवन में हर स्थिति का मुकाबला दृढ़ता से कर सके।

नारी आज पल्लवी है, धन्य है, सेविका है, अधिकारी है, गृहणी है, माता है, विश्वसनीयता संयम, धर्म परायणता, शुद्धता, नैतिकता से सुसज्जित है, दानी है, महादानी है, उदार है, भावुक है लेकिन वक्त आने पर फौलाद भी है। आज महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में अपनी सुगन्ध बिखेर रही हैं। घुंघट से बाहर निकलकर अपनी शक्ति और सशक्तिकरण का परिचय दे रही हैं। अतः आज नारी का महत्व समझा जाना, सर्वोच्च प्राथमिकता है। उनकी मर्यादा, पवित्रता की रक्षा की जानी चाहिए, अन्यथा धरा अपवित्रता का दलदल एवं नर्क बन जाएगी। उनकी सुगंध एवं

ज्योति को बिखरने से बचाना है, अन्यथा पृथ्वी अंधकारमय हो जायेगी। उनकी स्पष्ट वादिता, स्वीकारोक्ति मुखरवाणी, भव्य भाषा, असीम प्रतिभा, समृद्ध सौन्दर्य की रक्षा करनी है ताकि उनका हृदय रूपी दर्पण चमकता रहे और उनके प्रगति के सूर्य का प्रकाश धरा पर प्रकाशित होता रहे।

अंत में निम्न पंक्तियों पर प्रकाश डालना चाहूँगी –

“यदि अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है,

एक अकेला जुगनू सारा अंधकार हर लेता है।”

संदर्भ ग्रन्थ

1. ममता जेतली, श्री प्रकाश शर्मा, आधी आबादी का संघर्ष राजकमल प्रकाशन दिल्ली 2006, पृ. 196
2. महिलाओं व बालिकाओं के अधिकार, प्रकाश नाटाणी विनायक प्रकाशन जयपुर (1) संस्करण 2011, पृ. 2
3. उपरोक्त वही, पृ. 1
4. उपरोक्त वही, पृ. 3
5. एम. के. मिश्रा, नारी शोषण, अर्जुन पब्लिसिंग हाऊस दल्ली, 2010, पृ. 37
6. उपरोक्त वही, पृ. 2
7. उपरोक्त वही, पृ. 2
8. उपरोक्त वही, पृ. 128
9. श्रीमती वन्दना सक्सेना, 21वीं सदी में नारी : अधिकार एवं कल्याण, लेखक प्रकाशक – रायल पब्लिकेशन, जयपुर – (23), संस्करण 2008, पृ. 9
10. उपरोक्त वही, पृ. 11



लोकेश कुमावत
व्याख्याता, स्टेनी मेमोरियल पी.जी. कॉलेज,
मानसरोवर, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

“पुतल कला” समसामयिक समय में बदलते उद्देश्य व तकनीक

प्रस्तावना –

‘पुतल कला’ यह शब्द सुनते ही नैत्रों के सामने विभिन्न प्रकार के पुतल नृत्य करने लगते हैं। मन व मस्तिष्क एक रंगमयी वातावरण में विचरण करने लगता है। भारत वर्ष पुतल कला के गौरवमयी इतिहास को समाहित किये हुए है। और यह गौरवान्वित होने का विषय है कि भारत में लगभग 18–20 प्रकार की पुतल परम्परा पाई जाती है। जिनकी विभिन्न प्रकार की वेशभूषा, प्रदर्शित या नृत्य करने का तरीका, तकनीकी पक्ष विभिन्न है और यही विभिन्नता इस पुतल कला को और रोमांचकारी बनाती है।



प्रयोजन एवं इतिहास में महत्व –

पुतल कला बहु प्रयोजन कला है जैसे मनोरंजन, ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन व अन्य हितकारी बातों को आमजन तक मनोरंजक रूप में प्रस्तुत करना। राजा महाराजाओं के समय की घटनाओं व पौराणिक कलाओं को भी रोचक रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

इसका प्रयोजन यह रहा है कि आमजन तक ये इतिहास व पौराणिक कथाओं को रोचक रूप से अवगत कराया जाए व उन्हें इतिहास की महान गाथाओं से रूबरू कराया जाए।

वर्तमान में प्रयोजन –

पुतल कला के प्रयोजन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है जैसे की हम जानते हैं कि प्रारम्भ

में यह कला गौरव गाथा व पौराणिक गाथा को प्रस्तुत करती थी, परन्तु वर्तमान में यह विषय तो है ही इनके साथ-साथ वर्तमान समय में समाज की समस्याओं को उजागर कर आमजन को सकारात्मक सीख देने का माध्यम बनकर सामने आई है। बहुत से ऐसे विषय हैं जो आमजन तक पहुंचते तो हैं पर उनका प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसे विषयों को पुतल कला के द्वारा रोचक तरीके से प्रस्तुत किया गया। जैसे कन्या भ्रूण हत्या, लिंग अनुपात, सर्वशिक्षा, दहेज प्रथा, चिकित्सा, एड्स, केन्सर जैसे बिमारियों की रोकथाम की जानकारी आदि।

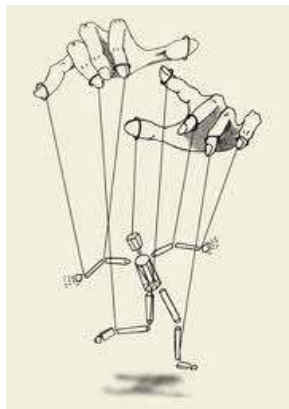


इन विषयों को धारण कर पुतल कला ने एक नया आयाम हासिल किया है। अब यह मनोरंजन के साथ-साथ एक उपयोगी कला बन गई है।

पुतल कला के रूप व तकनीक –

पुतल कला के प्रदर्शन हेतु कई माध्यम व तकनीक अपनाई जाती है जिनमें निम्न प्रमुख हैं –

धागा पुतल – इसमें पुतल को धागों द्वारा बांधा जाता है व उससे प्रदर्शन या खेल खेला जाता है। रंग-बीरंगे परिधान विषयानुसार पहनाए जाते हैं, व उनका श्रृंगार किया जाता है।



छड़ पुतल – इसमें पुतल को लकड़ी की छड़ द्वारा जोड़ा जाता है फिर छड़ के माध्यम से प्रदर्शन कराया जाता है।



छाया पुतल – इसमें पुतल को न दर्शाकर उसकी छाया को दर्शाया जाता है व छाया के माध्यम से ही प्रदर्शन किया जाता है।



दस्ताना पुतल – इस पुतल के अन्तर्गत पुतल हाथ के दस्ताने के रूप में बनाई जाती है व उसे पहन कर पर्दे के ऊपर से प्रदर्शित किया जाता है।



वर्तमान समय में ‘आधुनिक पुतल’ (Modern Puppet) – इसके अन्तर्गत कलाकार पुतल को हाथ में पकड़ कर या उसे धारण कर मंचन करता है। इसमें विशाल पुतल का प्रयोग भी किया जाता है। वर्तमान में डवकमतद च्चचमज पूरे विश्व में अपना उच्च स्थान प्राप्त किये हुए है।



लेखक के अनुसार तकनीकी उद्देश्य –

पुतल कला रंगमंच कला का एक भाग (हिस्सा) है। इसके अन्तर्गत पात्रों को पुतल के माध्यम से दर्शाया जाता है उसी प्रकार जैसे एनिमेशन (Animation) में असली पात्रों को कम्प्यूटर (Computer) कला के द्वारा दर्शाया जाता है। अर्थात् जिस उद्देश्य की पूर्ति स्वयं मानव द्वारा नहीं की जा सकती उसे पुतल के माध्यम से दर्शाया गया अर्थात् कलाबाजियाँ करना, एक साथ कई पात्रों का संयोजन, ऐस घटनाएँ जिनमें जान व माल का नुकसान हो सकता है, इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर वर्तमान में एनिमेशन (Animation) का प्रयोग किया जाने लगा। इन कलाओं में पात्र को चिरकालीन बनाया जा सकता है।



अर्थात् हम कहे कि जिस प्रकार वर्तमान चित्रकार व मूर्तिकार लोक कला को माध्यम बनाकर नवीन व समसामयिक कला का निर्माण कर रहे हैं उसी प्रकार पुतल भी वर्तमान में एनिमेशन (Animation) कला के लिए कहीं न कहीं प्रेरणा का स्रोत तो रही ही है जो कि इस कला की गहनता को प्रदर्शित करती है।

सीमा सैनी

शोध छात्रा, राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

महाभारत में वर्णित पाप और पुण्य

सृष्टि के आदिम इतिहास से मनुष्य जाति को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिए ऋषियों ने चार सुप्रसिद्ध वेदों—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना की है। चारों वेदों के साथ ही महाभारत को भी पाँचवा वेद होने का गौरव प्राप्त हुआ है।

जिस ग्रंथ को वेद के समकक्ष सम्मान प्राप्त हो जाये तो फिर उसे अपूर्ण कैसे माना जा सकता है, क्योंकि वेद तो समस्त विद्याओं की निधि है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित इस ग्रंथ के एक लाख श्लोकों में कथा—प्रकरण के साथ—साथ ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, और राजनीतिक विषयों का समावेश किया गया है। इस महान ग्रंथ को पढ़ने के बाद कुछ भी पढ़ना या समझना शेष नहीं रहता क्योंकि :-

“यदिहास्ति न तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।”

महाभारत में मानवजीवन के सभी पहलुओं के साथ पाप—पुण्य का समुचित विवेचन किया गया है। महाभारत में धर्म तत्व की प्रधानता एवं उसमें पाप—पुण्य को अंकन करने हेतु मैंने इस लेख को अपनी लेखनी देने की कोशिश की है।

महाभारत में पाप—पुण्य की अवधारणा

महाभारत में नियति यदि है तो शुभाशुभ कर्म की परिणति है। शाप है तो कहीं न कहीं उसके मूल में प्रमाद है। और शाप है तो उसका परिमार्जन है, वह परिमार्जन मनुष्य की सोई हुई चेतना का जागरण है। पुण्यात्मा को दुःख ही दुःख है, पापात्मा को सुख ही सुख है तो यह किसी दैव्य शक्ति का अन्याय नहीं है, यह मनुष्य के भीतर रहने वाले दैवभाव—विवेक का फल है।

विवेकी पुरुष के लिए दुःख अनिवार्य है। इसका अर्थ यह नहीं है कि महाभारत में पुण्य के लिए कोई अभिप्रेरणा नहीं है, पाप के लिए अभिप्रेरणा है, अधर्म के लिए अभिप्रेरणा है या महाभारत दुःखवाद का प्रतिपादन करता है। महाभारत पापी से उसके पाप का परिणाम भोगता है — पुण्यात्मा से उसके पुण्य का परिणाम भोगता है, परन्तु यह भी पहचानता है कि काम,

क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य, इन छः आसुरी सम्पत्तियों की विशेषता है कि इनमें आशुकारित्व है, तुरन्त कुछ समय तक कुछ कर देने की, तुरन्त भभक उठने की, तुरन्त तृण की आग की तरह फैल जाने की क्षमता है। एक बार राह छूट जाय तो फिर राह दिखाने की क्षमता है।

महाभारत तितिक्षा को योग्यता की कसौटी मानता है। सुख और दुःख झेलने की क्षमता न हो तो कैसी योग्यता, कैसी शक्ति? महाभारत में वर्णित पाप-पुण्य का विस्तार पूर्वक उल्लेख इस प्रकार है :-

महाभारत में एक मनुष्य का या पाप का महावृक्ष है, क्रोध-मोह-मद का वृक्ष है, उसका नाम है - दुर्योधन, कर्ण उस वृक्ष का तना है, शकुनि शाखा, दुःशासन उसका समृद्ध पुष्प-फल, और अविवेकी राजा धृतराष्ट्र उस वृक्ष की जड़ है।

महाभारत में दूसरा पुण्य का महावृक्ष है, इसका नाम है युधिष्ठिर। अर्जुन इसका तना है, भीमसेन शाखा है, नकुल-सहदेव इसके पुष्प और फल, और इसकी जड़ हैं श्रीकृष्ण वेद (ज्ञानराशि) और ज्ञानीजन।

दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट होती है कि दुर्योधन को अधर्म का वृक्ष नहीं कहा गया है, उसमें धर्म का अभाव नहीं है, बस उसका तो धर्म ही शुद्ध नहीं है, वह अहंभाव से रंजित और लिप्त है, जबकि युधिष्ठिर का धर्म अहंकारहीन है, शुद्ध है, किसी प्रकार का कोई आवरण नहीं है। उनके विरोधी भी उनकी सत्यनिष्ठा में कभी सन्देह नहीं करते। दूसरी बात यह स्पष्ट होती है कि दुर्योधन रूपी अधर्म वृक्ष की जड़ बहुत कमजोर है तथा धर्म रूपी वृक्ष की जड़ साक्षात् श्रीकृष्ण हैं।

भीष्म-द्रौण द्रौपदी को जुए के दांव पर चढ़ाये जाने पर चुप रहते हैं, लेकिन विकर्ण कहता है - यह व्यवस्था सनातन व्यवस्था नहीं है, या पुण्य नहीं है। इस प्रकार जीवन की सत्यता ही महाभारत के महापुण्य की एक कसौटी है। धर्म मृत्यु नहीं है क्योंकि वह पुण्य से निरन्तर शोधित होता रहता है, ऋत से, अमृत से निरन्तर जँचता रहता है और वह सत्य से या पुण्य से पाप पर विजय प्राप्त की जाती है, पुण्य ऋत में रहता है, और अमृत पुण्य में। इसी शरीर में मृत्यु है, इसी में अमृत है। यही पुण्य की सही पहचान है। सत्य से बढ़कर कोई पुण्य नहीं और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है सत्य ही पुण्य की आधारशिला है। अतः सत्य का लोप न करें।

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को स्वयं उपदेश न देकर आचार्य भीष्म से दिलवाते हैं तब भीष्म श्रीकृष्ण से कहते हैं कि आप क्यों नहीं उपदेश देते। तब श्रीकृष्ण भीष्म से कहते हैं चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं मैं तो यश और श्रेय का मूल हूँ, मुझसे ही सभी भाव-सद् हो या असद् अभिनिर्वृत होते हैं, मैं तुममें अपनी बुद्धि अर्पित करता हूँ जो लोक में फैले और युधिष्ठिर के प्रश्न में ऊपर उठकर कीर्ति प्राप्त करे। तब भीष्म ने युधिष्ठिर को राजधर्म, समस्त वर्णों, आश्रम धर्मों, सामान्य धर्म, विशेष धर्म, तथा मोक्ष धर्म का उपदेश दिया।

महाभारत का यही सत्य अमृत है, यह कभी मरता नहीं, यह हमेशा जीवित रहता है, यह परीक्षित होता है, यह संशित होता है, यह विलष्ट है, पर मरता नहीं यह सत्य रूप है, गति रूप है, स्थित रूप नहीं है, यह चरिष्णु है क्योंकि "कृतः सम्पद्यते चरन्" क्योंकि कृतयुग या सत्ययुग तो चलते रहने वाले का नाम है। इस सत्य का विरोध असत्य से नहीं, अनृत से है, क्योंकि सत्य का अभाव कहीं है ही नहीं, असत्य की अपने आप में कोई सत्ता ही नहीं है।

असत्य सापेक्ष सत्ता है। सत्य स्थित हो जाए, सच्चाई जड़ हो जाए या जीवन की गति से विलग हो जाए, धार से किनारे हो जाय तो असत्य को अवसर मिल जाता है। सम्पूर्ण विश्व और सम्पूर्ण विश्व की चिति सत्य है और अनृत अन्धकार है, अधर्म है, दुःख है, निरय है, अगति है।

महाभारत में युधिष्ठिर से सबसे बड़ा पाप तो धूत हुआ। वह सब विवेक भूल गये, भाइयों और पत्नी तक को दांव पर रख दिया, यह जानते हुए भी कि द्रौपदी उनकी सम्पत्ति नहीं है।

द्रौपदी पांच की पत्नी होकर भी अरक्षित है, सभा में उसका घर्षण होता है। वह अपमान से जलती रहती है यह महाभारत में सबसे बड़ा पाप है। दूसरा पाप जब हुआ तब युधिष्ठिर ने "अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो" कह कर अपनी सत्यवादिता सुनायी। कुन्ती से पाप हुआ कि कर्ण को उसने एक बाल-सुलभ कुतूहल में जन्म देकर पानी में फेंक दिया और किसी को भी नहीं बतलाया। तथा कर्ण जैसे तेजस्वी वीर से दो-दो प्रमाद हुए, डर के मारे परशुराम से अस्त्र विद्या सीखने गये और झूठ बोल गये कि मैं ब्राह्मण हूँ तब परशुराम ने शाप दिया कि तुम यह विद्या कठिन अवसर पर भूल जाओगे और दूसरा पाप यह हुआ कि तीरन्दाजी के अभ्यास के नशे में उन्होंने एक ब्राह्मण की होम-धेनु के बछड़े को मार दिया, फिर दक्षिणा दे कर ब्राह्मण को उन्होंने सन्तुष्ट करना चाहा और ब्राह्मण इससे और कुपित हुआ कि यह कैसा शूर-वीर है जो धन से पुण्य खरीदना चाहता है। तब उसने शाप दिया कि तुम्हारे रथ का पहिया धंस जायेगा, तभी तुम मारे जाओगे।

कर्ण ने ईर्ष्या तथा अपमान के अभिमान में तथा दान के अहंकार में विवेक एक बार खोया तो खो ही दिया। पहिया धंस जाने पर कर्ण ने अर्जुन से कहा रुक जाओ, बाण मत चलाओ, रथ से उतरे हुए यौद्धा पर रथी बाण नहीं चलाते। अर्जुन रुका तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया - तुम्हारी धर्म बुद्धि तब कहां थी, जब द्रौपदी का चीर हरण हुआ, अभिमन्यु का वध हुआ, भीम को जहर पिलाया गया, पांडवों को जलाने के लिए लाक्षागृह बनाया गया, कपट से जुए में युधिष्ठिर को हराया गया, वन में उनके ऊपर आक्रमण की रचना की गयी? कर्ण कुछ भी नहीं बोल सका क्योंकि उसका झूठ उसे मार देता है, आदि अनेक प्रकार से पाप-पुण्य महाभारत में प्रचलित हैं।

संदर्भ सूची

1. महाभारत कोश, डॉ. राम कुमार राय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2006
2. भगवद्गीता , शांकरभाष्य साहित्य एकादश टीका, 1-3, भाग दिल्ली, प्रकाशन, 2006
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, अभिषेक प्रकाशन, जयपुर 2007
4. महाभारत में संक्रामिकता, डॉ. नन्द किशोर गौतम निर्मल, निर्मल प्रकाशन, जयपुर, 1986
5. महाभारत में काव्यार्थ, विद्यानिवास मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
6. धृतराष्ट्र का जीवन-दर्शन, डॉ. प्रज्ञा अथड्या, हंसा प्रकाशन, जयपुर 2010
7. महाभारत में धर्म, डॉ. शकुन्तला रानी तिवारी, पाटल प्रकाशन, आगरा, 1973



डॉ. नीरू कल्ला
एम.ए. पीएच.डी. (चित्रकला)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

ऐतिहासिक काल की चित्रकला में वाद्य यंत्रों की उपयोगिता

संगीत एवम् संगीत वाद्य सार्वभौमिक हैं। मानव की संगीतात्मक गतिविधियाँ आदिम काल से ही उसके साथ हैं।

संगीत तथा संगीत वाद्यों का उद्गम विशेष अवसर, गैर सांगीतिक उपकरणों और क्रियाकलापों से ही हुआ है जैसे संभवतः आखेटक को शिकार संबन्धी धनुष और बाण के कोण द्वारा उत्पन्न टंकार से तंत्र वाद्य के निर्माण खोखले बाँस से सुषिर वाद्य, लौकी या कद्दू को सुखाकर उसके तुम्बे के अन्दर छोटे-छोटे कंकड़ भर उसे लकड़ी की मूठ से बन्द कर हिलाते हुए ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्य, आदि जिन्हे आज हम संगीत वाद्यों के नाम से जानते हैं और उनके प्रयोगानुसार उनको विभिन्न नामों से पुकारते हैं उनके प्रायः दुहरे और बहुमुखी उपयोग भी होते हैं। अतः ऐतिहासिक काल की चित्रकला के निम्न विवरण तत्कालीन वाद्यों की उपयोगिता को सिद्ध करते हैं।¹

* प्रागैतिहासिक शिला-चित्रों के आधार पर यह धारण आखेटिक क्रियाकलापों, उत्साहवर्धन स्वरूप व सफलता पाने पर उत्सवात्मक नृत्यों में प्रकृत होने पर, आन्नद उल्लास की सहज अभिव्यक्ति हेतु करता था।

प्रागैतिहासिक काल में जो संगीतवाद्यों, चित्रों एवम् मूर्तिकला की त्रिवेणी का अद्भूत जन्म हुआ, वह युगो-युगों तक अबाध गति से मानव जीवन में प्रवाहित होती रही। तत्कालीन रियासतें, संगीत साधकों और प्रणेताओं ने संगीत वाद्यों का आकर्षक प्रयोग किया। बाहर से भी कई संगीतज्ञ यहाँ आकर बस गए। महान संतो ने भी इस उर्वश भूमि में जन्म लेकर संगीत के विकास में योग दिया। रामभक्ति, कृष्णभक्ति, बौद्ध धर्म का प्रचार, भक्ति के निर्गुण एवम् सूफी दोनों प्रकार के धार्मिक कार्यों में संगीत की अनिवार्यता थी। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त तक प्रत्येक संस्कार के समय उत्सव, त्यौहार, समारोह, विवाह, भक्ति, आराधना आदि सभी में संगीत वाद्यों का उपयोग अवश्यभावी हो गया था।

भारत की चित्रकला संगीत एवम् नृत्य की समृद्ध कला परम्परा का दिग्दर्शन कराती है। मुगल काल, राजस्थानी वैभव एवम् पहाड़ी राजवंशों ने संगीत में विशेष रुचि ली एवम् पर्व,

त्यौहारों व सामाजिक दरबारी आयोजनों में, वाद्यों का उपयोग राजा के तत्वावधान में और प्रायः महलों के प्रमाण में होते थे। जनता को उत्सवों की सूचना भेरी, नगाड़ों, तुरही तथा शंख ध्वनी द्वारा दी जाती थी।^१

संगीत सहज रूप से दृश्यकलाओं में प्रागैतिहासिक काल से ही मुखरित हुआ इसके सुंदर साक्ष्य बनकर तत्कालीन चित्रों में अवतरित होते हैं।

भारत की ऐतिहासिक काल की चित्रकला में अनेकानेक विषयों के आधार पर वाद्य यंत्रों की उपयोगिता पर चित्रण प्राप्त होता है, जिनका विवरण निम्नलिखित है।

1. आखेट – आखेट के चित्रों में संगीतवाद्यों का उपयोग इस चित्र से स्पष्ट होता है— 'महाराजा अरिसिंह बाघ का शिकार करते हुए कोटा शैली—सन् 1800 ई. में निर्मित इस चित्र में बायीं ओर निचले भाग में दो अन्य आखेटक मचान पर बैठकर बंदूक चला रहे हैं, कुछ पेड़ों के पत्तों में छुपकर भी बैठे हैं। चित्र के मध्य भाग में दो बाघ हैं, जिन्हें गोली लगी है। चित्र के बायीं ओर वाद्य यंत्र बजाते हुए, ध्वज लिए व्यक्ति खड़े जो शिकार को उत्सुकता से देख रहे हैं। एक व्यक्ति के हाथ में 'तड़ातड़' (झल्लरी नुमा वाद्य) है व दूसरे के हाथ में ढोल है जिसे बजाकर शिकार में सहायता कर रहे हैं।^२ (चित्र-1)



महाराजा अरिसिंह बाघ का शिकार करते हुए; कोटा शैली, सन् 1800 ई.

2. राजदरबारी चित्रण – ऐतिहासिक विषयों में राजदरबारी चित्रण में वीणा, तम्बूरा, तानपुरा, तबला, मृदंग, नगाड़े, तूती, तूरही, सितारनुमा वीणा, सरस्वती वीणा, मंजीरे, रबाबी वीणा आदि वाद्यों का उपयोग द्रष्टव्य है। मुगलकाल में नृत्य एवम् संगीत सभा का आयोजन प्रस्तुत करते हुए चित्र में शाही वाद्यों को बजाते वादकों का अंकन प्राप्त होता है, जो वीणा तुरही, गज से बजाने वाली वीणा, ढफली आदि वाद्यों को बजाते हुए चित्रित किए गए हैं। सम्राटों के मनोरंजन हेतु ऐसी संगीत सभाएँ हुआ करती थी, जिनमें अनुभवी वाद्यवादकों को आमन्त्रित किया जाता था।

3. सामाजिक विषयः— सामाजिक विषयों के अन्तर्गत एकांत में तानपुरा लिए चिन्तन करती हुई नायिका या नायक का भी चित्रण हुआ है जो तत्कालीन राजघराने की संस्कृति को दर्शाता है।

4. दरबारी चित्र – नागौर के महाराजा बख्त सिंह संगीत एवम् नृत्य का आनन्द लेते हुए, सन् 1740–45 ई. के मध्य चित्रित इस चित्र में महाराजा दरबारी नृत्यांगनाओं व वाद्य वादिकाओं की प्रस्तुतियाँ का आनन्द लेते हुए उपवन के समीप भवन में आसित हैं। राजा के समक्ष तीन वाद्य वादिकाएँ क्रमशः तम्बूरा, सांरगी एवम् मृदंग का वादन कर रही हैं। राजाओं के संगीतप्रेम ने ही वाद्यों की उपयोगिता को बढ़ाया दिया। इस काल में सांरगी का वादन प्रचलित था।⁴

5. रनिवास के चित्र – रनिवास में संगीत का आनन्द लेती रानियाँ-चित्रकारों ने सेविकाओं सहित रानियों का, अन्तःपुर की स्त्रियों का रनिवास में विश्राम करते हुए दृश्यों में संगीत वादम में वाद्यों के उपयोग का सफलता से चित्रण किया है।

सत्रहवीं शताब्दी के मुगल शैली के इस चित्र में नूरजहाँ के दरबार में गायिकाएँ, वादिकाएँ व नृत्यांगनाएँ अपनी सफल प्रस्तुति देते हुए अंकित हैं। चित्र के बाईं ओर संगीतज्ञों का समूह खड़ा है जिसमें दो महिलाएँ ढफली बजा रही हैं और अन्य महिला मुख वाद्य शहनाई बजाते हुए दिखाई दे रही हैं, उनकी धन पर एक नृत्यांगना मोहक मुद्रा में नृत्य करती हुई सभी का मनोरंजन कर रही है।

6. मनोरंजन– मनोरंजन के साथ रानियों के उत्साहवर्धन हेतु भी वाद्यों का उपयोग होता था। 'आशापूर्ण नायिका' किशनगढ़ शैली का चित्र, सन् 1750 ई. में निर्मित, में नायिका के शीघ्र आने की भी आशा नहीं है।

'संगीत सुनते हुए निद्रा की मुद्रा में राजकुमारी' किशनगढ़ शैली सन् 1780–90 ई. में निर्मित इस चित्र में उस समय परिचारिकाओं द्वारा राजकुमारियों को कहानी सुनाकर, वाद्य वादन करके, गीत गाकर, व लोरी सुनाकर उनका मनोरंजन करने का सफल चित्रण द्रष्टव्य है। इस दृश्य में महिला वादक क्रमशः ढफली एवम् मृदंग बजा रही हैं। मुगल काल में भी इस विषय पर अधिक चित्रण हुआ है, जिसका प्रभाव राजस्थानी शैली पर पड़ा।⁵

7. आमोद-प्रमोद– मुगल काल के उत्तरार्द्ध में रानियों के भी आमोद-प्रमोद करते दृश्य अंकित हुए हैं। तब रानी अपनी सखियों के साथ उपवन में आमोद-प्रमोद हेतु जाया करती थी। इसी से संबंधित यह चित्र प्रस्तुत है "चट्टानी फिसल पट्टी पर महिलाएँ" लखनऊ, सन् 1760 ई. में रानी के आमोद यात्रा के दौरान का दृश्य अंकन किया गया है। इसमें चौदह महिलाओं का अंकन है। कुछ घास के मैदान में काली चट्टान पर फिसल पट्टी की चढ़ाई पर चढ़कर कर व फिसलकर अपना मनोरंजन कर रही हैं। दृश्य के ऊपर की ओर बाईं तरफ रानी अपनी सेविकाओं के साथ हुक्का पीते हुए सबको देखकर आनन्दित हो रही हैं।

मनोरंजन एवम् आमोद प्रमोद के दृश्यों में ढोल, मृदंग, तुरही, का उपयोगात्मक अंकन बाहुल्य प्राप्त होता है।⁶

8. खेल – कांगड़ा शैली में कृष्ण भक्ति के विषयों का अंकन बाहुल्य प्राप्त होता है। इसी शैली के एक लघुचित्र में ढोल (बम्बनुमा) और तुरही (बिगुलनुमा) वाद्यों उपयोगात्मक चित्रण प्राप्त हुआ है।⁷

चित्र-2

भारतीय राजवंशों में सामूहिक मनोरंजन में संगीत, नौका विहार, उद्यान विहार, विशेष उत्सव आदि के अतिरिक्त खेल व घुड़सवारी भी प्रसिद्ध थी, राजाओं के समय राजसी खेल हुआ करते थे उनमें पोलो मुख्य था। पोलो को राजकुँवर घोड़े या हाथी पर सवार होकर खेला करते थे। जिसका उदाहरण पोलो खेलते युवराज सलीम, मुगल काल, सन् 1602 ई. है। **(चित्र-2)** तत्कालीन मनोरंजन का अहम खेल था। इसमें भी खिलाडी के उत्साह बढ़ाने हेतु नगाड़ों का प्रयोग होता था।

9. उत्सव एवं त्यौहार– उत्सव एवम् पर्व के आयोजन का लघुचित्रों में वाद्याकन उनके प्रयोग व उपयोगिता पर सफल प्रकाश डालता है। उत्सव और त्यौहारों के अवसर पर गीत-संगीत नृत्य का आयोजन भारतीय सामाजिक परम्परा है। “गणगौर त्यौहार के जुलूस में महाराजा अजीत ली सन् 1722 ई. में निर्मित अत्याधिक मनोरम उदाहरण है।⁸

विषय – रोमानी जैसे रोचक विषय पर आधारित चित्रों में भी वाद्यों की ई देती है जिसका उदाहरण किशनगढ़ शैली का एक लघु चित्र है जिसमें व मृदंग का वादन कर रही है। पृष्ठभूमि में महल दिखाई दे रहा है।

एवं पौराणिक चित्रण – धार्मिक चित्रण के अन्तर्गत पौराणिक चित्रण में उपयोगात्मक अंकन प्राप्त होता है जिसमें मुख्यतः मजीरे, मृदंग, शहनाई, व झांझ ए वादक चित्रित है।⁹

रागा – संगीत और चित्रकला के समन्वयक रागमाला चित्रों का अंकन मध प्राप्त होता है। रागमाला चित्र परम्परा शुद्ध रूप से भारतीय प्रयास है। संगीत को चित्रित करने की कल्पना रागमाला में की गई जिसमें प्रतीक रूप में नायक या नायिका के साथ स्वर वाद्य होते हैं समय होता है वातावरण का प्रभाव विशिष्ट रूप से होता है। पाल, मुगल व राजस्थानी शैली में रागमाला श्रृंखला में वाद्यों का उपयोगात्मक चित्रण द्रष्टव्य है।

लघुचित्र ‘रागश्री’ बीजापुर सन् 1590-1600 ई. ‘दीपक राग’ आमेर सन् 1709 ई. में ‘दीपक राग’ संबद्ध है दीपों अर्थात् उजालों का त्यौहार है एवं उदयपुर की रागमाला श्रृंखला में ‘राग सांरग’ नामक चित्र (सन् 1628ई.) में नायक नायिका वीणा का वादन सुनते हुए सिंहासन पर बैठे हैं, इसके प्रमुख उदाहरण हैं।¹⁰



शैली खेलते युवराज सलीम, मुगल काल, सन् 1602 ई.

अतः भारतीय ऐतिहासिक चित्रकला में आरम्भ से ही संगीतवाद्यों की उपयोगिता परिलक्षित होती है। कलाकार ने विभिन्न विषयों के अनुरूप तत्कालीन प्रचलित विभिन्न वाद्यों का अंकन अपनी रचना में किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. धर्मावती श्रीवास्तव, प्राचीन भारत में संगीत, वाराणसी, 1967
2. आचार्य बृहस्पति व सुमित्रा कुमारी, संगीत चिंतामणी, हाथरस, 1966
3. गोपाल मधुकर, भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1989
4. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, राजस्थान की लघु चित्र शैलियाँ, जयपुर, 1972
5. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवम् मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2002
6. सुषमा कुलश्रेष्ठ, कालीदास साहित्य एवं वादन कला, नई दिल्ली, 1986
7. किशोरी लाल वैद्य ओमचन्द्र हाण्डा, पहाड़ी चित्रकला, दिल्ली, 1969
8. असित कुमार हालदार, भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1958
9. ए.एल.श्रीवास्तव, भारतीय कला, इलाहाबाद, 2002
10. सुमहेन्द्र शर्मा, राजस्थानी रागमाला चित्र परम्परा, जयपुर, 1990



डॉ. ज्योत्स्ना वशिष्ठ

सह-आचार्य संस्कृत, संस्कृत विभाग
राज.वि.वि., जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

गीता में प्रतिपादित दर्शन योग का विश्व रूप

भगवद्गीता वैदिक ज्ञान का सार है और वैदिक साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। भगवद्गीता के वक्ता भगवान श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि भगवद्गीता की यह योगपद्धति सर्वप्रथम सूर्यदेव को बतायी गयी, सूर्यदेव ने इसे मनु को बताया और मनु ने इसे इक्ष्वाकु को कहा। इस प्रकार गुरु-परम्परा द्वारा यह योगपद्धति एक वक्ता से दूसरे वक्ता तक पहुँचती रही। किन्तु कालान्तर में यह योगपद्धति लुप्त हो गयी, अतः भगवान कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में अर्जुन को पुनः योगपद्धति बता रहे हैं।

कृष्ण ने अर्जुन को अपनी अनन्त विभूतियों एवं योगशक्तियों से परिचित कराया था। समस्त भूतों की उत्पत्ति एवं प्रलय का मूल कारण स्वयं को ही बताया। समस्त ब्रह्माण्ड को अपने एक अंश में धारण किये जाने का रहस्य भी प्रकट किया। भगवान श्रीकृष्ण को अजन्मा, अनादि, सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिशाली स्वरूप को उनके विभिन्न विभूतियों में दर्शित होने की बात सुनकर अर्जुन के मन में उनके विश्वरूप दर्शन की इच्छा जाग्रत हुई। जिसके एक अंश में समस्त ब्रह्माण्ड स्थित है। उसका प्रत्यक्ष रूप क्या है। अतः अर्जुन ने भगवान के अविनाशी स्वरूप दर्शन की इच्छा को भगवान ने स्वीकार किया। गीता के ग्यारहवें अध्याय में कृष्ण के विराट स्वरूप का वर्णन किया गया है। अर्जुन कहते हैं— हे पुरुषोत्तम! यद्यपि मैं अपने समक्ष आपके द्वारा वर्णित आपके वास्तविक रूप को देख रहा हूँ, किन्तु मैं यह देखने का इच्छुक हूँ कि आप इस दृश्य जगत् में किस प्रकार प्रविष्ट हुए हैं। मैं आपके उसी स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ। हे योगेश्वर! यदि आप सोचते हैं कि मैं आपके विश्वरूप को देखने में समर्थ हो सकता हूँ, तो आप कृपा करके मुझे अपना असीम विश्वरूप दिखलाइये। जिस प्रकार प्रकृति (माया) प्रकट-अप्रकट है, उसी तरह कृष्ण का यह विश्वरूप भी प्रकट तथा अप्रकट होता रहता है। भगवान ने अर्जुन से उस विश्वरूप को देखने को कहा जिसे पहले न तो किसी ने कभी देखा, न सुना परन्तु कृष्ण ने पहले इस रूप को देख सकने में समर्थ दिव्य चक्षुओं को प्रदान करने की बात कही। कृष्ण ने अपने दिव्य ऐश्वर्य एवं योगशक्ति को देखने के लिए अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर समर्थ बनाया।

अर्जुन ने भगवान को जो विराट रूप देखा, उसका यथातथ्य वर्णन किया है। अर्जुन ने कहा— हे कृष्ण आप अव्यय तथा पुराण पुरुष हैं। आप आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं। आपका यश अनन्त है। आपकी असंख्या भुजाएँ हैं, सूर्य और चन्द्रमा आपकी आंखें हैं। अर्जुन ने श्रीकृष्ण के विश्वरूप में अत्यन्त उग्र वाले स्वरूप का दर्शन किया, अतः अन्त में उसने यह जिज्ञासा प्रकट की कि इतने उग्र रूप में आप कौन हैं तथा आपका प्रयोजन अर्थात् प्रवृत्ति क्या है?

कृष्ण ने पुनः अर्जुन के समक्ष स्वयं को 'काल' की संज्ञा दी है। कृष्ण ने कहा— हे पार्थ! सामने दृश्यमान तुम्हारे सम्बन्धी रिश्तेदार ये सब मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। तुम तो युद्ध में केवल निमित्तमात्र हो। अतः तुम इनसे लड़कर यश अर्जित करो तथा शत्रुता पर विजय प्राप्त कर राज्य का सुख भोगो।

कठोपनिषद् में कहा है—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।

मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥ (1/2/25)

अर्थात् ब्राह्मण—क्षत्रियादि समस्त प्राणियों के और स्वयं मृत्यु के संहारक अथवा आश्रयदाता परमेश्वर को कोई मनुष्य इन अनित्य मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा कैसे जान सकता है। भगवान कृष्ण ने अपने विश्वरूप की महिमा का वर्णन अर्जुन के समक्ष किया है। कृष्ण ने अपने चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन को अत्यन्त दुर्लभ बताया है। इस स्वरूप का दर्शन भक्त की कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति से ही संभव है।

अनन्य भक्ति के लिए श्रीकृष्ण ने पांच साधन बताए हैं। इनमें प्रथम तीन साधन ईश्वर के लिए ही कर्म करना, उनके ही परायण होना तथा उनका ही भक्त होना है। अन्य दो साधन हैं—सर्वथा आसक्ति रहित होना तथा प्राणिमात्र से वैर भाव न रखना है। ये समस्त साधन दृश्यमान जगत् अर्थात् माया से विरक्ति हेतु बतलाये हैं। ये सम्बन्ध ही मनुष्य के लिए बन्धन स्वरूप हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है— जिसमें भगवान के लिए अविचल भक्तिभाव होता है और जिसका मार्गदर्शन गुरु करता है। जिस व्यक्ति में ईश्वर के प्रति अविचल श्रद्धा होती है, वह भगवान के दर्शन प्रकट रूप में कर सकता है।

'एकोऽपि सन्बहुधा योऽवभाति' अर्थात् कृष्ण एक है, किन्तु वे अनन्तरूपों तथा अंश अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं। ब्रह्मसंहिता में वर्णन मिलता है— भगवान कृष्ण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं उनका कोई आदि नहीं है, क्योंकि वे प्रत्येक वस्तु के आदि हैं। वे समस्त कारणों के कारण हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं— 'अहम् आदिर्हि देवानाम्' अर्थात् मैं समस्त देवताओं का उद्गम हूँ। परमात्मा विश्वरूप है तथा अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी है। उसके दो रूप हैं— एक तो विराट रूप तथा दूसरा सौम्य मनुष्य का। ईश्वर को प्रत्यक्षतः ज्ञान की आंखों से देखा जा सकता है।

भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

‘अहम् सर्वस्य प्रभवो, मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।’ अर्थात् मैं (अव्यय पुरुष) सम्पूर्ण विश्व का उत्पत्ति स्थान हूँ। मुझसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, मैं ही समस्त जीवों का आदि, मध्य तथा अन्त हूँ। वेदान्त सूत्र में कहा है— ‘वैषम्यनैघृण्ये न’ (2.1.34) वे इस जगत् के द्वन्द्वों में स्थित नहीं हैं। वे इन द्वन्द्वों से अतीत हैं। न ही इस जगत् की सृष्टि तथा प्रलय में ही उनकी आसक्ति रहती है। वे सतत् दिव्य आनन्दमय आध्यात्मिक कार्यों में रत रहते हैं। समस्त भौतिक कार्य उनकी विभिन्न शक्तियों द्वारा सम्पन्न होते रहते हैं।

इस प्रकार अपनी विभूतियों का वर्णन करके श्रीकृष्ण अर्जुन को अपने विश्वरूप का दर्शन कराकर कर्म के उस दिव्य आदेश की ओर ले जाना चाहते हैं, जिसको देखने की प्रबल इच्छा अर्जुन में उत्पन्न हो गई थी।

गीता में ज्ञान, कर्म तथा भक्ति की त्रिवेणी अत्यन्त सहज रूप में समस्त प्राणियों के लिए सुलभ है। आरम्भ ज्ञान ‘नानुशोचन्ति’ मध्य कर्म ‘न मे प्रणश्यति’ तथा अन्त ‘मा शुचः’ अर्थात् शोकरहित होने में है। अहं परिवर्तन का अदभुत संकेत एवं उसका फलित तथा रचयिता का द्वैत सिद्धान्त प्राणी में अतीव उत्साह का संचार कर देता है। ‘न मे भक्त प्रणश्यति’ अर्थात् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता है। वह स्थायी शान्ति को प्राप्त करता है।

भगवान कृष्ण ने अन्तिम अठारहवें अध्याय के 66वें श्लोक के माध्यम से साधक का अन्तिम पुरुषार्थ ‘शरणागति’ बताते हुए अपने कथन को विराम लगा दिया है। अतः इस पुरुषार्थ के आगे अन्य कुछ भी शेष नहीं रह जाता। उन्होंने गीता के सार रूप में यह अन्तिम उपदेश किया। अतः भगवद्गीता का मर्म भगवद्गीता में ही व्यक्त है। इसमें ही गीता-धर्म के कथन का प्रयोजन भी बताया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. एवमेतद्यथा त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमेश्वरं पुरुषोत्तम ॥ गीता 11/3
2. मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ गीता 11/4
3. न तु मां शक्यसे द्रष्टुमननैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ गीता 11/8
4. त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमो मे ॥ गीता 11/18
5. अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्त बाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ गीता 11/19

6. आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववरं प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ गीता 11/31
7. कालोऽस्मि लोकक्षय कुटप्रवृद्धो लोकासमाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
त्रच्छेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे ये अवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ गीता 11/32
8. तस्मात्वमुत्तिष्ठ यशो लभास्व जित्वाशत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैतैः निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव्य सव्यसाचिन् ॥ गीता 11/33
9. ममा प्रन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शिमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्धेन न दृष्टपूर्वम् ॥ गीता 11/47
10. भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ गीता 11/54
11. यस्य देवो परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ श्वेताश्वतरउपनिषद्
12. ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ।
अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥ ब्रह्मसंहिता 5/1
13. द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं व्यवेकेन दिशश्च सर्वाः ॥ गीता 11/20
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ गीता 10/20
14. आत्मारामस्य तस्यास्ति प्रकृत्या न समागमः । ब्रह्मसंहिता 5/6
15. सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ गीता 18/66



प्रियंका माहेश्वरी

शोध छात्रा, सिंधानिया विश्वविद्यालय

झुंझुनू, राजस्थान

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

श्री भूर सिंह शेखावत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

19 वीं शती के अन्त तक राजस्थान की परम्परागत कला का गौरव विलुप्त होने के कगार पर था और यूरोपियन शैली से प्रभावित कम्पनी शैली की रचनाओं का प्रसार हो रहा था। कलाकार दिग्भ्रमित से कला सृजन के क्षेत्र में दिशाएं लताश रहे थे। इसी समय राजस्थान के आर्ट्स स्कूल में बंगाल स्कूल परम्परा के चित्रकार 'शैलेन्द्र नाथ डे' का आगमन हुआ ये राजस्थानी कला के पुनर्जागरण के अग्रणी कलाकार माने जाते थे, इन्हीं के साथ-साथ तत्कालीन चित्रकार भूर सिंह शेखावत, मोनी सान्याल, देवकी नन्दन शर्मा, रामगोपाल विजयवर्गीय, गोवर्धनलाल जोशी, कृपालसिंह शेखावत, रामनिवास वर्मा, भवानीचरण गुई, द्वारकाप्रसाद शर्मा, रत्नाकरविनायक साखलकर आदि कलाकार अपनी विभिन्न मौलिकताओं के साथ चित्रण से जुड़े, किन्तु इनमें अधिकांश कलाकार बंगाल स्कूल की वाश पद्धति से ही प्रभावित थे। 'वाश-पद्धति' में आकारीकरण की प्रस्तुति भले ही अनुपातीय और यथार्थ के निकट होती थी किन्तु उसका रुपायन अजन्ता शैली के परम्परागत आदर्शों सहित लयात्मक तथा रेखा प्रधान होता था और यह शैली भारतीय परम्परागत मूल्यों को ही रुपायित करती थी। यों भी इस पद्धति के तत्कालीन चितरे श्री रामगोपाल विजयवर्गीय के चित्र भारतीय काव्य पर आधारित थे अतः वे 'लिरिकल' भी अधिक हैं। इन्हीं दिनों बीकानेर के धोंधलिया ग्राम के मध्यमवर्गीय कुल में जन्मे श्री भूर सिंह शेखावत के चित्रण ने राजस्थान के आधुनिक कला परिदृश्य में अधिकांशतः जलरंगों में राजस्थान के सामान्य जन-जीवन को यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ चित्रित किया। इनके इस चित्रण से राजस्थान के चित्र जगत में चित्रण की यथार्थवादी सशक्त छवि प्रतिष्ठित हुई।

श्री भूरसिंह शेखावत का जन्म, 8 फरवरी 1914 में, एक राजपूत मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पिलानी में हुई। इनकी चित्रकला प्रतिभा से प्रभावित होकर 'बिड़ला' द्वारा कला के विशेष अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की गई तथा वे कला की उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स भेज दिये गये। यहाँ से उन्होंने ललित कला का पाँच वर्षीय डिप्लोमा अध्ययन सम्पन्न किया। मुम्बई निवास के बाद उन्होंने अपने सृजन के लिए पिलानी ही चुना और वे यहीं 'बिड़ला-स्कूल' में कला अध्यापक हो गये। 1934 ई. से वे जीवन पर्यन्त यहीं रहे।

“भूर सिंह शेखावत राजस्थान के प्रथम चित्रकार थे जिन्होंने अपने यथार्थवादी चित्रों में राजस्थान के जनजीवन की दैनन्दिन गतिविधियों को अपनी कला में अत्यन्त सादगी के साथ प्रमुखता दी, अब से पचास वर्ष पूर्व, उन्होंने यथार्थ चित्रण के सृजन की जो अलख जगाई थी उसका महत्व आज भी ताजा है।”¹

श्री भूर सिंह शेखावत ने अपने पिलानी के कार्यकाल में एक ‘आर्ट-क्लब’ की स्थापना की, इनके इस क्लब में तत्कालीन युवा चित्रकार श्री कृपाल सिंह शेखावत, कुंवर संग्राम सिंह, श्री रामनिवास वर्मा, श्री गंगा प्रसाद शारदा, श्री केशव देव, श्री आर.डी. पारीक तथा श्री नाथूराम वर्मा जैसे कलाकारों ने इनके संसर्ग में अपना सृजन किया।

श्री भूर सिंह जी विचारधारा से बापू के अनुयायी थे तथा इन्होंने महात्मा गाँधी, श्री वल्लभ-भाई पटेल, जवाहर लाल नेहरू, आसफअली, जमनालाल बजाज, बलदेव प्रसाद बजाज, सी.एँ. एन्डयूज, माउन्ट बेटन, डॉ. राधाकृष्णन और श्री बिड़ला जी के ‘यथार्थवादी-पोट्रेट’ चित्रित किए। ‘व्यक्ति चित्रण’ करना तो श्री भूर सिंह शेखावत जी के लिए क्षणों का काम था।”²

महात्मा गाँधी से प्रभावित होने के कारण श्री भूर सिंह जी का दैनिक जीवन बहुत सादा और सरल था। 1939 में उन्हें एक माह तक बापू के साथ रहने का अवसर भी प्राप्त हुआ। इन दिनों बापू की दिनचर्या के उन्होंने अनेक रेखांकन-यथार्थवादी शैली में चित्रित किये। ये रेखांकन अभी भी श्री बिड़ला के संकलन में संकलित हैं। पश्चिम के चित्रकार ‘ओमेरदामिया’ की तरह श्री शेखावत जी की रुचि भी अपने परिवेश के यथार्थ पात्रों को चित्रित करने की थी। उन्होंने राजस्थान के ग्रामीण जीवन को जल-रंगों में ‘टैम्परा’ स्पर्श के साथ ‘यथार्थवादी-शैली’ में जीवन्त किया है। उनके चित्र भावनाओं के परिधान नहीं है अपितु अपने दृश्यजगत की यथार्थ प्रस्तुतियाँ हैं। इनका कथन था “हमारे चित्रकारों ने कल्पनालोक को चित्रण के झरोकों से झाँक-झाँक कर काफी देखा है अब कुछ समाज का भी सहवास उन्हें करना चाहिए।”

श्री भूर सिंह शेखावत के चित्र उनके वर्तमान के ग्रामीण जीवन की यथार्थ प्रस्तुतियाँ हैं तथा अधिकांश चित्र उन्होंने यथार्थवादी पश्चिमी दृष्टिकोण से “मॉडल” को सामने बिठाकर चित्रित किए हैं। ये चित्र पारदर्शी और अपारदर्शी जलरंगों में तूलिका के कोमल स्पर्शों के साथ यथार्थ अध्ययन है। उन्होंने यथार्थवादी पद्धति में तैल रंगों में भी “पैच-पद्धति” में भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। इनके चित्रों में छाया-प्रकाश का भी यथार्थवादी प्रयोग है। इनके इस तरह के यथार्थवादी दृष्टिकोण के चित्रों में पारदर्शी-अपारदर्शी जल रंगों में चित्रित यथार्थवादी चित्रों की लम्बी श्रृंखला है। इन चित्रों में “जीवन अध्ययन” तथा जीवन अध्ययन के साथ पात्रों को तथा यथार्थ-परिवेश को भी उन्होंने ‘यथार्थ’ दृष्टि से अध्ययन करके चित्रित किया है। उनके इस दृष्टिकोण के चित्रों में ‘चरखा कातती स्त्री’, ‘चक्की पीसती स्त्री’, ‘आरा चलाते खाती’, ‘सब्जी बेचती मालिन’, ‘जुलाहा’, ‘ग्रामीण-हाट’ के दृश्य उनकी विख्यात रचनाएँ हैं। इनके

अतिरिक्त उन्होंने पिलानी तथा राजस्थान के अन्य क्षेत्रों के दृश्य चित्र, जैसे जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्र उनकी यथार्थ पद्धति के उदाहरण हैं।

उनका चित्र "राजपूत" उनके यथार्थवादी अध्ययन एवम् 'जल-रंगों' में त्रिआयामी-प्रभाव चित्रण तथा छाया प्रकाश को सर्जित करती, "मॉडल" को सामने बिठाकर चित्रण करने की पद्धति का उदाहरण चित्र है। इस चित्र में एक वयस्क कृशकाय व्यक्ति सर पर साफ़ा पहने, हाथ में फरसा लिए हुए तथा पीठ पर ढाल तथा बगल में कटार लटकाए हुए आसीन है। इस चित्र में यथार्थ को चित्रित करते उनके जलरंगों के तूलिका स्पर्श की कोमल ध्वनियाँ दर्शनीय हैं।

इसी तरह उनके एक अन्य चित्र में चरखा कातती प्रौढ़ स्त्री भी सामने बिठा कर चित्रण करने की यथार्थ पद्धति को प्रस्तुत करती है। इस चित्र में भी प्रौढ़ स्त्री की भाव भंगिमा, चरखा कातने की मुद्रा उसके ग्रामीण वस्त्रों और आभूषणों का यथार्थ अध्ययन तथा पृष्ठभूमि में ग्रामीण कच्चे घर के परिवेश का कलापूर्ण अध्ययन है। यह चित्र भी उनके जल रंगों के सघन स्पर्श, कौशल तथा 'प्रस्तुत यथार्थ' के सूक्ष्म अध्ययन को प्रस्तुत करता है।

इसी तरह की यथार्थ पद्धति में चित्रित जलरंगों की अनेक प्रस्तुतियाँ हैं। इन चित्रों में ग्रामीण गायक, खाना बनाती स्त्री, ज्योतिशी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

समय-समय पर भूरसिंह के चित्रों ने देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी स्थान पाया इससे जन-जन के हृदय में आपकी विशिष्ट 'यथार्थवादी-शैली' में चित्रित लोक जीवन का आकर्षण उत्पन्न हुआ। भारत में ही नहीं विदेशों तक उनकी ख्याति पहुँची। 1962 में रुस की कला-अकादमी के अध्यक्ष "गैरसे मोर" ने रुस में प्रदर्शित भूर सिंह जी के चित्रों की प्रदर्शनी को देखकर अपने उद्गार व्यक्त किए थे "भूर सिंह के रंगों-रेखाओं में वह क्षमता है जो अमूर्त को मूर्त बनाती है तथा जीवनहीन को प्राणवान।"

आपके चित्रों की प्रदर्शनियाँ राजस्थान में अजमेर, पिलानी तथा इसके बाहर दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता आदि शहरों में हुईं। इनकी कृतियाँ देश-विदेश की कला दीर्घाओं, संग्राहलयों तथा निजि संकलन में संकलित हैं।

लगभग पाँच वर्षों तक रक्त-कैंसर जैसे असाध्य रोग से पीड़ित रहने के उपरान्त 15 मार्च 1966 को वे इस लोक को छोड़ गये। उनके अनेकों चित्र आज भी उनकी धरोहर के रूप में हमारे बीच हैं जो उनके सर्जक व्यक्तित्व के परिचायक हैं, एवम् राजस्थान के चित्रण-क्षेत्र में यथार्थ-चित्रण का नया अध्याय जोड़ते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, 2012, पृ.443
2. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, 2012, पृ.413



अजय घासिया

शोध छात्र, चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

जोगीमारा गुफा चित्रों का कलात्मक स्वरूप

परिचय:

मध्यप्रदेश की भूतपूर्व सरगुजा रियासत (जिसे रामायण काल में झारखण्ड कहा जाता था) की रामगढ पहाड़ियों में कुछ गुफायें हैं जहाँ कुछ निम्न स्तर के उकेरित शिलाखण्ड व मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। यहीं पर अंकित जोगीमारा गुफा चित्रों से हमारी प्राचीन चित्रकला परम्परा का विशिष्ट परिचय मिलता है। 'श्री असित कुमार हालदार' व 'श्री समरेन्द्रनाथ गुप्ता' ने अपने यात्रा संस्मरण में जोगीमारा गुफा पहुँचने के मार्ग को बहुत कठिन बताया है। ये दोनों कलाकार 1914 ई. में भारतीय पुरातत्व विभाग के निमंत्रण पर जोगीमारा गुफा में बने भित्तिचित्रों की प्रतिलिपियाँ बनाने गये थे। यूँ तो यहाँ अनेक गुफायें हैं। इनमें से जोगीमारा गुफा के पास 'सीमा बोंगरा' (बंगलौ), लक्ष्मण बोंगरा, कबीर चौरा व वसिष्ठ गुफा है।

रामगढ पहाड पर चढते ही 'पोरी देवटी' नामक सिरै-ड्योढी आती है। इस पर वर्तमान में किसी ने चित्रकारी करा दी है। यहाँ से कुछ दूर चलने पर 'कबीर चौरा' व वसिष्ठ गुफा आती है। यहाँ से ऊपर चढने पर सिंहद्वार और आगे 'रावण द्वार'। यहाँ रावण कुम्भकरण व नर्तकियों की मूर्तियाँ मिलती हैं। यहाँ आस पास राम-सीता-लक्ष्मण वरुणदेव, काली आदि के कई मंदिर हैं। इनके अलावा यहीं पर अनेक छोटी-छोटी गुफायें हैं, जिनमें ऋषि मुनि तपस्या करते थे।

इन्हीं में एक बडी गुफा 'लक्ष्मण बोंगरा' की है। इसके विषय में किवदन्ती है कि यहाँ लक्ष्मण बनवास के समय राम और सीता की रखवाली करते थे। सीता बोंगरा गुफा एक प्रेक्षागार (नाट्यशाला) के रूप में निर्मित है। इस गुफा के बारे में कहा जाता है कि यह एशिया की अति प्राचीन नाट्यशाला है। 'भास' के नाटकों के समय निर्धारण में यह पुरातात्विक खोज महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है क्योंकि नाटक प्रविधि को भास ने जन्म दिया था और यही नहीं उसके नाटकों में चित्रशालाओं के संदर्भ भी दिये गये थे। इस गुफा का संचालन किसी सुतनुका देवदासी के हाथ में था। वह देवदासी रंगशाला के रूपदक्ष देवदीन पर प्रेमासक्त थी। देवदीन की चेष्टाओं में उलझी सरल-हृदया सुतनुका को नाट्यशाला के अधिकारियों के विरोध का कोपभाजन होना पडा और वियोग में अपना जीवन बिताना पडा था। रूपदक्ष देवदीन ने इस प्रेम प्रसंग को सीता बोंगरा की भित्ति पर अभिलेख के रूप में सदैव के लिये अंकित कर दिया।'

जोगीमारा गुफा

जोगीमारा गुफा सीता बोंगरा गुफा के निकट स्थित है। लोगों की ऐसी मान्यता थी कि सीता बोंगा नाट्यशाला में नटियों के विश्राम के लिये जोगीमारा गुहा शिल्प का निर्माण किया गया था। यह गुफा 9 मीटर ऊँची है। इसकी छत इतनी नीची है कि उसे हाथ से स्पर्श किया जा सकता है। अतः हाथ से स्पर्श होने के कारण जोगीमारा गुफा में अंकित चित्र काफी नष्ट हो गये हैं। चित्रों के संबंध में एक महत्वपूर्ण रहस्य यह है कि असली चित्रों के ऊपर कुछ लोगों ने पुनः सफेद रंग पोत कर पुराने चित्रों को अकुशल हाथों से बनाने का प्रयास किया। लेकिन पूर्व में अंकित जो रंग योजना है वह परम्परागत एवं उच्चकोटि की है या यूँ कहे तो अतिशयोक्ति न होगी कि पुराने चित्र मौर्यकाल के अप्रतिम उदाहरण होने चाहिये। यह द्वितीय स्तर वाली चित्रकारी कब हुई कहा नहीं जा सकता।

जोगीमारा गुफा के पास ही प्राप्त शिलालेख के अनुसार यह भी स्पष्ट हो गया है कि यह नटियों के निवास का स्थान नहीं था अपितु यह गुफा वरुण देवता का एक मंदिर था जिसमें सुतनुका नाम की देवदासी पूजा-पाठ करती थी। उसी ने या तो स्वयं अथवा किसी के द्वारा यहाँ के भित्ति चित्रों का निर्माण कराया होगा।

‘डॉ. ब्लाख’ के अनुसार जोगीमारा की गुफा एवं उसके चित्र 300 ई.पू. के जान पड़ते हैं। इन चित्रों का विस्तारपूर्वक विवेचन ‘श्री रायकृष्ण दास’, ‘विसेन्ट स्मिथ’² एवं ‘असित कुमार हालदार’ ने अपनी-अपनी पुस्तकों में किया है।

जोगीमारा चित्रों की विषयवस्तु

जोगीमारा चित्रों की विषयवस्तु पूर्णतया वहाँ की तत्कालिक लोक संस्कृति एवं धर्म पर आधारित है। चित्रों के मिट जाने अथवा अस्पष्ट होने के कारण विषय वस्तु अस्पष्ट है लेकिन ये चित्र परम्परागत, धार्मिक एवं विषयानुरूप क्रमवार अंकित हैं। यहाँ चित्रित चित्रों की विषय वस्तु में पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष, मकान, तालाब, विभिन्न मुद्राओं को प्रदर्शित करती मानवाकृतियाँ उल्लेखनीय हैं। कुछ पैनों में नृत्यों एवं गायकों के समूह को भी प्रदर्शित किया गया है।

जोगीमारा गुफा में अंकित चित्रों का कलात्मक विवेचन

यूँ तो कला इतिहासकार असित कुमार हालदार³ ने जोगीमारा के चित्रों को सात खण्डों में निरूपित स्वीकार किया है। ये सातों खण्डों के चित्र विविध चक्रों में अंकित हैं। छत को विविध आयताकार खण्डों में लाल रेखाओं के माध्यम से विभाजित करके विषयवस्तु को क्रमवार अंकित किया गया है। जोगीमारा गुफा में अंकित चित्रों का कलात्मक विवेचन इस प्रकार है:—

प्रथम खण्ड चक्र के चित्र — इस खण्ड में कुछ मानवाकृतियाँ एवं एक हाथी का बड़ा ही भावग्राही अंकन है। जल के बीच में एक बड़ी मछली को भी भावपूर्ण मुद्रा में तैरते हुये चित्रित

किया है। जल का प्रदर्शन लहरदार रेखाओं के माध्यम से काले रंग के पोत से प्रदर्शित किया है। यह चित्र गज-ग्राह की पौराणिक कथा पर आधारित निर्मित जान पड़ता है। आकृतियों के अस्पष्ट होने के कारण कथा स्पष्ट नहीं हो पाई है।

द्वितीय खण्ड के चित्र – इस खण्ड में कुछ व्यक्ति एक वृक्ष के नीचे बैठे वार्तालाप में व्यस्त दिखाये गये हैं यानि वे आपस में बड़ी ही भावपूर्ण मुद्रा में कुछ विचार विमर्श कर रहे हैं। वृक्ष का तना मोटा एवं सीधा है और वृक्ष में लाल रंग से पत्तियाँ चित्रित की गई हैं।

तृतीय खण्ड के चित्र – इस खण्ड में बाग का दृश्य प्रदर्शित है जिससे लाल रंग के फल खिले हैं। इस खिले हुये फूलों के ऊपर दो प्रेमी युगलों को बड़े ही भावपूर्ण मुद्रा में नृत्य करते हुये प्रदर्शित किया गया है। प्रेमी युगलों के शरीर पर लाल तथा काले रंगों का प्रयोग किया गया है।⁴

चतुर्थ खण्ड के चित्र – असित कुमार हालदार के शब्दों में बौनों का अंकन भारतीय चित्रों एवं मूर्तियों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से भी यह ज्ञात होता है कि उस समय राजपरिवारों में इस प्रकार के अनेक व्यक्ति सेवा में नियुक्त किये जाते थे जो हास-परिहास के समय उपस्थित रहते थे। चित्रकारों ने इस बौनी आकृतियों का निरूपण सम्भवतः परिहास के वातावरण को प्रस्तुत करने के लिये किया। साथ ही पक्षियों का भी सफल अंकन हुआ है।

पंचम खण्ड के चित्र – इस खण्ड में चित्रकार ने नृत्य का बहुत सुन्दर भावग्राही दृश्य प्रस्तुत किया है। चित्र में एक नृत्यांगना बड़ी भावपूर्ण मुद्रा में बैठी है और उसके चारों ओर गायन-वादन में रत कुछ मानवाकृतियाँ बड़ी ही भावपूर्ण मुद्रा में अपने कार्यों में तल्लीन चित्रित की गई हैं। मानवाकृतियाँ (स्त्री-पुरुष) काफी भावपूर्ण एवं अजंता की मुखाकृतियों के अनुरूप जान पड़ती है। रेखाओं एवं रंगों का संयोजन सरल एवं आकर्षक है।

षष्ठम् एवं सप्तम् खण्ड के चित्र – इस खण्ड के चित्र प्रायः मिट चुके हैं फिर भी दोनों खण्डों में रथों का अंकन दर्शनीय है। चित्रों के किनारे अनेक प्रकार के सुन्दर आलेखनों का अंकन है।

इस प्रकार पूर्व में चित्रित चित्रों की रेखायें सधे हुये हाथों की है। रेखाएँ सरल एवं गतियुक्त है व काले, लाल, भूरे सफेद एवं हरे रंगों का प्रयोग सफलता से किया है।¹

इस प्रकार जोगीमारा गुफाओं की चित्रकारी अजन्ता की गुफा परम्परा की महत्वपूर्ण शुरुआत है। यहां के चित्र अजन्ता की आरम्भिक गुफाओं के समान सुन्दर हैं। इन चित्रों में बौनों जैसी आकृतियाँ सांची एवं भरहुत से मिलती जुलती हैं। कलात्मकता के लिये ये चित्र भारतवर्ष की बहुमूल्य धरोहर हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आर.ए.अग्रवाल; कला विलास, भारतीय चित्रकला का विवेचन, मेरठ, 2002, पृ. 253
2. विन्सेट स्मिथ; फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन ऑक्सफोर्ड, 1911, पृ. 86
3. असित कुमार हाल्दार; भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, पृ. 49
4. रीता प्रताप; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, 2013, पृ. 32
5. रीता प्रताप; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, 2013, पृ. 33



सीमा कुण्डारा

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ. शिप्रा वर्मा

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

पी.जी. कॉलेज, दौसा

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

पुलिस जनता परस्पर सहयोग

पुलिस-जनता सम्बन्ध वह अवधारणा है जो समुदाय के मनोमस्तिष्क में व्याप्त पुलिस की परम्परागत छवि को तोड़ने एवं पुलिस के कार्यों में जन-सहभागिता बढ़ाने पर केन्द्रित है। यह **सर रॉबर्ट पील के इस कथन को कि 'पुलिस ही जनता है तथा जनता ही पुलिस हैं'** को मूल मंत्र मानते हुये पुलिस एवं जनता के मध्य व्याप्त रहीं दूरियों को समाप्त करती है। विश्वभर में पुलिस को जनोन्मुख एवं उत्तरदायी बनाने के साथ-साथ उसके कार्यों में जनता की भागीदारी निभाने के प्रयास विगत कुछ दशकों से ही होने लगे हैं। यह अवधारणा 'सामुदायिक पुलिसिंग' के रूप में सामने आती है।

लंदन पुलिस के एक पूर्व चीफ ने कहा था- "अन्ततः भय को समुदाय हराता है न कि पुलिस।" स्पष्ट है कि पुलिस के कार्यों में समुदाय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। लंदन पुलिस ने वर्ष 1845-46 में एक परिपत्र जारी कर पुलिस की जनता से व्यवहार करने संबंधी दिशा निर्देश जारी किये थे। ऐसा सर रॉबर्ट पील के प्रधानमंत्रित्व के दौरान हुआ था। पुलिस सुधारों के प्रबल समर्थक सर पील पूर्व में गृहमंत्री भी रह चुके थे। भारत में सन् 1999 में आयोजित हुये पुलिस महानिदेशकों के सम्मेलन में यह निर्णय किया गया था कि सम्पूर्ण देश में सामुदायिक पुलिसिंग की अवधारणा को व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित किया जाएगा। व्यावहारिक रूप से भारत में विगत सदी के अंतिम दशक में सामने आए 'नागरिक अधिकार पत्र' इस दिशा में सार्थक प्रयास थे।'

विशेषताएँ

पुलिस-जनता अन्तर क्रिया या सम्बन्धों की अवधारणा की निम्नांकित विशेषताएँ हो सकती हैं।

1. यह अवधारणा पुलिस को वर्दीधारी जनता तथा आमजन को बिना वर्दीधारी पुलिस मानते हुए, दोनों पक्षों को एकीकृत करने को लक्षित है।

2. यह अवधारणा पुलिस की उस परम्परागत छवि को सुधारना चाहती है जो सत्ता, भय, रौब-दाव तथा निरंकुशता इत्यादि के रूप में कुख्यात रही है। अतः पुलिस राज्य की विरोधी है तथा लोकतांत्रिक पुलिस की समर्थक है।
3. इसमें उन प्रविधियों या तौर-तरीकों को अपनाया जाता है जहाँ पुलिस एवं जनता का परस्पर संवाद या सम्पर्क होता है और स्वाभाविक रूप से उन्हीं प्रविधियों के माध्यम से कार्य व्यवहार में परिवर्तन लाकर वांछित परिणाम प्राप्त करने के प्रयास किए जाते हैं।
4. सभ्य समाज, मीडिया, दबाव समूह, सामुदायिक संगठन, क्षेत्र समितियाँ, मौहल्ला समितियाँ, समुदाय सम्पर्क समूह तथा अन्य कई प्रकार के संगठन एवं समूह इसमें प्रत्यक्ष तथा परोक्ष योगदान देते हैं।
5. पुलिस विभाग का नागरिक अधिकार पत्र, वेबसाइट तथा हेल्पलाइन इत्यादि इसी दिशा में आधुनिक प्रयास हैं।
6. इसमें अपराधों की रोकथाम, अपराधों के अन्वेषण, अपराधियों की गिरफ्तारी, न्यायिक निर्णयन एवं स्वच्छ समाज के निर्माण में सहायता मिलती है।
7. यह अवधारणा जनता पर विश्वास करने तथा उससे सहयोग प्राप्त करने हेतु पुलिस तन्त्र में व्यापक सुधार भी करवाती है।
8. यह अवधारणा सुशासन एवं आर्थिक सुधारों के परिणामों इत्यादि से लोकप्रिय हुई है जो सम्पूर्ण पुलिस तंत्र में पारदर्शिता, जवाबदेयता एवं संवेदनशीलता का समावेश कर रही है।
9. यह समग्र एवं व्यापक पुलिस सुधारों का वह तकनीकी भाग है जो पुलिस की कार्यप्रणाली, जन सम्पर्क एवं व्यवहार सम्बन्धी पक्षों पर केन्द्रित है।

संक्षेप में कहा जाए तो यह आधुनिक युग में शुरु आधुनिक एवं मानवीय चेहरे से युक्त पुलिस की कल्पना एवं उसे यथार्थ में उतारने का प्रयास है जो पूर्व में केवल नियामकीय पुलिस के रूप में प्रवर्तित रहा है।

केन्द्रीय सूचना आयुक्त शैलश गांधी कहते हैं— “लोग पुलिस से पूर्ण राज्य या शिक्षा एवं दवा देने वाली सामाजिक संस्था के बन जाने जैसी अपेक्षाएँ नहीं करते हैं। वे तो वास्तव में केवल इतना चाहते हैं कि यह कानून का क्रियान्वयन करे तथा कानून के अनुसार कार्य करें।”

विधियाँ

पुलिस-जनता अन्तरक्रिया की प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैं:-

1. पुलिस विभाग का नागरिक अधिकार पत्र

2. पुलिस थाने में प्रदर्शित जनहित सूचनाएँ
3. मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रचार
4. समुदाय सम्पर्क या समन्वय समूह
5. पुलिस पोर्टल पर उपलब्ध सेवाएँ
6. आमजन के साथ पुलिस की खुली चर्चा
7. स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका
8. मीडिया के प्रयास
9. पुलिस हेल्पलाइन
10. मौहल्ला (कॉलोनी) नागरिक विकास समितियों से सहयोग।
11. विभिन्न प्रकार के दबाव समूहों एवं हित समूहों से सहयोग।²

पुलिस के सिद्धान्त

सर रॉबर्ट पील द्वारा पुलिस के लिए वर्णित नौ सिद्धान्त इस प्रकार हैं:-

1. पुलिस की स्थापना मुख्यतः अपराध एवं अव्यवस्था को रोकने हेतु हुई है।
2. पुलिस द्वारा निष्पादित होने वाले कार्यों की क्षमता जनता के अनुमोदन पर निर्भर करती है।
3. जनता का आदर सुरक्षित एवं संधारित करने के लिए पुलिस को स्वेच्छा से जनता द्वारा कानून की देखभाल में सहयोग सुनिश्चित करना चाहिए।
4. जितनी मात्रा में जनता का सहयोग पुलिस को मिलेगा उतनी मात्रा में पुलिस को शारीरिक बल का प्रयोग कम करना पड़ेगा।
5. पुलिस, जनता सहयोग की मांग उसके संरक्षण को जनमत के निर्माण द्वारा नहीं बल्कि कानून के निष्पक्ष पालन-प्रदर्शन द्वारा प्राप्त करें।
6. पुलिस केवल उसी स्थिति में तथा समुचित मात्रा में शारीरिक बल प्रयोग करे जबकि कानून व्यवस्था बनाए रखनी हो तथा समझाइश, परामर्श तथा चेतावनी देने की प्रक्रियाएँ अपर्याप्त सिद्ध हो चुकी हो।
7. पुलिस को हर समय जनता से सम्बन्ध बनाए रखने चाहिये ताकि पुलिस ही पब्लिक है तथा पब्लिक ही पुलिस है, की ऐतिहासिक परम्परा को जीवंत किया जा सके। पुलिस प्रत्येक नागरिक एवं समुदाय के कल्याण तथा पूर्ण समय ध्यान रखने वाली वह संस्था है जो जनता में से बनी है तथा उसे इस हेतु भुगतान मिलता है।

8. पुलिस को हमेशा अपने कृत्यों को प्रत्यक्षतः अपने दायित्व के सन्दर्भ में करना चाहिए न कि ऐसा लगे कि पुलिस ने न्यायपालिका की शक्तियाँ हडप ली हैं।
9. पुलिस की कार्यकुशलता अपराधों एवं अव्यवस्था की अनुपस्थिति से प्रमाणित होती है न कि इनसे जूझने में दिखाई देने वाली गतिविधियों से।

उपर्युक्त वर्णित नौ सिद्धान्तों से मिलते-जुलते सिद्धान्त पर रिचर्ड मैन तथा सर रॉबर्ट मार्क द्वारा भी दिए गये हैं।

सामुदायिक पुलिसिंग

सामुदायिक पुलिसिंग या तुलनात्मक रूप से नयी एवं आधुनिक पुलिस रणनीति एवं दर्शन है जो इस मान्यता पर टिका है कि पुलिस की स्थानीय समुदाय के साथ अन्तरक्रिया और सहयोग ही अपराधों पर नियंत्रण का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। इस प्रकार की पुलिस प्रणाली में पुलिसकर्मी स्वयं को उस समुदाय का ही भाग मानते हैं न कि सरकारी तन्त्र के पुलिसकर्मी सा व्यवहार करते हैं। इसमें गाड़ियों में बैठकर गश्त करने के बजाय उस गली-मुहल्ले में पैदल चलकर लोगों से बतिया कर परस्पर समझ विकसित की जाती है। निष्पक्षता, प्रतिबद्धता, जवाबदेयता, पारदर्शिता, विश्वास तथा जनसमस्याओं के प्रति संवेदनशीलता इस प्रणाली के मूल तत्व हैं। **इसका केन्द्रीय चिन्तन यह है कि- “पुलिस उच्च गुणवत्तापूर्ण सेवाएँ प्रदान करने हेतु आलोचनात्मक ढंग से सोचे, योजना बनाए तथा अन्तरवैयक्तिक संचार को बढ़ावा दे।”**

सामुदायिक पुलिसिंग प्रणाली को स्थापित करने में ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री सर रॉबर्ट पील (1788-1850) का योगदान अग्रणी माना जाता है। उन्होंने सन् 1822 में गृहमंत्री पद धारण करने के पश्चात् पुलिस सुधारों का बीड़ा उठाया था। रॉबर्ट पील को आधुनिक पुलिस का जन्मदाता भी कहा जाता है। स्थिति यह है कि आज भी ब्रिटेन में पुलिसकर्मियों को ‘बॉबी’ के अतिरिक्त ‘पीलर्स’ भी कह दिया जाता है। कतिपय व्यक्तियों का मानना है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के पोर्टलैण्ड, ओरेगांव के मेयर (2004-08) टॉम पॉटर ने सामुदायिक पुलिसिंग की अवधारणा सन् 1967 में तब विकसित की थी जबकि वे दक्षिण पूर्वी पोर्टलैण्ड में पुलिस अधिकारी पद पर कार्यरत थे।

भारत में राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा पुलिस की छवि सुधार हेतु मुख्यतः निम्नांकित सुझाव दिए गये थे-

1. पुलिस कतियों को जनमित्र बनाने हेतु उनके व्यवहार में परिवर्तन लाना,
2. पुलिस कार्यप्रणाली में पारदर्शिता एवं खुलापन लाना,
3. पुलिस कार्यप्रणाली में जनसहभागिता बढ़ाना तथा पुलिस की छवि सुधारना, तथा पुलिस को अधिक कार्यकुशल एवं प्रभावी बनाना।⁹

उपर्युक्त वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सन् 1998 में गृह मंत्रालय ने प्रयोगात्मक रूप से यू.एन.डी.पी. की सहायता से राजस्थान, तमिलनाडू एवं असम के नौ पुलिस थानों के कार्मिकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अध्ययन एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज से करवाया था ताकि राज्य पुलिस प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा संचालित पाठ्यक्रम में तदनुसार सुधार किए जा सकें। इसी प्रकार पंजाब में उग्रवादियों के विरुद्ध तथा आन्ध्रप्रदेश में नक्सलवादियों के विरुद्ध जनमत निर्माण कर सामुदायिक पुलिसिंग के माध्यम से पर्याप्त सफलता प्राप्त की गई थी।

भारत में पुलिस-जनता अन्तरक्रिया : कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण निम्नलिखित हैं:-

भारत में पुलिस-जनता अन्तरक्रिया के क्रम में 21वीं सदी की शुरुआत से तेजी से प्रयास होने लगे हैं। कतिपय चर्चित एवं सफल उदाहरण यहां वर्णित किए जा रहे हैं:-

1. तमिलनाडू में थाना क्षेत्र के बीट क्षेत्र के आधार पर बने पुलिस सहायता केन्द्रों तथा हेल्पलाइन्स के साथ-साथ 'वेन' तथा वाहनों के माध्यम से चलित परामर्श केन्द्रों के द्वारा पुलिस ने सीधा जनता से संवाद स्थापित किया। त्रिचि (तिरुचिरापल्ली) में सामुदायिक पुलिसिंग का सफल प्रयोग हो रहा है। यहां बीट ऑफिसर सिस्टम, महिला हेल्पनाइन, शिकायत बॉक्स व्यवस्था, कच्चील बस्ती गोद लेने तथा प्रत्येक स्तर पर जन सहयोग से पुलिस को सफलता मिली।
2. राजस्थान द्वारा विश्वस्तरीय एवं श्रेष्ठ पुलिस थानों की दिशा में बढ़ाए गये कदमों का लक्ष्य आई.एस.ओ. प्रमाण पत्र करने हेतु था। प्रत्येक पुलिस जिले में एक मॉडल पुलिस स्टेशन स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया। नवम्बर 2005 में जयपुर का विधायकपुरी पुलिस थाना उत्तरी भारत का आई.एस.ओ. 9001-2000 प्रमाण पत्र प्राप्त करने वाला प्रथम थाना बना। सन् 2007 तक राज्य के 41 पुलिस स्टेशन यह प्रमाण पत्र पा चुके थे। यह प्रमाण पत्र कार्यकुशल सेवाओं, गुणवत्ता तथा लोगों को प्रदत्त उच्च स्तरीय सेवा हेतु दिया जाता है। आल्टस ग्लोबल एलायंस द्वारा जब जयपुर के शिप्रा पथ पुलिस थाने को विश्व का नम्बर एक थाना घोषित किया तो स्थानीय निवासियों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि यहाँ पारदर्शिता, जवाबदेयता, मानवीय व्यवहार तथा जनसहभागिता की दिशा में अत्यधिक प्रयास हुए थे। राज्य में समुदाय सम्पर्क समूह में तेजी से प्रगति हुई तथा सन् 2007 तक राज्य में 25 हजार से अधिक सी.एल.जी. बन चुके थे, जिनकी सहायता से 60 हजार शिकायतों एवं 8 हजार मुदमों का निस्तारण समुदाय के हस्तक्षेप से किया गया। महानिदेशक **अमरजीत सिंह गिल** द्वारा चलायी गयी केस आफिसर स्कीम के अन्तर्गत प्रत्येक थाने के उन प्रकरणों को प्राथमिकता पर लिया जो समाज में चर्चित रहे थे। इन मुकदमों में शीघ्र निस्तारण तथा अपराधियों की सहजता से जमानत नहीं होने से समाज में पुलिस की छवि सुधरी। जनसहभागिता कार्यक्रम के अतिरिक्त

महिला परामर्श केन्द्र, जयपुर में विश्वसनीय युवाओं को सामुदायिक पुलिस अधिकारी नाम देकर उनसे सहयोग प्राप्ति, वरिष्ठ नागरिकों हेतु सम्बल योजना इत्यादि नवायार हाल में लिये गये। महिलाओं, विशेषतः छात्राओं से छेड़खानी रोकने हेतु 'ऑपरेशन गरिमा' संचालित हुआ। सन् 2007 से राज्य में विधायकपुरी पुलिस थाने में ऑनलाइन एफ.आई.आर. कराने की सुविधा प्रदान कर सामयिक कदम उठाया गया। क्राइम हेल्पलाइन (1090) तथा चाइण्ड हेल्पलाइन (1098) के माध्यम से भी त्वरित सेवाएं दी जाने लगी हैं। राजस्थान, दिल्ली, चंडीगढ़, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश तथा उत्तराखण्ड पुलिस तंत्र को जोड़कर बने 'जिपनेट' के माध्यम से अपराधियां, लावारिस बच्चों, वाहनों, लाशों तथा गिरफ्तार व्यक्तियों की सूचना कम्प्यूटर तकनीक से आदान-प्रदान की जाने लगी हैं।⁴

अपराधानों की रोकथाम में जन-सहयोग

अपराधों की रोकथाम के लिये जनता और पुलिस में सौहार्दपूर्ण एवं विश्वास सम्मत सम्बन्धों का होना आवश्यक है। जन सहयोग के अभाव में पुलिस की एकाकी प्रयास अपराध-निरोध के लिये पर्याप्त नहीं हो सकते। वर्तमान में पंजाब समस्या इसका ठोस उदाहरण है। पंजाब आतंकवादियों की समस्या से निपटने के लिये वहां की जनता ने पुलिस को उचित सहयोग की अपेक्षा आतंकवादियों को सहयोग करके गंभीर चुनौती उत्पन्न कर दी है।

राष्ट्रीय पुलिस आयोग के अध्यक्ष डॉ. धर्मवीर के अनुसार यदि पुलिस वाले अपनी भाषा में ही सुधार कर लें तो पुलिस के विरुद्ध जनता का असंतोष काफी हद तक कम हो सकता है। जन सहयोग प्राप्त करने के लिये पुलिस को भी अपने आचरण एवं व्यवहार से जनता में विश्वास पैदा करना चाहिए। पुलिसजनों को लोगों के प्रति संवेदनशील तथा विचारवान होना चाहिए और उनके कल्याण का सदैव ध्यान रखना चाहिये। पुलिस थाने पर पहुंचने वाले व्यक्ति से पुलिस कर्मी को यह नहीं पूछना चाहिये कि 'आप क्या चाहते हैं?' अपितु यह कहना चाहिये कि 'मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।' किसी भी अपराध का अन्वेषण करते समय पुलिस अधिकारी को यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति को अनावश्यक रूप से उत्पीड़ित न किया जाये।⁵

पुलिस जनता की जानमाल की रक्षा से लेकर अपराधियों को पकड़ने तक अनेकों कार्य करने पड़ते हैं और जनता के सहयोग के बिना उसका कोई काम सफल नहीं हो सकता।⁶

अपराध निवारण में स्वयं जनता का भी मौलिक उत्तरदायित्व है। जब तक जनता अपनी जिम्मेदारी का अनुभव नहीं करेगी, अपराधों की संख्या में कमी नहीं लाई जा सकती। जनता को अपने मानस से इस बात को निकाल देना चाहिये कि अपराध रोकने का कार्य केवल सरकार या पुलिस का है। जनता की मामूली सजगता से अनेक अपराध टाले जा सकते हैं। इसलिये जनता का भी यह उत्तरदायित्व है कि पुलिस को वांछित सहयोग प्रदान करे। अतः पुलिस जनता एक दूसरे को बेहतर तरीके से समझकर पारस्परिक रूप से अच्छा व्यवहार कर सकेंगे।⁷

निष्कर्षतः— पुलिस एवं समाज एक—दूसरे की सहयोग इकाईयाँ हैं। इनके आपसी सहयोग से बेहतर जिन्दगी जीने की स्थितियाँ बनती हैं। पुलिस एवं समाज एक—दूसरे से गहरे तक जुड़े हुए हैं तथा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। पुलिस को नागरिकों के अधिकारों के प्रहरी, रक्षक एवं संवाहक के रूप में पहचाना जाता है। नागरिक अधिकारों के सन्दर्भ में इस प्रकार पुलिस की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है।^१

सारांश में यही कहा जा सकता है कि जब तक पुलिस को सामुदायिक सहयोग प्राप्त नहीं होगा तब तक 21वीं सदी की गम्भीर चुनौतियों का सामना करना सहज नहीं होगा।^१ इसलिए पुलिस की नवीनीकरण तथा आधुनिकीकरण की योजनाओं की क्रियान्वित ही पुलिस को नागरिक संगठन और लोकतान्त्रिक पुलिस के रूप में बदल देने में सक्षम हो सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. अरविंद वर्मा 'द इण्डियन पुलिस : ए क्रिटिकल इवेल्यूशन', रीजेन्सी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005
2. आर.के. तिवारी एवं के.वी. रविकुमार, 'हिन्ट्री एण्ड डवलवमेन्ट ऑफ फोरेन्सिक साइंस इन इण्डिया', बी.पी.आर.डी. भारत सरकार, नई दिल्ली, 2000
3. भारत का संविधान, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, 2010
4. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, 'भारत में पुलिस सुधार प्रवृत्तियां एवं चुनौतियां', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, चौडा रास्ता, जयपुर, दरियागंज नई दिल्ली, 2011
5. प्रेमचन्द्र शर्मा, अपराध अन्वेषण, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स, जयपुर, 1988, पृ. 184—185
6. चन्दनमल नवल, 'भारतीय पुलिस' राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1998, पृ. 26—27
7. हरमन मेनहेम, क्रिमिनल जस्टिस एण्ड सोसियल रिफॉर्मेशन, पृ. 82
8. डी.डी.एस.यादव, 'भारत में मानव अधिकार', आस्था प्रकाशन, जयपुर, 2012, पृ. 232
9. शंकर सरोलिया, 'भारतीय पुलिस' गौरव पब्लिशर्स अम्बाबाड़ी, जयपुर, 1988, पृ. 55
10. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, 'मानवाधिकार सभ्य समाज एवं पुलिस' आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 218



अमिता सिंह

शोधछात्रा, चित्रकला विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

भारतीय शिक्षा में विरासत का समावेश क्यों नहीं? (एक विवेचनात्मक अध्ययन)

भारतीय संस्कृति समय की कसौटी पर खरी उतरी है जो दुनिया की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। वास्तव में अन्य प्राचीन सभ्यताओं के बीच भारतीय संस्कृति ने अपना अद्वितीय स्थान बनाया है यही नहीं इसने बाहरी प्रभावों को भी अपने अन्दर समाहित कर उन्हें भी आत्मसात् कर लिए है जो केवल भारत के सांस्कृतिक परिवेश में ही हो सकता था।

भारत का धर्म, दर्शन, वास्तुकला, संगीत, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, कला से सभी भारतीय संस्कृति की विविधता को बड़ी खूबसूरती के साथ पेश करती है।¹ कुछ देशों के पास तो अपनी सांस्कृतिक विरासत का दावा करने के लिए भी कुछ नहीं है वही औसतन भारतीय छात्र अपनी ही विरासत से दूर है जो आधुनिक भारतीय शिक्षा की दर्दनाक स्थिति को दर्शाते हैं। भारत की शिक्षा प्रणाली युवा भारतीयों में एक नवीन गतिशील जागरूकता विभिन्न क्षेत्रों सहित देश व युगों की विभिन्न उपलब्धियों, सभ्यताओं का प्रभाव विफल रहता है, इस तरह विविधता में “एकता” के प्रभाव को नकारा जाता है। आज की शिक्षा नौकरियों की भाग दौड़ में शामिल होने के लिए दी जाती है यह रवैया अंतर्निहित सोच भारत की सांस्कृतिक विरासत छात्रों के लिए मूल्यहीन बनती जा रही है। मात्र सांस्कृतिक विरासत को राजनीतिक भाषण, संग्रहालयों और विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए नहीं बल्कि शिक्षण के लिए उपयुक्त है। इस तरह के दृष्टिकोण छात्रों में आत्मविश्वास को बढ़ावा कभी नहीं दे सकते।

सांस्कृतिक विरासत और उद्देश्य :

- ☛ भारतीय सांस्कृतिक विरासत के विभिन्न पहलुओं के साथ शिक्षार्थियों को परिचित कराने में पूरी तरह से सक्षम है।
- ☛ धर्म के क्षेत्र में अपने पूर्वजों के योगदान से शिक्षार्थियों को परिचित कराता है।
- ☛ दर्शन, विज्ञान, कला शिक्षा, भाषा और साहित्य शिक्षार्थियों के सभी पहलुओं में विविधता के बीच एकता को बनाये रखने में सक्षम है।
- ☛ भारत की संस्कृति दुनिया के विभिन्न देशों में अपने प्रभाव के साथ शिक्षार्थियों को परिचित कराने में सक्षम है।

- ☛ शिक्षार्थियों को भारतीय संस्कृति की समग्र प्रकृति से परिचित कराने में सक्षम है।
- ☛ शिक्षार्थियों के बीच प्यार की भावना और दंजपवद चंचलवंबी के प्रति अपनेपन की भावना को विकसित करने के लिए भारतीय संस्कृति का शिक्षा में समावेश लाभदायक है।^१

भारतीय शिक्षा पर महान् भारतीय विचारकों ने ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के खिलाफ चेतावनी दी है स्वामी विवेकानन्द अग्रेंजी को निषेध, बेजान और कमजोर कर दिया है, श्री अरविन्द स्वामी ने बीसवीं सदी के पहले दशक में लिखा था 'भारत की संस्कृति और परम्परा में सभी प्राचीन जड़ों ने वर्तमान स्कूल और विश्वविद्यालय को प्रभावित किया है।

अतीत से आध्यात्मिक और बौद्धिकता को आत्मसात् कर शिक्षा से जोड़ते हैं, एक राष्ट्र को महान् बनाते हैं।

“रविन्द्रनाथ टैगोर ने भी इस मक्तव्य पर सहमति व्यक्त करते हुए कहा है कि हमारी प्रचलित शिक्षा प्रणाली में असंतोष, अधूरापन, अस्पष्टता साफ—साफ दिखाई दे रही है।^२ जो हमारी संस्कृति और हमारे लिए खतरा बन गया है इसमें शीघ्र बदलाव की आवश्यकता है। समय व परिस्थितियां चाहे कैसी भी रही हो भूत में या वर्तमान में सांस्कृतिक विरासत, शिक्षा में भूमिका को समझना होगा इस अमूल्य निधि को बचाने के लिए ठोस कदम उठाने ही होंगे।

माध्यमिक शिक्षा व संग्रहालय :

यूनेस्को, नवम्बर 1999 के अनुसार इसी तरह के विषय को उठाते हुए बैठक की जिसमें माध्यमिक शिक्षा में संग्रहालय कैसे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट कर सकते हैं उस पर विचार—विमर्श किया गया था।

किशोर बालक अपने बड़े बुजुर्गों व गुरुजनों से ही बहुत कुछ सीखता व करता है और वे ही अनुभव उनके शिक्षा काल में सहयोग, विकास करते हैं।

“कलिंगवुड जिन्होंने कला को एक जादू का रूप देकर उसकी क्षमताओं को भावनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है और अपने उद्देश्यों की व्याख्या की है।”

दार्शनिकों के विचार किशोर बालकों के लिए एक कुंजी के समान हैं जो उनकी सोच को मानवीय ढंग से व्यक्त करने में सहायता करती हैं। क्योंकि एक किशोर बालक जब कला—कार्यों में भाग लेता है तो वह परस्पर जुड़ाव महसूस करता है यह एक ऐसा विषय है जिसमें उसकी व्यक्तिगत संस्कारों के प्रति पहचान मिलती है। कला के माध्यम से ही बालक आंतरिक बाह्य भावनाओं से जुड़ कर ही विकास करता है।^३

विद्यालयों के माध्यम से संग्रहालय ज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर दिया जा सकता है जिसे वर्तमान शिक्षा की गुणवत्ता और भी पुष्ट होगी। प्राचीन संस्कृति, धार्मिकता, कलात्मक ऐतिहासिकता व अन्य संस्कृतियों के बारे में खेल—खेल में जानकारी प्राप्त करने में सहयोग दे सकता है। माध

यमिक शिक्षा कला आधारित हो, नई-नई तकनीकों द्वारा नई-नई खोजकर नव युवकों प्राचीन संस्कृतियों के प्रति जुड़ाव उत्पन्न करता है।

संग्रहालयों से उत्पन्न ज्ञान उपयोगी तो होता ही है साथ ही राष्ट्रीय रूप में संगठित कर मानव जाति के लिए उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त कराने में भी सहयोग करता है। कुछ विचारकों का मानना है संग्रहालयों व विरासतों से प्राप्त ज्ञान पूर्ण शिक्षित करने में असफल है उनका फायदा उठाया जा सकता है, वह किसी विषय पर ज्ञान अर्जित कर वाद-विवाद, विचार-विमर्श में सहयोग कर सकता है। क्योंकि यह सोच को चुनौती देता है दबाव डालता है। कला की शक्ति वातावरण व मूल्यों पर आधारित होती है।

हर्बल रीड के अनुसार संग्रहालय एक ऐसी शाला है यहां पर अपने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वो किसी भी उम्र का हो तल्लीनता से ज्ञान का संवर्धन कर सकता है।

विद्यालयों में छात्रों द्वारा गतिविधि – जिसमें छात्रों को अपने परिवार और अपने आसपास की जानकारियों को संकलित करनी होगी। स्क्रैप बुक जिसमें अपने स्वभाव के अनुरूप ही वह अपने कार्य को अंजाम देगा। चित्रों को संकलित कर फाईल बनवाई जाए वह जिसे पसन्द करता है उससे सम्बन्धित जानकारी को लिखेगा और चित्र चिपकएगा। इस प्रकार के कार्य (कला से सम्बन्धित) उसको दूसरे विषय समझने में सहायता करेंगे। यह परिवर्तनशील शिक्ष को सांस्कृतिक संग्रहालयों द्वारा जोड़ने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है नवयुवकों को उनके जीवन से जोड़ते हुए शिक्षा देना इसको स्पष्ट करती है। किशोर बालकों में एक नया बदलाव आएगा वे अपनी सांस्कृतिक विरासत को पहचानेंगे और उसके सुरक्षित रखने के हर संभव प्रयास करेंगे, कुछ नया सीखने के लिए उत्सुक रहेंगे। तब वह छात्र बार-बार संग्रहालय जाकर सम्बन्धित जानकारियों को संकलित करना चाहेगा। क्योंकि कला प्रत्येक व्यक्ति सभ्यता के लिए आवश्यक है। साथ ही सभ्यता को नया रूप देती है। यूनेस्को उनके लिए चुनौती देता है व उनको आगे बढ़ाने में मदद भी करता है व नये-नये तरीकों द्वारा कैसे शिक्षा में इसका समावेश किया जा सकता है।

स्कूलों में हेरिटेज शिक्षा कार्यक्रमों को बढ़ावा :

हाल ही में विश्व विरासत समारोह मनाया गया जिसमें स्कूलों ने हेरिटेज क्लब व कई कार्यक्रमों को उसमें समाहित किया है यह कार्यक्रम सीबीएसई विद्यालयों में शुरु हुआ है जो अच्छे प्रारम्भ का संकेत है। विरासत शिक्षा के क्या फायदे हो सकते हैं व इसे जुड़ना क्यों आवश्यक है।

- ☛ सक्रिय रूप से करके सीखना के माध्यम से इतिहास और सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम को समीप लाना है।
- ☛ विविधता, सहिष्णुता, आपसी समझ, धैर्य, जागरूकता और विरासत में भागीदारी को बढ़ाना देने में स्कूली बच्चों का सहयोग।

- ☛ छोटे बच्चों को प्रेरित करने अतीत और वर्तमान की समझ के माध्यम से एक नये भविष्य का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- ☛ स्थानीय विरासत, खोज व उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने में सहयोग देना।
- ☛ बच्चों को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विरासतों की जानकारियां व उसके लाभ के बारे में समझना कि किसी समुदाय में निहित विशिष्ट कार्य संस्कृतियों की एक वैचारिक पहचान बनते हैं।

विरासत शिक्षा छात्रों के लिए केवल मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि उनके सीखने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण साधन है। समाज और इतिहास की विविधता को समझने, सहिष्णुता के लिए सम्मान के संस्कार पैदा करने की आवश्यकता के लिए है साथ ही राष्ट्रीय विरासत को उजागर करने में महत्वपूर्ण है। यह विरासत कार्यक्रम शिक्षा में स्थानीय धरोहरों को लाने के लिए महत्वपूर्ण है। संस्कृति व विरासत की मदद से बच्चों के अनुभवों द्वारा एक लम्बा रास्ता तय करना है जो पाठ्यपुस्तकों की सामग्री को जिन्दा कर देगा। इसके लिए कई कार्यक्रम आयोजित किए जाए जैसे— स्थानीय विरासतों कस्बों, शहरों की विरासतों की ऐतिहासिकता का पता चल सके, संग्रहालयों आदि का भ्रमण करवाया जाए। निबन्ध व साहित्य प्रतियोगिताएं शामिल की जाए (स्थानीय भाषा में), बच्चों व सभी स्तरों पर रचनात्मक लेखन के लिए प्रोत्साहित किया जाए। विद्यालयों में उपदप.मगीपइपजपवदेध्नससमजपद बोर्ड लगाए जा सकते हैं। त्यौहार आदि के समय पर स्थानीय समारोह में शामिल किया जाए। विरासत सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी, वाद-विवाद, चर्चा, यात्रा आदि गतिविधियों का आयोजन किया जाए विरासत निर्मल स्थलों की ड्राइंग व चित्रकारी प्रतियोगिता रखी जाए। बुनियादी समझ को बढ़ाने के लिए वर्तमान व समकालीन लोगों से बातचीत उनकी तकनीको को समझने व समझाने के लिए समय-समय पर आमंत्रित किया जाए। छात्रों को लोक संगीत आदि को देखने, समझने के लिए कार्यक्रमों का आयोजन हो। इन गतिविधियों के बाद छात्र अपनी की गई यात्राओं का आकलन लिखित रूप में दिखाये कि उसने इसके माध्यम से क्या सीखा, उसे क्या लाभ हुआ है। छात्र स्वयं के परिवार के इतिहास व परम्पराओं का पता लगाए, बातचीत करे व लिखें। कला शिक्षा के समय मूर्ति, मेहराव, छतरियां, पेड़-पौधों का अंकन करवाया जा सकता है।⁵

विश्वविरासत का युवा हाथों में होना यह अच्छा संकेत है। अतः आजादी के बाद से हम अपनी राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं लेकिन औसतन छात्र अपने व अपने राज्य के बाहर के साहित्य से अपरिचित है समस्या पाठ्यक्रम में निहित अस्पष्टता, निर्जीवता, भारत की सांस्कृतिक निरन्तरता एकीकरण और विकास संबंधी जानकारी एकत्र करने में विफल रहा है इन सब खामियों को भुलाकर भारतीय आध्यत्मिकता सांस्कृतिक, नैतिक धारणा, धर्म परिवार, समाज और देश के लिए कर्तव्य है कि हम इसे समझे और अपने इतिहास विरासत व कला को सजो कर रखे।

मेरा इस लेख के माध्यम से केवल इतना बताना है कि इस प्रकार के अध्ययन से अगर शिक्षा की गुणवत्ता उसकी कार्यक्षमता में प्रगति होती है तो इतिहास को अपने मन मस्तिष्क में संजोकर रखने और संग्रहालयों, विरासतों से नये-नये ज्ञान को अपनाना चाहिये। कला द्वारा शिक्षा ग्रहण करना जैसे पृथ्वी की नैसर्गिक सुन्दरता को जानना है इसी के द्वारा एक खुशनुमा संसार बनाया जा सकता है जिसमें कला, परम्परा, इतिहास, विरासत का समावेश हो।

आज का कलाकार भी यही चाहता है कि वर्तमान शिक्षा कला व विरासत से जुड़ी हुई हो जिसे आने वाली पीढ़ियों के लिए इसे संजोना मुश्किल नहीं होगा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय शिक्षा में भारत की विरासत का घालमेल (मिशेल डेनिनो) www.heritageinindia.com
2. भारतीय संस्कृति और विरासत, www.heritageinindia.com
3. भारतीय शिक्षा में भारत की विरासत का घालमेल
4. यूनेस्को रिपोर्ट, नवम्बर 1999 (कला द्वारा शिक्षा), www.educationthroughart.com
5. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा मंडल, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, स्वात्तय संगठन, भारत सरकार "शिक्षा सदन", 17 एवेन्यू, नई दिल्ली, 5 नवम्बर 2011



डॉ. ज्योति शर्मा

प्रवक्ता, चित्रकला, सत्यसाई पी.जी. कॉलेज
जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' की कथावस्तु का काण्ड—अनुसार विवेचनात्मक अध्ययन

'रामचरितमानस' भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक लोकप्रिय दस्तावेज है। इसमें भारतीय लौकिक, अलौकिक तथा पारलौकिक तीनों चक्रों वाला इतिहास रूपी रथ मानो अपनी पूरी यात्रा समपन्न कर लेता है। इसमें मिथकवृत, इतिहासवृत तथा समाजवृत तीनों ही वृत भक्ति की धुरि पर घूम रहे हैं।

'मानस' भी एक ऐसा सरोवर है जिसके सम्पर्क से विषय वासनार्यें समाप्त हो जाती है तथा पाठक एवं दर्शक आनन्द की अनुभूति करता है। इसलिये इस महाकाव्य को विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में गिना जाता है।

तुलसीकृत 'रामचरित्रमानस' का मूलाधार अध्यात्म रामायण एवं 'वाल्मीकि रामायण' है। तुलसी कालजयी जनकवि है। उन्होंने वाल्मीकि की रामायण से प्रेरित होकर राम के सम्पूर्ण जीवन को आधार लेकर अवधी भाषा में 'रामचरित मानस' की रचना की।¹

'मानस' हिन्दुओं का कण्ठाहार है, क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या बौद्ध, क्या जैन और क्या तांत्रिक, सभी इसे प्रतिदिन पूजने एवं जीवन के कष्टमय या अन्धकारमय क्षणों में इससे अलौकिक आलोक प्राप्त करते हैं। मानस की इस सर्वप्रियता का रहस्य 'तुलसीदास' की समन्वयगर्भित भक्ति-भावना एवं सर्वमानवानुकूल आदर्शवाद ही है। यद्यपि 'वाल्मीकी' ने राम को लोक रक्षक, लोक नायक, मर्यादा पुरुषोत्तम एवं परब्रह्मा के रूप में निरूपित करने के लिये तुलसी वाञ्छित सिद्धांत में यंत्र-तंत्र परिवर्तन किया है, परन्तु मूलकथा में विकृति नहीं आने दी। उन्होंने मूलकथा को ही अधिकाधिक प्रभुविष्णुता प्रदान करने के लिए नव-नव प्रसंगों की उद्भावना की। यदि हम रामकथा के मूल रूप पर विचार करें तो मानसकार के ही शब्दों में उसे इस प्रकार कहा जा सकता है—

“एक राम अवधेश कुमार। तिन्ह कर चरित विदित संसारा।

नरि विरह दुख लहैउ अपारा। भयेउ रोष रन रावन मारा।”²

'डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र' के शब्दों में राम-कथा को इस प्रकार भी रखा जा सकता है—
“पिता का आदेश मानकर एक राजकुमार वन को जाते हैं, उनकी साध्वी सुकुमारी पत्नी भी

उनका साथ देती है। वहाँ एक प्रभुता मदान्ध सत्ताधीश इस साध्वी बाला को हरकर ले जाता है। जिसकी प्रतिक्रिया में वे राजकुमार वन्धों की सहानुभूति प्राप्त करते हैं और उनकी सहायता से ऐसे प्रबल प्रतिस्पर्धी को भी परास्त करके पत्नि को अन्मुक्त करते और आदेश पूर्ण होने पर पिता के राज्य का उपभोग करते हैं।³

रामचरितमानस के प्रमुख पात्र 'राम' हैं, अतः उनसे सीधा सम्बन्ध रखने वाली कथा ही मानस की मूल कथा है, जिसमें 1. रामजन्म, 2. रामविवाह, 3. राम—वनवास, 4. सीताहरण और खोज, 5. सीता की प्राप्ति और 6. अयोध्या वापस आना— ये प्रमुख घटनाएँ सम्मिलित हैं, जो जनक, परशुराम, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण आदि छोटे बड़े नामों से सम्बद्ध है। ये प्रासंगिक कथायें मूल कथा के विकास में पूर्णतया सहायक है। तुलसीदास ने मूलकथा और प्रासंगिक कथाओं में संस्कृत रामकाव्य की परम्परा का निर्वाह तो किया है परन्तु यथास्थान उनमें प्रयोग भी किए हैं जो उनकी मौलिकता के परिचायक हैं। रामकथा का प्रेरणा—काव्य वाल्मीकि कृत रामायण ही रहा है। तुलसी ने रामायण तथा रामकाव्य सम्बन्धी संस्कृत के अन्य ग्रन्थों से सामग्री का संकलन और बाहरी ढाँचा खडा किया परन्तु उस सामग्री का उन्होंने परिशोधन भी किया।

“जस कछु बुधि विवके बल मेरे।

तस कहिहउं हियं हरि के प्रेरे।”⁴

इससे संस्कृत रामकाव्य के कथानक सम्बन्धी दोषों का परिहार तो हो ही गया है, साथ ही परिवर्तन के द्वारा उन्होंने लोक—धर्म की प्रतिष्ठता स्थापित करने की चेष्टा भी है। इस प्रत्यन्त में वे पूर्णतया सफल भी रहे। यही कारण है कि रामचरितमानस को इतनी मान्यता प्राप्त हुई। इस प्रकार प्रबन्ध—सौष्टव, कवित्व और प्रभाव सभी के विचार से कवि की कृतियों में 'मानस' सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सम्पूर्ण 'मानस' सात काण्डों में विभक्त है। इसके सात काण्ड क्रमशः बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका और उत्तरकाण्ड है। प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में कुछ मंगलाचरणात्मक श्लोक संस्कृत में लिखे हैं। काण्डानुसार 'मानस' की संक्षिप्त कथावस्तु का विवेचनात्मक अध्ययन इस प्रकार है।

1. बालकाण्ड

प्रथम काण्ड में पहले संस्कृत में वाणी विनायक, भवानीशंकर, गुरु, कबीश्वर—कपीश्वर सीता और राम की वन्दना है। फिर भाषा में गणेश, दयालु, विष्णु, शिव और गुरु की स्तुति है तदनन्तर महीसुर, सुजन समाज, सन्त और असस्त से विन्ती की गयी है। अपनी दीनता और कवि कर्म की दुरुहता कहकर गोस्वामीजी ने रामचरित का वर्णन करने वाले कवियों, अबध, रसयू, पुन—नर—नारी, कौशल्या, रानियों के सहित दशरथ, परिजन—सहित विदेह, भरत, सौमित्रि, निपुसूदन, महावीर, हनुमान, कपिपति, भालुपति, निशाचरपति, अंगद आदि कीश, रघुपति, चरणों के उपासक सभी खग, मृग, सुर, नर, असुर की चरण वन्दना की। फिर शुक, सनकादि ओर नारद की कृपा की आकांक्षा की।

अन्त में जगतजननी जानकी और रघुनायक के चरण—कमलों की विनती की। राम नाम का गुण और महत्व बतलाया। नाम को राम से बड़ा सिद्ध किया। तब राम—कथा की परम्परा का उल्लेख किया। बतलाया कि जो कथा शम्भु ने उमा और काकभुशुण्डि को, भुशुण्डि ने याज्ञवल्क्य को और उन्होंने भरद्वाज को सुनायी थी और जिसे मैंने बार—बार अपने गुरु से सुना था वही मैं अपने मन के प्रबोध के लिए अपनी बुद्धि और अपने विवेक के बल पर, हरि की प्रेरणा से कहूँगा। राम के गुण—ग्राम की महिमा के उल्लेख के पश्चात् उन्होंने कहा कि कल्पभेद से कथा—भेद देखकर इसमें संशय नहीं करना चाहिये। फिर ग्रंथ का रचना—काल—नौमी, भौमवार, मधुमास, संवत् 1639 बतलाकर अवधपुरी में उसके प्रकट होने की सूचना की। तदनन्तर ग्रंथ के नाम का कारण बतलाकर और उसकी सार्थकता सिद्ध करने के लिए साङ्गरूपक का पूरा निर्वाह करते हुए मानस का विशद निरूपण किया और उस मानस से निकलने वाली कवितारूपी सरयू का अवयक रूपक अंकित किया। उसमें मानसिक अवगाहन करके शिव—पार्वती का स्मरण करते हुये कथा प्रारम्भ की।

वर्तमान में लोकहितकारी कथा के प्रारम्भ होने का उपक्रम होता है जिसके लिए कवि ने इतनी विशद प्रस्तावना की है। माघ में मकर स्नान के पश्चात् प्रयाग से याज्ञवल्क्य ऋषि विदा होने को थे भरद्वाज ने उन्हें रोक लिया। पूछा, 'राम कौन हैं' अवधेशकुमार ही वे राम हैं, जिनकी महिमा सन्त, पुराण, उपनिषद् आदि गाते हैं अथवा कोई दूसरे? क्या उन्हीं को त्रिपुरारि जमा करते हैं? इस मर्म को समझाकर मेरा भ्रम दूर कीजिये। ऋषि याज्ञवल्क्य ने सती के मोह, दक्ष के यज्ञ में उनके शरीर त्याग, फिर पार्वती के रूप में अवतार तथा पार्वती और शिव के विवाह का वर्णन किया। तदनन्तर बतलाया कि कैसे पार्वती ने शम्भु से अपने अज्ञान, भ्रम और मोह को दूर करने और पूरी राम कथा सुनने का अनुरोध किया। शिव ने जो कथा सुनायी उसका संक्षेप में उल्लेख है।

उन्होंने पहले अवतार का सामान्य प्रयोजन बतलाया, फिर कुछ विशेष प्रयोजन भी बतलाये। विप्र—शाप से जय—विजय, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप हुए। उन्होंने वाराह तथा नृसिंह अवतारों के हाथ प्राण त्यागे। फिर दूसरे जन्म में वही कुम्भकर्ण और रावण हुए। उन्हें मारने के लिए राम का अवतार हुआ। एक कल्प में कश्यप और अदिति ने तप किया। वे दशरथ और कौशल्या हुए। उनके यहां अवतार लेकर राम ने उन्हें पिता—माता बनाया। एक कल्प में हरि ने जलन्धर का वध करने के लिए उसकी पत्नी वृन्दा के साथ छल किया। उनके शाप से उन्हें अवतार लेना पड़ा। जलन्धर ही रावण हुआ। उसे राम ने परमगति दी। एक कल्प में नारद ने विश्वमोहिनी का वरण करना चाहा। हरि ने नारद को वानर मुख प्रदान कर ऐसा न करने दिया। उनके शाप से उन्हें अवतार लेना पड़ा। किसी कल्प में मुन और शतरूपा ने घारे तप किया। कृतज्ञ कृपालु ने प्रकट होकर उनको वरदान दिया कि मैं नर—वेश धारण कर तुम्हारे इच्छानुसार तुम्हारा पुत्र होऊँगा, अपने अंशों के सहित अवतार लेकर नर—चरित्र करूँगा। फिर

याज्ञवल्क्य ने कैकय देश के परम प्रतापी और धर्मात्मा प्रतापभानु की कथा सुनाई और बताया कि किस प्रकार विप्रशाप से वह अपने कुटुम्ब के सहित निशाचर हुआ। प्रतापभानु रावण हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थी। प्रतापभानु का अनुज अरिर्मर्दन दूसरे जन्म में रावण का अनुज कुम्भकर्ण हुआ और उसका मन्त्री धरमरुचि रावण का सौतेला भाई विभीषण हुआ। प्रतापभानु के सभी पुत्र, सेवक आदि भी राक्षस हुए। वे बड़े निर्दयी, पापी और लोकपरितापी थे। रावण, कुम्भकरण और विभीषण ने उग्र तप किया। जगदीश और ब्रह्मा प्रकट हुए। रावण ने वर मांगा कि मैं वानर और मनुष्य छोड़ किसी और के हाथ से मारा न जाऊँ, कुम्भकर्ण ने मांगा कि मैं छः महीने सोता रहूँ और विभीषण ने भगवन्त के चरणों के प्रति अनुराग की याचना की। रावण ने भय की पुत्री मन्दोदरी से विवाह किया। समुद्र के बीच त्रिकूट पर्वत पर बसी लंका को अपनी राजधानी बनाया। वहाँ उसका परिवार बढ़ने लगा। उसका पुत्र मेघनाद इन्द्र—विजेता हुआ। अन्य वीर भी जगद्विजयी थे। रावण के सामने देवता न ठहर सके। उनको परास्त करने के लिये उसने राक्षसों को आज्ञा दी कि संसार से ब्राह्मण—भोजन, यज्ञ और श्राद्ध मिटा दो। चारों ओर राक्षस फैल गये। सारी सृष्टि पर रावण का आतंक छा गया। उसने देव, यज्ञ, गन्धर्व, किन्नर, नर, नाग सभी को जीत लिया। उनकी बहुत सी सुन्दर स्त्रियों का वरण किया। राक्षसों ने धर्म निर्मूल करने की ठानी। गो—ब्राह्मण नष्ट कर दिये। सदाचार का दर्शन दुर्लभ कर दिया। देव, गुरु, विप्र को अमान्य बना दिया। हरि—भक्ति, या, तप, दान, वेद, पुराण को मिटा दिया। संसार आचार—भ्रष्ट हो गया।

पृथ्वी के लिए यह असहनीय हो गया। वह गोरूप में देवताओं के सामने उपस्थित हुई। देवता, मुनि, गन्धर्व मिलकर विरन्धि के सामने पहुंचे और विचार करने लगे कि कहां चलकर प्रभु को यह विपत्ति सुनायें। शिव के परामर्श से सबने मिलकर आर्त हो प्रार्थना कर। तब आकाशवाणी हुई— 'तुम डरो मत। मैं तुम्हारे लिए नर—वेश धारण करूँगा। अपने अंशों के सहित सूर्य वंश में प्रकट होऊँगा। दशरथ—कौशल्या के घर अवतार लूँगा। नारद का शाप पूरा होगा। मैं पृथ्वी का भार उतारूँगा।' पृथ्वी को ढांढास बंधाकर देवता अपने—अपने लोक चले गये। फिर वे वानररूप धरकर वन में हरि के आगमन की बात देखने लगे।

इधर अयोध्या में कश्यप और अदिति दशरथ और कौशल्या के रूप में अवतीर्ण हुए। वृद्ध होने पर पुत्र के अभाव से दशरथ को ग्लानि हुई। उन्होंने गुरु वशिष्ठ के परामर्श से श्रृंगी ऋषि के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। अग्नि ने प्रकट होकर हवि दिया। राजा ने उसे अपनी तीन प्रधान रानियों में बांट दिया। सबने गर्भ धारण किया। चैत का महीना आया। शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, अभिजित नक्षत्र, मध्याह्न। 'अखिल लोक विश्राम जगनिवास प्रभु' कौशल्य की गोद में प्रकट हुए। कैकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न हुए। अयोध्यापुरी आनन्द—मग्न हो गयी। यथासमय राजकुमारों का नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयन और विद्यारम्भ हुआ। कुछ समय के पश्चात् या में निशाचरों के उत्पातों से ऊब कर विश्वामित्र दशरथ के पास आये। राजा

ने वशिष्ठ के समझाने बुझाने पर राम-लक्ष्मण को ऋषि के साथ भोजना स्वीकार किया। विश्वामित्र ने उन्हें धनुर्वेद सिखाया। भूख-प्यास से मुक्त रहने वाली विद्या सिखलायी। अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। फिर राम-लक्ष्मण के संरक्षण में निर्विघ्न यज्ञ को पूरा किया। यज्ञ-विरोधी ताडका और सुबाहु का वध हुआ और मारीच ने राम के बाण की चोट से व्याकुल हो समुद्र के पार जाकर अपने प्राण बचाये।

विश्वामित्र की प्रेरणा से राम-लक्ष्मण धनुष-यज्ञ देखने जनकपुर गये। राम ने अनायास धनुष तोड़ दिया। धनुष-भङ्ग की सूचना पाकर परशुराम वहाँ आये। लक्ष्मण ने उनकी खिल्ली उड़ायी, परन्तु उन्होंने राम की गम्भीरता, शिष्टता और शान्ति से प्रभावित होकर उनको अपना धनुष सौंपकर उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की। फिर अयोध्या से बारात लेकर दशरथ आये। सीता और राम का विधिवत् विवाह हुआ। अन्य तीनों कुमारों का भी वहीं विवाह हो गया। बहुत दिनों तक इसकी धूम रही। दशरथ अपने चारों कुमारों और उनकी वधुओं को लेकर अयोध्या लौटे। वहाँ बहुत दिनों तक आनन्द होता रहा।

2. अयोध्याकाण्ड

शिव, राम की मुखश्री, सीता-सहित राम की संस्कृत में तथा गुरु के चरण-सरोज की भाषा में वन्दना करने के पश्चात् द्वितीय काण्ड की कथा चलती है। इसके प्रारम्भ होते ही राम के अभिषेक की योजना के लिए सजी हुई अयोध्या दिखलायी पडती है। देवताओं ने देखा कि जिस प्रयोजन से प्रभु का अवतार हुआ है उसमें बाधा उपस्थित हो रही है। उनकी प्रेरणा से सरस्वती ने कैकेयी की दासी मन्थरा की मति फेर दी। उसके उल्टा-सीधा समझने पर कैकेयी ने दशरथ को वचन-बद्ध करके राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास और उनके स्थान पर भारत के लिए युवराज का पद मांग लिया। अयोध्या में कोहराम मच गया। सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन गये। सुमन्त्र उन्हें रथ पर बैठाकर सिंगरौर तक पहुंचाने गये। वहां से राम ने उन्हें किसी प्रकार लौटा दिया। वहां गुरु ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। मार्ग में भरद्वाज और वाल्मीकि से मिलते और ग्रामवासियों को नेत्र-सुख देते हुए चित्रकूट पहुँचे। इधर राम के न लौटने की सूचना सुमन्त्र से पाकर दशरथ ने पुत्र-वियोग में प्राण त्याग दिये।

तब भरत ननिहाल से बुलवाये गये। उन्होंने अयोध्या का सर्वनाश देखा। सबके समझाने पर भी राज्य करना स्वीकार न किया। वे राम को अनुनय-विनय करके लौटा लाने के लिए चित्रकूट गये। वहाँ जनक भी पहुँचे। कई बार सभाएँ हुईं। सबने बहुत प्रयत्न किये, किन्तु राम अपने पिता को मिथ्याभाषी सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत न हुए। भरत ने उनकी पादुकाएँ लेकर उनके प्रतिनिधि के रूप में राज-काज संभालने में ही लोक हित समझा। वे लौटकर नन्दिग्राम में तपस्वी की भाँति, सभी सुखोपभोगों से निलिप्त और निरन्तर राम के स्मरण में मग्न रहते हुए राम-राज्य की देख-रेख का समुचित प्रबन्ध करने लगे।^९

3. आरण्यकाण्ड

इसके अनन्तर तीसरे काण्ड की कथा के आरम्भ होने के पहले शंकर और राम की स्तुति से संस्कृत में मंगलाचरण हुआ और फिर शिव ने पार्वती से कहा कि— रामचन्द्रजी को चित्रकूट में रहते बहुत दिन हो गये और यहां तो मुझे सबने जान लिया है। इससे मेरा वास्तविक रूप प्रकट हो जायेगा। उसे सबने जान लिया है। इससे मेरा वास्तविक रूप प्रकट हो जायेगा। उसे छिपाने के उद्देश्य से उन्होंने अन्यत्र जाने का निश्चय किया। वे अत्रि ऋषि से विदा लेने पहुंचे। अनुसूया ने सीता को नारी धर्म बताया। ऋषि ने उनकी स्तुति की और फिर विदा दी। मार्ग में राम शरभंग के आश्रम गये। उन्होंने उनकी भक्ति का वरदान मांगते हुए योगाग्नि से शरीर त्यागा। पीछे—पीछे मुनियों का समूह और आगे—आगे राम वहां से आगे बढे। उन्होंने राक्षसों के खाये हुए मुनियों की अस्थियों का समूह देखा। प्रण किया कि मैं पृथ्वी को निशाचर—रहित करूँगा। फिर वे सुतीक्ष्ण की भक्ति को सफल करते हुए कुम्भज ऋषि के पास गये। उनके परामर्श से उन्होंने दण्डकारण्य में पर्णकुटी बनाकर निवास किया। वहां गिद्धराज जटायु से मिले। लक्ष्मण को भक्तियोग समझाया। दण्डकारण्य में कुछ दिनों के अनन्तर रावण की बहन शूर्पणखा उन्हें देखकर मोहित हो गयी। उसने अपनी आसक्ति प्रकट की। लक्ष्मण ने उनकी नाक काट कर उसे कुरूप कर दिया। वह खर दूषण को बुला लायी। राम ने अकेले ही उनको चौदह सहस्र राक्षसी—सेना सहित धराशायी कर दिया। रावण को जब यह समाचार मिला। तो उन्होंने यह सोचा कि खर—दूषण तो मेरे समान बलवान हैं, उन्हें भगवान ही मार सकते हैं। अब मैं उनका हठपूर्वक वैर करूँगा और उनके हाथ से प्राणत्याग कर भव—सागर पार करूँगा। उसने मारीच की सहायता से सीता—हरण किया। जटायु ने सीता की रक्षा करनी चाही, परन्तु प्राण गंवाये। रावण ने सीता को अशोक—वन में रखा। मारीच—वध के पश्चात् लौटकर राम ने आश्रम को सूना पाया। वे लक्ष्मण को साथ ले सीता को ढूंढने निकले। मरणासत्र जटायु ने उन्हें सीता—हरण की सूचना दी। उसकी अन्त्येष्टि करके राम वहां से आगे चले। शबरी का आतिथ्य स्वीकार करते हुए उसके कहने से सुग्रीव की खोज में पम्पा सरोवर पहुंचे। वहां नारदमुनि मिले। राम ने उनको सन्तों का गुण और स्वभाव बतलाया।⁶

4. कष्किन्धाकाण्ड

यह सोपान संस्कृत में सीतान्वेषण में तत्पर राम की स्तुति और भाषा में काशी की महिमा कहने के पश्चात् राम के पम्पासर से चलकर ऋष्यमूक पर्वत पहुंचने की कथा से प्रारम्भ हुआ। वहां उनसे हनुमान के द्वारा सुग्रीव की मित्रता हुई। फिर बालि और सुग्रीव की लड़ाई और बालि—वध के पश्चात् सुग्रीव का राजतिलक, राम का प्रवर्षणा गिरि पर वर्षा—काल में निवास और शरदारम्भ में सीता की खोज के लिए हनुमान आदि का प्रस्थान एवं सम्पाति से सीता के अशोकवाटिका—निवास का वर्णन हुआ।

5. सुन्दरकाण्ड

यह काण्ड संस्कृत में रघुवर और हनुमान की वन्दना से प्रारम्भ हुआ। इसमें हनुमान के पुरुषार्थ का प्रदर्शन है। उन्होंने मैनाक के आश्रय की आवश्यकता न समझी, सुरसा का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, सिंहिका का वध किया और लंका में प्रवेश करके सीता का अन्वेषण किया। विभीषण से भेंट की। फिर उनकी बतलाई हुई युक्ति से सीताजी के दर्शन किये। पेड़ के ऊपर से वे कुछ समय तक वियोगिनी सीता को देखते रहे। इतने में रावण ने आकर सीता को फुसलाने की बहुत चेष्टा की। उन्होंने उसे फटकार दिया। तब उसने धमकाया कि महिने भर में मुझे वरण करो, नहीं तो प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। सीता को राक्षसियां सताने लगी। वे व्याकुल हुईं। त्रिजटा ने अपने स्वप्न की चर्चा करके उन्हें धीरज बंधाया। सीता ने अशोक वृक्ष में आग मांगी। इतने में हनुमान ने राम-नामांकित मुंदरी फेंकी। फिर उनके सामने प्रकट होकर उन्हें राम का सन्देश सुनाकर सन्तोष दिया। वन उजाडा, अक्षर-कुमार को मारा और स्वेच्छा से बन्दी होकर रावण की सभा में प्रवेश किया। उसे समझाया। रावण ने उनके वध की आज्ञा दी। उनकी पूंछ पर कपड़े लपेटे गये। ऊपर से तेल डाला गया। फिर आग लगा दी गयी। लंका-दहन हुआ। फिर सीताजी से चूडामणि लेकर हनुमान ने उनका समाचार राम को सुनाया। सेना लेकर राम समुद्र-तट पर पहुँचे। उधर रावण से अपमानित हो विभीषण राम की शरण आया। उसके पीछे-पीछे रावण के गुप्तचर आये। वे पकड़ लिये गये। लक्ष्मण ने उनके द्वारा रावण के पास सन्देश भेजा। रावण ने उन्हें मार भगाया।⁷

6. लंकाकाण्ड

मंगलाचरण में राम और शिव की संस्कृत में तथा राम की भाषा में वन्दना के पश्चात् कथा का प्रारम्भ हुआ। समुद्र पर सेतु बंधा उस पर चढ़कर सेना ने सागर पार किया। यह समाचार सुनकर रावण दहल गया। मन्दोदरी और प्रहस्त ने उसे समझाया। उसने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। वह जाकर नाच-रंग में मग्न हो गया। उधर राम ने सुबेल-शिखर पर शिविर स्थापित किया। उन्होंने रंगशाला में बैठे रावण के छत्र-मुकुट और मन्दोदरी के ताटक अपने बाण से गिरा दिये। इस पर वहाँ सबको आश्चर्य हुआ। फिर अंगद राम का दूत बनकर रावण की सभा में गया। उसने रावण को बहुत फटकारा। रावण का मानमर्दन किया। उसके चले आने पर मन्दोदरी ने रावण को फिर समझाया। रावण ने उसकी एक न सुनी।

इधर अंगद ने आकर लंका के सब समाचार श्रीराम को सुनाये। राम ने वानर-भालू सेना को यथायोग्य सेनापतियों के अधीन चार टोलियों में विभाजित किया। उन्होंने लंका पर चारों ओर से आक्रमण किया। बड़े-बड़े योद्धाओं का संहार किया। निशाचरी सेना के पांव उखड़ गये। वह भाग खड़ी हुई। इस पहले आक्रमण में ही आधी सेना काम आयी। इससे रावण की सभा घबरा गयी। फिर दूसरे दिन मेघनाद और लक्ष्मण का भीषण युद्ध हुआ। वीरघातिनी सांगी लगने से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। इस पर राम विचलित हो गये और विलाप करने लगे। हनुमान ने

रात बीतने से पहले ही संजीवनी लाकर सुषेण वैद्य से लक्ष्मण का उपचार कराया। वे उठ बैठे। अगले दिन राम ने कुम्भकर्ण का वध किया। फिर लक्ष्मण ने मेघनाद का अन्त किया। तत्पश्चात् कई दिनों तक राम—रावण का लोमहर्षणा संग्राम हुआ। अन्त में राम की विजय हुई। सीता आकर राम से मिलीं। उनकी अग्नि—परीक्षा हुई। तदनन्तर ब्रह्मा, दशरथ और इन्द्र ने विजेता राम की स्तुति की। इन्द्र की सुधावृष्टि से शुद्ध में मरे हुए वानरभालू जी उठे। फिर शिव ने आकर राम की प्रार्थना की। विभीषण का राजतिलक हुआ। उसके द्वारा प्रदत्त पुष्पक विमान पर चढ़कर राम चुने हुए सहचरों और लक्ष्मण तथा सीता के साथ अयोध्या के लिए चल पड़े। प्रयाग पहुंचकर उन्होंने हनुमान को भरत के पास अपने आगमन की सूचना देने भेजा।

7. उत्तरकाण्ड

संस्कृत में राम और शिव की वन्दना के अनन्तर इस सोपान की कथा आरम्भ हुई। राम की प्रतीक्षा में चिन्ता—मग्न भरत को हनुमान ने प्रभु के आने की सूचना दी। पलक मारते—मारते वह प्रिय समाचार फैल गया। सारी अयोध्या उमड़ आयी। पुष्पक विमान से उतरकर राम सबसे मिले। फिर उनका राज्याभिषेक हुआ।

राम के राज्याभिषेक के समय ब्रह्मादि देवता आये। उन्होंने तथा वन्दी—वेषधारी वेदों ने और अन्त में शिव ने स्तुति की। कुछ दिनों के पश्चात् राम ने सब सखाओं को विदा किया। सेवा के लिए हनुमान रूक गये। अयोध्या में राम—राज्य स्थापित हुआ। प्रजा सुखी हुई। पृथ्वी धन—धान्य से भर गयी। बीच—बीच में नारद, सनकादि आते और लौटकर प्रभु के चरित्र को ब्रह्मलोक में सुनाया करते। राम ने पुरवासियों में अपने सिद्धान्त और आदर्श बतलाये। अन्त में एक दिन शीतल अमराई में जाकर विश्राम किया। वहाँ नारद आये। उन्होंने स्तुति की। फिर शोभा—सिन्धु को हृदय में रखकर वहाँ से प्रस्थान किया।

रामचरित का वर्णन यहीं तक चला। आगे उमा के पूछने पर शिव ने भुशुण्डि के द्वारा गरुड़ को रामचरितमानस सुनाने का वर्णन किया। भुशुण्डि ने अपने पूर्व जन्मों की कथा सुनायी। उसी से प्रसंग में कलिधर्म का निरूपण किया। भक्ति और ज्ञान का अन्तर बतलाते हुए दोनों में समन्वय किया। तदन्तर कथा के कागभुशुण्डि गरुड़, उमा—शम्भु और भरद्वाज—याज्ञवल्क्य इन तीनों संवादों का उपसंहार हुआ। गरुड़ ने भुशुण्डि से और पार्वती ने शिव से राम के सम्बन्ध में अपने सन्देह और भ्रम के दूर होने और कृतकृत्य होने की स्वीकृति दी। अन्त में कवि ने अपने मानसिक विश्राम का उल्लेख करते हुए राम से अज्ञान—शान्ति की याचना की और संस्कृत के दो श्लोकों में रामचरितमानस में भक्तिपूर्वक अवगाहन करने का फल कहा। इस प्रकार इस महान ग्रन्थ की समाप्ति हुई। वर्तमान में "रामचरितमानस" एक सार्वभौतिक कथा बन गई।⁸

संदर्भ ग्रन्थ

1. तुलसीदास, रामचरित्रमानस, टीका गोविन्दजी, दिल्ली, रत्न एण्ड कम्पनी, प्रथम संस्करण

2. रामचरितमानस, बालकाण्ड 45/7-8
3. बलदेव प्रसाद मिश्र; मानव में रामकथा, पृ. 12
4. रामचरितमानस, बालकाण्ड, 30/3
5. मानस, आयोध्याकाण्ड, 189-193
6. मानस, अरण्यकाण्ड, 15
7. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, 5-8
8. तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 15



डॉ. वीना बंसल

प्रवक्ता, चित्रकला, श्रीगंगानगर

राजस्थान

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

भारतीय व्यंग्य चित्रकार : सुधीर तैलंग

भारत में यदि राजनैतिक व्यंग्य चित्रकारों की गिनती की जाए तो तथ्यानुसार बहुत ज्यादा नहीं है। व्यंग्य चित्रकार सुधीर तैलंग के शब्दों में —"Cartoonists, like tigers are an endangered species in the country. But we are not as ferocious."

सुधीर तैलंग, **चित्र संख्या-1द्व** ने अपना पहला व्यंग्यचित्र — 10 वर्ष की आयु में बनाया और अपना कार्य 'इल्युस्ट्रेड वीकली ऑफ इण्डिया' मुम्बई में सन् 1982 में आरम्भ किया। 1983 में उन्होंने 'नवभारत टाइम्स' जो दिल्ली से प्रकाशित होता था, में 'ज्वाइन' किया और अपने जीवन की लम्बी अवधि, 17 वर्ष तक यहां कार्यरत रहे। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में जाने से पूर्व उन्होंने छोटे से समय अन्तराल के लिए 'इण्डियन एक्सप्रेस' और 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में कार्य किया। वर्तमान में 'एशियन एज' नामक 'एडिशन' के लिए समकालीन राजनीति से सम्बन्धित व्यंग्य चित्र बनाकर नवीन भूमिका अदा कर रहे हैं।



कैरीकेचर, स्वयं सुधीर तैलंगद्व — सुधीर तैलंग
'राजस्थान पत्रिका', इतवारीद्व — 19 मार्च, 2000
;चित्र संख्या — 1द्व

सुधीरे तैलंग कहते हैं कि राजनीतिक व्यंग्य चित्र एक तरह से 'दृश्य सम्पादकीय' ; जो लेखनी से सम्बंधित होता है। द्ध को रेखांकित करते हैं ; **चित्र संख्या-2द्**। इन्हीं के शब्दों में—

राजनीतिक व्यंग्य चित्र – सुधीर तैलंग
'हिन्दुस्तान टाइम्स' – 12 जुलाई, 2004
;चित्र संख्या – 2द्

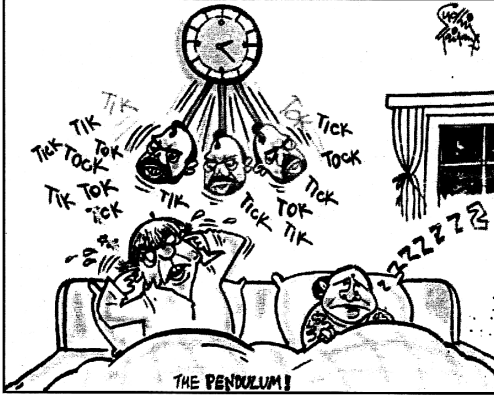
“A Cartoon is a political comment. A political cartoonist draws a visual editorial, and also manages to make fun people and situations that some editorial writers may not have the liberty to do.”

यदि कोई भी व्यंग्य चित्रण कला को व्यवसाय के रूप में अपनाना चाहे तो उसके लिए उस व्यक्ति में रेखांकन की योग्यता, विश्वस्तरीय पत्रकारिता वाली दृष्टि और इन सबसे महसूस किए विचारों को कागज पर उतारने की योग्यता का होना आवश्यक है हालांकि इसका भविष्य बहुत ज्यादा उज्ज्वल नहीं है “मैं इस सम्बन्ध में भाग्यशाली रहा हूँ” लेकिन फिर भी यदि कोई इस विधा में आगे बढ़ना चाहता है तो उसे धैर्य के साथ अपना कार्य करते रहना चाहिए। मैंने कभी भी कला से सम्बन्धित कोई पढ़ाई नहीं की। मेरा विषय ग्रेजुएशन में विज्ञान रहा और बाद में पोस्ट ग्रेजुएशन में अंग्रेजी साहित्य रहा था और इस विधा के लिए आपको कोई सिखा भी नहीं सकता। इसलिए कागज, कलम और कूची से स्वयं ही आगे बढ़ना होगा। बढ़ते बाजार वाद में इस विधा में स्वयं को स्थापित करना मुश्किल जरूर है पर नामुमकिन नहीं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ समय बदल रहा है अब इस क्षेत्र में बहुत सम्भावनाएं इसलिए बढ़ रही हैं क्योंकि 'इलैक्ट्रानिक मिडिया' अपने पांव पसार रहा है। एनिमेशन ने भी अपना अलग स्थान बना लिया है। पर प्रिन्ट मिडिया में अब भी स्थान बनाने के लिए अत्यधिक परिश्रम करना पड़ सकता है इसके लिए स्वतंत्र रूप से कार्य करके अपने कार्य को विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को दिखाया जा सकता है। मैंने खुद ने 'द हिन्दु' के लिए सम्पादक को व्यंग्य चित्रों के जोड़े भेजे और उन्हें मेरा काम पसंद आया, उन्होंने मुझे अपने अखबार में कार्य करने का निमंत्रण दे दिया।'

सुधीर तैलंग व्यंग्य चित्रों के विषय के सम्बन्ध में कहते हैं – ‘नरसिम्हाराव मेरे व्यंग्यचित्रों की दुनिया के हीरो थे’ उनके उठे हुए होंठ से उनके व्यंग्य चित्र में जीवन्तता आ जाती थी। मेरे अन्य पसन्दीदा किरदारों में लालकृष्ण आडवाणी रहे हैं। वे मेरे कौरीकेचर को बहुत पंसद किया करते थे।

लालू प्रसाद यादव पर व्यंग्य चित्र – सुधीर तैलंग
‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ – 27 जनवरी, 1990
;चित्र संख्या – 3द्व

लालू प्रसाद यादव चित्र संख्या-3द्व भी पसन्दीदा किरदारों में से एक हैं, मैंने उनका एक व्यक्ति



हुत ही दय्युल नजर आते हैं, वे हमेशा मेरे कार्य को सरहाते आये हैं।
ई के बारे में तैलंग कहते हैं कि 'मैं किसी परिस्थिति या व्यक्ति पर कार्य
विषय की गहराई के लिए सिर्फ व्यक्ति को जानना ही काफी नहीं है
गाएं भी ध्यान में रखनी पड़ती हैं। यह एक व्यक्ति चित्र के रेखांकन के
माद में उस व्यक्ति के बारे में पढ़ता हूं उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में
मान में बाकी अखबारों में उसके विभिन्न चित्रों का अध्ययन करता हूं
ह केवल इसलिए ताकि जब मेरे हाथ कागज या कैनवस पर चलें तो,

कोई भी व्यंग्य चित्र विशिष्ट कैसे बन सकता है इसके लिए तैलंग कहते हैं – “कार्टून किसी भी भाषा में बनाइए यदि वह असरदार है तो असर पड़ेगा ही। हिन्दी का एक बढ़िया व्यंग्य चित्र, अंग्रेजी में घटिया नहीं हो जायेगा। सवाल तो स्वयं को रोज सुधारने और मांजने का है। मैं हर रोज सोचता हूं कि आज कल से बेहतर कार्टून बनाऊंगा, न सिर्फ डिजाइन के स्तर पर, विचार के स्तर पर भी बेहतर व्यंग्य चित्र बनाना चाहता हूं। यह मेरी रोज की जिद है।”

मैं मानता हूं आज मेरा दायरा बहुत बढ़ गया है। ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ जैसे अखबार में काम करने का अपना अलग ही मजा है ;चित्र संख्या-4द्व। यह वह जगह है जहां शंकर ने देश में व्यंग्य चित्रण कला के बीज बोये थे, उस कुर्सी पर बैठने की अपनी खुशी तो होती ही है।

अनियन्त्रित होती 'ब्लू लाईन बस' पर व्यंग्य चित्र – सुधीर तैलंग
'हिन्दुस्तान टाइम्स' – 17 जुलाई, 2008
;चित्र संख्या – 4६

जब मैंने यहां ज्वाइन किया तो मुझसे मेरे ही शुभचिन्तकों ने कहा – “खत्म हो जाओगे, उस पार्टी के खिलाफ व्यंग्य चित्र नहीं बनाने दिया जाएगा।” पर मैंने पाया वैचारिक प्रतिबंध न आना था और न ही आ पाया।

कई बार मुझे लगता है यह देश व्यंग्य चित्रकारों के लिए ही आविष्कृत किया गया था। आजादी की लड़ाई में हजारों लोगों ने इसलिए कुर्बानी दी थी कि एक दिन हमारे देश के सारे नेता मिलकर व्यंग्य चित्रकार नाम के जीव की सेवा करेंगे, न कि जनता की। मैं मानता हूँ कि सारे नेता आज पूरे वक्त व्यंग्य चित्रकारों के लिए ही काम कर रहे हैं।^१

तैलंग ने दूरदर्शन के लिए कुछ एनिमेशन फिल्में भी बनाई हैं और दो फिल्में कार्टून कला से सम्बन्धित बनाई है। तैलंग ने दूरदर्शन के लिए 'मेरा स्टूडियो मेरा मेहमान' में निर्देशन किया है और एंकर की भूमिका अदा की है। जिसमें विविध कला विधाओं में पारंगत कलाकारों जैसे गुलजार, गीत लेखक, सतीश गुजराल, मूर्तिकार और अन्य के साथ उनके अनुभवों को लोगों के सामने प्रस्तुत किया है।

हर तरह व्यंग्य चित्रण विधा को पालने पोषने वाले इस कलाकार ने भी आरम्भ में एक पत्रकार झोलेधारी चश्मा लगाने वाले व्यक्तित्व को लक्ष्मण के 'आम आदमी' की तरह अपने व्यंग्य चित्रों में दर्शाया जो कि अब गायब है। इनके राजनीतिज्ञों के सम्बन्धित व्यंग्य चित्र हमेशा ही प्रभावशाली रहे हैं। सुधीर तैलंग ने समकालीन व्यंग्य चित्रकारों में अपने लिए विशिष्ट स्थान बना लिया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. The Tribune - Jobs & careers, August 31, 2005 - Course chat "Sense of humour-a-must for cartoonist's job", Vibha sharma
2. Pallavi Goorha, NEWS, Agency faqs! New Delhi, July, 19, 2005
3. धर्मयुग, 16 अगस्त, 1993, हाशिये पर, अपनी निगाह में, विभा चौधरी, पृ. 22

डॉ. इतिका चौहान

प्रवक्ता चित्रकला

जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

राजा रवि वर्मा के चित्रों में नारी रूप : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

नारी रूप ने कलाकार को सदैव ही प्रभावित किया है। सभी कलाओं का एक ही उद्देश्य रहता है नारी रूप की अभिव्यंजना। इसके लिये वह अपनी कलाओं में अपनी कल्पनाओं से प्राण डालने का कार्य करने में नहीं चूकते हैं।¹

भारतीय चित्रकला के विकास क्रम में जो भी परिवर्तन हुए उनका प्रभाव नारी रूपांकन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। भारतीय रूपपद्म कला में नारी रूप की उपस्थिति ने नारी को धार्मिक भावना से अर्चना योग्य साथ ही, उसे सामाजिक दृढ़ता भी प्रदान की है।²

नारी रूप में प्रस्तुत करते समय नारी के प्रति भारतीय सम्मान व सौन्दर्य भावना बनी रही। इस पर काव्य व साहित्य का प्रभाव भी दिखाई देता है।

नैसर्गिकतावादी चित्रण पद्धति पर सफल प्रभुत्व प्राप्त करने वाले राजा रवि वर्मा भारतीय चित्रकारों में सर्वप्रथम चित्रकार थे, जिन्होंने तैल माध्यम में चित्रण कार्य किया।³ सांस्कृतिक पुनरुत्थान काल में जब कला अन्तर्जिज्ञासा रंग रूप रेखाओं से मुखरित हो रही थी, उस उषा बेला में राजा रवि वर्मा ने एक नई दिशा की खोज की व नई पद्धतियों का सूत्रपात किया।

राजा रवि वर्मा का जन्म 29 अप्रैल 1848 ई. को केरल के किलीमान्नूर गांव में हुआ था। जब रवि वर्मा ने चित्रांकन आरंभ किया तब मुगल व राजपूत शैलियों का पतन हो चुका था। दिल्ली लखनऊ, पटना तथा तंजौर आदि में प्रतीत और संकर शैलियाँ, प्रचलित हो गई थी। उन्होंने तंजौर से ही चित्रांकन प्रारम्भ किया अतः भारतीय कलाओं में तैल माध्यम के अग्रदूत के रूप में राजा रवि वर्मा सामने आये। जहां तक विषय वस्तु का सम्बन्ध है, बंगाल का पुनरुत्थान आंदोलन देश की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष के उग्र वातावरण के मध्य उत्पन्न हुआ जिस समय अंग्रेजी साहित्य व सभ्यता का भूत बुरी तरह सवार था, ऐसे वातावरण में भारत के प्राचीन विषयों को लोकप्रिय बनाने का सराहनीय कार्य रवि वर्मा ने किया।⁴

राजा रवि वर्मा ने अपने चित्रों में नारी रूपाकारों का यथार्थ रूप प्रदत्त किया। इनकी अधिकांश नारी रूपाकृतियों दक्षिण भारतीय नारी से प्रेरित रही। इन्होंने नारी का विभिन्न मानसिक अवस्थाओं को अंकित किया।

‘मोहिनी रूगमांगदा’ नामक चित्र में अंकित नारी आकृति की वेशभूषा दक्षिण भारतीय परम्परा को दर्शाती हैं व बाईं ओर खड़ी आकृति की मुद्रा से उसके शरीर के हृष्ट-पुष्ट अंकन का आभास भी होता है। हाथों की मुद्रायें यथार्थ, व रौबदार व्यक्ति का अंकन द्रष्टव्य हैं। इसी चित्र में दूसरी ओर मूर्छित अवस्था में निढाल नारी आकृति का अंकन, साथ ही नाटकीयता से परिपूर्ण पारिवारिक परिस्थितियों को दिखाया है। राजा रवि वर्मा के चित्रों में नारी का दैहिक, गठन हाथों की लयात्मकता सौम्यता, अंगुलियों का गठन व बनावट यथार्थरूप में चित्रित है।

“चांदनी रात में सुन्दरी” (चित्र संख्या -1) में नारी आकृति को नदी के किनारे चाँद के प्रकाश में एक हाथ में पल्लू सँभालते हुए अंकित किया है। व्यवस्थित शारीरिक गठन, बैठते समय हाथ पैरों की भंगिमा व देह में पर्याप्त संतुलन दिखता है। तीखे नैन-नक्श के साथ सादा व्यक्तित्व नारी आकृति में रचा बसा है। साड़ी की चुन्नटों को छाया प्रकाश द्वारा इस प्रकार अंकित किया गया है कि नारी की पुष्ट आकृति का आभास होता है। राजा रवि वर्मा के अन्य चित्र “लावर गर्ल” में नारी की सौम्य व सरल प्रभावपूर्ण छवि परिलक्षित होती है। वस्त्रों के माध्यम से लम्बी, छरहरी काया को दर्शाया है। स्त्री को पेड़ का अवलम्बन लिये लयात्मकता से परिपूर्ण, सहज व सादी आभा से युक्त चेहरों पर सौम्यता व संतोष प्रकट किया गया है। लावर गर्ल की मुद्रा अजन्ता की नारी मुद्रा से प्रभावित प्रतीत होती है। रवि वर्मा ने चित्रों में नारी देह का अंकन यथार्थ रूप में किया है, परन्तु इनकी नारी भारतीय परम्परा से ओत-प्रोत है। इनके चित्रों में धार्मिक भावों से युक्त नारी रूप में परोपकार की भावना भी प्पाप्त है।

(चित्र संख्या -1)

“मन्दिर में दान देते हुए” (चित्र संख्या -2) में नारी आकृति भिक्षुक को भिक्षा देती चित्रित है। छरहरी काया पर साड़ी की चुन्नटों में तनाव मुक्त कसाव दिखाई देता है तथा दक्षिण भारतीय पहनावे का रूप दिखता है। चित्रक में हल्की-फुल्की साजसज्जा नारी रूप की सम्पन्नता को दर्शाती हैं जो रवि वर्मा के चित्रों का वैशिष्ट्य भी हैं। इन्होंने अपने चित्रों में नारी देह को उजागर अवश्य किया, किन्तु उसकी गरिमा को कभी भंग नहीं होने दिया। **“इन्द्रजीत की विजय”** चित्र में इन्होंने नारी की असहाय स्थिति को दर्शाया है। चित्र में दाहिनी ओर एक नारी आकृति अंकित है जो आँचल से अपने वक्षस्थल को ढकने का प्रयास कर

(चित्र संख्या -2)



रही हैं उसका दूसरा हाथ पुरुष आकृति द्वारा जबरन पकड़ा हुआ अंकित है। **‘रिवेरी’** नामक व्यक्ति चित्र में नारी आकृति को सफेद पारदर्शी साड़ी में दिखाया गया है। चित्र में पल्लू का अंकन पारदर्शी होने के कारण वक्षस्थल झाँकता हुआ अंकित है। नारी रूपाकृति स्वस्थ सुंदर मनोहरी व सोचने की मुद्रा में अंकित है। रवि वर्मा ने भारतीय नाट्य शास्त्र में वर्णित नारी रूप को भी चित्रित किया है।

‘शकुन्तला राजा दुष्यन्त को पत्र लिखते’ हुए चित्र नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् से प्रभावित है। नारी आकृति, मनोहारी, सुन्दर व शालीन है। हाथ पत्र लेखन की मुद्रा में सुंदर व सौम्य दिखाये है। साड़ी का पल्लू नीचे गिरा हुआ व उसके मुख पर व्याप्त विरह वेदना, समीप बैठा हिरण व दो अन्य सखियाँ सोचने की मुद्रा में, सम्पूर्ण चित्र को एक विशिष्टता प्रदान कर रही है। नारी देह की त्वचा को छाया प्रकाश व रंगों की तानों से प्रभावशाली दिखाया गया है। **‘वेजिटेबल सेलर’** एक अन्य चित्र में अंकित नारी रूप एक किशोरी का है जिसके चेहरे पर सहज व संतोष जनक भाव व भोलापन व्यक्त है। अंगुलियाँ आपस में गुँथी, आँखे बड़ी, सौम्य व मधुर अंकित है। राजा रवि वर्मा ने भारतीय साहित्य पर आधारित अनेकों चित्र बनाये। ऐसे चित्रों में **‘नल एवं दमयन्ती’** **‘रावण व जटायु’** **‘द्रौपदी इन द कोर्ट ऑफ विराट’** **‘गंगा व शांतनु’**, **‘हरिश्चन्द्र’**, **‘साधु और मेनका’** आदि प्रमुख है। **‘नल एवं दमयन्ती’** चित्र में नारी आकृति को निद्रा की मुद्रा में अंकित किया है। एक हाथ सिर के नीचे व दूसरा विस्तार से सिर पर फैला हुआ अंकित है। रंग योजना प्रभावशाली व रात के शांत वातावरण को दर्शाती है।

‘रावण व जटायु’ नामक चित्र में रामायण का एक प्रसंग अंकित है जिसमें आसमान में उड़ते हुए रावण के हाथों में फँसी सीता असहाय रूप में दिखाई गई है। सीता ने भयभीत होकर अपना चेहरा दोनों हाथों से छिपा रखा है। साड़ी की चुन्टों को हवा में लहराता दिखाया गया है।

‘शांतनु व गंगा’ चित्र में भी मां का अलग ही रूप चित्रित है। चित्र में नारी आकृति महाभारत में वर्णित गंगा की है जो अपने पुत्र को गंगा में बहाने जा रही है। दौड़ते समय आगे की ओर झुकी आकृति एक हाथ से बालक की बांह पकड़े व दूसरा हाथ से साड़ी के पल्लू से ढका व विदा होने की मुद्रा में है। **(चित्र संख्या-3)**

‘द्रौपदी इन द कोर्ट ऑफ विराट’ में द्रौपदी के असहाय रूप को प्रदर्शित किया है। राजा रवि वर्मा ने भारतीय नारी की दुःख व पीड़ा का अंकन तो किया, परन्तु उसमें वास्तविकता की जगह नाटकीयता आ जाने से नारी रूप केवल सुंदर ही बनकर रह गया है।

(चित्र संख्या-3)



रवि वर्मा के अन्य नारी आकृति चित्रों में 'फ्रेश फ्राम बाथ', 'गेंद खेलती नारी', 'तिलोत्तमा', 'ग्रामीण कन्या', 'बच्चे को स्तनपान कराती हुई पोर्ट्रेट ऑफ ए यूरोपियन लेडी आन इन्वोरी', 'मताला लेडी', 'ज्युतिथ' आदि हैं। राजा रवि वर्मा ने ब्रिटिश रानियों के चित्र विदेशी पद्धति में बनाये। 'ग्रामीण कन्या' चित्र में नारी आकृति ग्रामीण परिवेश में तथा सिर पर मटके को एक हाथ से सम्भालते अंकित हैं व दूसरा हाथ माथे पर सीधा टिका है जैसे वह दूर देखने का प्रयास कर रही हो। रवि वर्मा ने माता के रूप में भी नारी का अंकन बहुत सी अलग-अलग मुद्राओं व परिस्थितियों में किया है जिसमें नाटकीय वातावरण का भी समावेश है। ये चित्र मन के भाव व कहानी दोनों को ही दर्शाते हैं। इन चित्रों में मातृत्व से परिपूर्ण नारी आकृतियों में यथार्थरूप में अंगों का प्रदर्शन किया है। बच्चे को स्तनपान कराते हुई इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। इन्होंने देवियों के कई चित्र चित्रित किये हैं। यह चित्र पोस्टर जैसे लगते हैं साथ ही इनके कई चित्रों में नारी आकृति को वाद्ययंत्र के साथ भी चित्रित किया है। 'मताला लेडी' नारी आकृति को ऊँचे स्थान पर बैठा व हाथ में वाद्य यंत्र बजाते हुये अंकित किया गया है। हाथ, पैर, व अंगुलियाँ यथार्थ रूप से अंकित हैं बालों को फूलों के गजरे से सजाये गये हैं।

रवि वर्मा ने नारी रूप का को भिन्न-भिन्न मुद्राओं में तथा चित्र में उपस्थित वातावरण के अनुसार निम्नवर्गीय व उच्चवर्गीय सामाजिक स्तर में कुशलतापूर्वक दिखाया है। इनके चित्रों से नारी की सामाजिक स्थिति का अध्ययन भी होता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. पाण्डे, डॉ. कमलेश दत्त-भारतीय चित्रकला में नारी रूप विन्यास पृ. 85
2. अग्रवाल डॉ. गिराज किशोर- आधुनिक भारतीय चित्रकला पृ 18
3. साखलकर र.वि.- आधुनिक चित्रकला का इतिहास पृ. 313
4. राम निरंजन-समकालीन भारतीय कला पृ. 112



आशा चौधरी

उप प्राचार्य, एस.बी.एन.महाविद्यालय,
श्रीमाधोपुर, सीकर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

राजस्थानी कला में कुमावत समाज के प्रमुख कलाकार : एक परिचयात्मक विवेचन

राजस्थान में चित्रण कार्य कई जातियों के चित्रकारों ने परम्परागत रूप से सदियों तक किया। विविध समुदायों के कलाकारों ने कला को मूर्तता प्रदान कर इसे ऊँचाईयों पर पहुँचाया तथापि उन कलाकारों में कुमावत समाज के कलाकारों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस समाज कलाकार समस्त राजस्थान और उसके बाहर भी पाये गये हैं। इनके द्वारा किये गये कलात्मक कार्य को किसी भी मायने में कम नहीं आंका जा सकता है। हवेलियों, महलों, मन्दिरों, किलों के निर्माण तथा उनमें भित्ति चित्रण एवं चित्रांकन कार्य जिन मिस्त्रियों, चितेरो की देन हैं, उनमें ज्यादातर कुमावत ही थे। इनकी कई पीढ़ियां चित्रांकन एवं मूर्तिकला कार्य करते गुजर गई हैं। आज भी बहुत सारे कुमावत कलाकार अपनी तूलिका से नित नये कलात्मक कार्य में संलग्न हैं एवं परम्परागत व आधुनिक शैली में चित्रण कार्य कर रहे हैं। इनमें प्रमुख हैं:—

स्व.पद्मश्री रामप्रकाश गहलोत— 1901 में जयपुर में जन्में रामप्रकाश गहलोत 1920 में आर्किटेक्ट की पढ़ाई हेतु जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट, बम्बई गये। पढ़ाई पूरी होने के उपरान्त इन्होंने जयपुर रियासत की सेवा में असिस्टेन्ट आर्किटेक्ट के पद पर कार्य शुरू किया तथा बाद में इसी रियासत के प्रमुख आर्किटेक्ट बने। डिजाइन के साथ-साथ इन्होंने कई चित्रों का निर्माण भी किया। लैण्डस्केप्स इनका पसंदीदा विषय रहा। दिल्ली में कार्यरत रहते हुये आपने विज्ञान-भवन का डिजाईन तैयार किया जिस पर भारत सरकार ने इन्हें पद्म श्री पुरस्कार प्रदान किया। इसके अतिरिक्त और भी डिजाईन तैयार किये जिनमें स्टेच्यू सर्किल, एस.एम.एस. हॉस्पिटल, ए.जी. ऑफिस जयपुर में तथा आकाशवाणी भवन श्रीनगर आदि प्रमुख हैं।¹

स्व.मास्टर रामप्रसाद उस्ता— रामप्रताप उस्ता अपने समय के ख्याति प्राप्त परम्परागत शैली के चित्रकार रहे हैं। ये वर्षों तक जयपुर रियासत के दरबारी चित्रकार (मुसव्विर) रहे। इनके चित्रकारी कार्य से प्रभावित हो जयपुर महाराजा रामसिंह जी ने सोने का कड़ा सम्मान स्वरूप भेंट किया था। रामप्रताप जी के बनाये प्रमुख चित्रों में जयपुर की जनानी ड्योड़ी की महफिलों का चित्रण, शिव बारात, बाली, सुग्रीव आदि हैं इनके बनाए चित्र इतने सजीव होते थे कि जिन्हें देखकर इन्सान भी धोखा खा जाते थे।²

स्व.देवेन्द्र दाहिमा— देवेन्द्र दाहिमा ने सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर से चित्रकला में एम.ए. किया। ये जलरंग और पेस्टल दोनों में कार्य करते थे। इन्हें अनेक अवार्ड मिले जिनमें ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय पुरस्कार (1995) उल्लेखनीय है। इनके बनाये चित्रों में उजड़े घर पर बैठा परिन्दा, गांव का दृश्य, सूनी अटरिया पे कागा बोले महत्वपूर्ण है।³

स्व.गोपीराम कैकटिया — 1887 में जयपुर में जन्मे गोपीराम कैकटिया को बचपन से ही कला से लगाव रहा। आपने जयपुर बीकानेर, भरतपुर, अलवर, करौली, जोधपुर दरबार के यहाँ भी चित्रण कार्य किया। 1924 में लंदन प्रदर्शनी के दौरान आपके बनाये चित्र को प्रथम स्थान मिला। जिससे आपको विशेष ख्याति मिली।⁴

स्व.लालचन्द गहलोट — 1860 में जयपुर में जन्मे लालचन्द गहलोट ने चौमू में देवी भवन महल, सीकर में माधवसिंह के महल, जयपुर में मेयो अस्पताल के नक्शे बनाये थे। ये चित्रकारी कार्य में भी सिद्धहस्त थे। इनके बनाये चित्रों एवं भू-दृश्यों में विनायक जी, हाथियों की लड़ाई, गलता तीर्थ, चौगान स्टेडियम व आमेर का विहंगम दृश्य प्रमुख है। इनके पौत्र श्री शिवदान सिंह गहलोट वर्तमान में चित्रकारी कार्य में संलग्न हैं।⁵

स्व.नारायण प्रसाद वर्मा — यथार्थवादी शैली के चित्रकार नारायण प्रसाद जी का जन्म 1877 में जयपुर में हुआ था। इन्होंने कला की प्रारम्भिक शिक्षा श्री गंगाबक्श कुमावत से ली। पोर्ट्रेट बनाने में इन्हें विशेष दक्षता हासिल थी। इन्होंने प्रसिद्ध व्यक्तियों को पोर्ट्रेट बनाए जिनमें बीकानेर के महाराजा गंगासिंह, जयपुर महाराजा माधोसिंह द्वितीय, महाराजा मानसिंह द्वितीय, टी.टी. कृष्णामाचारी तथा मिर्जा इस्माईल के व्यक्ति चित्र उल्लेखनीय हैं।⁶

स्व.सौभागमल गहलोट — सौभागमल जी का जन्म 1906 में प्रसिद्ध वास्तुकार स्व. श्री दामोदर लाल गहलोट के घर हुआ। ये कुमावत समाज के ऐसे पहले चित्रकार थे जो कला की उच्च शिक्षा हेतु शांति निकेतन कला भवन गये। वहाँ इन्होंने आचार्य नन्दलालजी बसु एवं प्रोफेसर सुरेनकार के निर्देशन में भारतीय पुनर्जागरण कालीन कला का ज्ञान प्राप्त किया। उस दौरान बनायी गयी इनका एक पेंटिंग “दिनेस्ट” कला भवन में आज भी लगी हुई है। उनके बनाये प्रमुख चित्रों में शिवाजी का नारी को सम्मान, तानसेन व बैजू बावरा, निर्वासित सीता आदि हैं।⁷

स्व.रामसहाय मिस्त्री— बहुमुखी प्रतिभा के धनी स्व. रामसहाय जी एक ऐसे कलाकार थे जिनकी कला के हर क्षेत्र पर अच्छी पकड़ थी। चाहे वह भवन निर्माण हो, आराईश वर्क हो, कांच की जड़ाई का कार्य हो या चित्रकारी। इन्होंने कई महलों व मन्दिरों में आराईश कांच की जड़ाई का कार्य बड़ी ही कुशलता से किया। जिसका उदाहरण आमेर का शीशमहल है। जहाँ का कांच की जड़ाई का काम आज भी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। मन्दिरों में डिग्गी कल्याणजी का मंदिर, गोपीनाथ जी का मंदिर, जैन नसियों के मन्दिर प्रमुख हैं जहाँ सोने की छपाई, कांच की जड़ाई व चित्रकारी कार्य किया।⁸

स्व.नारायणजी मिस्त्री— नारायण जी मिस्त्री उन चुनिन्दा कलाकारों में से एक थे जिन्हें महाराजा सवाई मानसिंह जी ने जयपुर में बसाया था। नारायण जी फोटोग्राफी चित्रकला, मूर्तिकला व हस्तशिल्प के ज्ञाता थे। इन्होंने अपना निजी स्टूडियो भी खोल रखा था जहाँ कला विद्यार्थियों को प्रशिक्षण दिया जाता था वे अच्छे मूर्तिकार भी थे। अल्बर्ट हॉल म्यूजियम में रखी अधिकांश मिट्टी की मूर्तियाँ एवं ताड़केश्वरजी के मन्दिर में लगी पीतल की फूल साईज की नंदी की मूर्ति इन्हीं के द्वारा बनाई गई।⁹

स्व.शिवबक्स जी तोंदवाल तथा श्री कृष्ण जी तोंदवाल—ये 19वीं सदी के मारोट कला घराने के श्रेष्ठ कलाकारों में से थे। कांच की जड़ाई, कांच पर चित्रकारी का कार्य बड़ी सजीवता से करते थे। यही कारण है कि उनके बनाये चित्र आज भी ऐसे लगते हैं मानो अभी ही बनाये हों। ये चित्रकारी के साथ-साथ सीमेन्ट की मूर्तियां, गेट और बड़े-बड़े स्टेच्यू बनाने में सिद्धहस्त थे।¹⁰

स्व.भौरीलाल जी आसीवाल— 1901 में जयपुर में जन्मे श्री भौरीलाल जी को बचपन से ही चित्रांकन का शौक था। ये व्यक्ति चित्र बनाने में माहिर थे। इनके बनाये चित्रों में प्रमुख है महाराजा माधोसिंह जी (द्वितीय) का व्यक्ति चित्र, गाय चराते गोपाल, राधाकृष्ण का युगल चित्र आदि।¹¹

स्व. दानजी छापोला—1903 में मण्डावा में जन्मे दानजी को सूखी एवं गीली दीवार दोनों पर ही भित्ति चित्रण में महारत हासिल थी। उन्होंने शेखावाटी की कई हवेलियों में भित्ति चित्रण कार्य किया। पुराने चित्रों की मरम्मत तो ये इतनी दक्षता से करते थे कि ठीक करने के बाद एकाएक विश्वास नहीं हो पाता था कि यह वही कट-फटा पुराना चित्र है। उनके बनाये चित्र 70-80 साल पुराने होने के बावजूद आज भी जीवन्त लगते हैं।¹²

उपरोक्त दिवंगत कलाकारों के अतिरिक्त कुछ चित्रकार कला के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाये हुये हैं —

नाथूलाल वर्मा—1946 में जयपुर में जन्मे नाथूलाल वर्मा को कला का वातावरण अपने परिवार व समाज के आसपास के कलात्मक परिवेश में मिला। शुरुआत में इन्होंने श्री गोपीचन्द्र हालूका जो तैल रंगों में यथार्थ चित्रण के उस्ताद थे के पास चित्रकला की शिक्षा पाई। तत्पश्चात् 1963 में सवाई रामसिंह शिल्प कला मन्दिर जयपुर में तीन वर्ष तक कला का प्रशिक्षण लिया। यहाँ पद्मश्री कृपाल सिंह शेखावत के निर्देशन में लघुचित्रण, पिछवाई चित्रण, हाथी दांत, चित्रण व आराईश पेन्टिंग की तालीम पाई। फिर यहीं शिक्षण कार्य शुरु किया बाद में राजस्थान विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के रूप में सैकड़ों कला छात्रों को पारम्परिक व लघुचित्रण की शिक्षा दी। आपको राष्ट्रीय पुरस्कार सहित के अनेक राज्य एवं अखिल भारतीय पुरस्कार मिल चुके हैं। **कन्हैया लाल वर्मा**—1943 में सांभर (जयपुर) में जन्मे श्री कन्हैया लाल वर्मा को घर में ही परम्परागत चित्रकला की शिक्षा मिली। भारतीय कला और संस्कृति तथा जीवन

मूल्यों के प्रति आस्थावान श्री वर्मा के चित्रों में सम-सामयिक कला का प्रभाव भी रहा है और कुछ प्रयोगधर्मिता का भी किन्तु शाश्वत कला मूल्यों की स्थापना ही उनकी तूलिका के प्रिय विषय रहे हैं। **फूलचन्द वर्मा**— 1943 में पारम्परिक चित्रकार परिवार में जन्मे फूलचन्द वर्मा को चित्रांकन विरासत में मिला। इन्होंने सवाई रामसिंह शिल्प कला मन्दिर में पद्मश्री कृपाल सिंह शेखावत के निर्देशन में तीन वर्ष तक फ्रेस्को पेंटिंग, पारम्परिक चित्रण, लघु चित्रण, रंग निर्माण आदि कला की विभिन्न विधाओं का प्रशिक्षण लिया। ललित कला अकादमी का राज्य पुरस्कार, कालीदास अवार्ड से पुरस्कृत वर्मा के चित्र राजस्थानी शैली एवं विषयों पर आधारित रहे हैं। **लालचन्द मारोठिया**—मारोठिया का जन्म 1949 में जयपुर में हुआ। कला की शिक्षा राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट जयपुर में ली। श्री मारोठिया लघु व पारम्परिक चित्रण के साथ-साथ पक्षी चित्रण एवं भू-दृश्य चित्रों में विशेषज्ञता रखते हैं। चने की दाल पर 13 मोर, 26 हिरण व 56 सारस बनाकर ये काफी चर्चित हुये। क्रियेटिव लैण्डस्केप की निजी शैली तो आज इनकी पहचान बन चुकी है। इन्होंने कई कला शिविरों में भाग लिया व इन्हें कई राज्य एवं आखिल भारतीय पुरस्कार मिल चुके हैं। इनके बनाये चित्रों में ताड़का बध, मयूर-मयूरी प्रणय तथा लेण्डस्केटस हैं।¹⁹

सुधीर वर्मा, रमेश चन्द वर्मा, ममता रोंकणा, नरेन्द्र वर्मा, हनुमान सहाय कुमावत, मदन राजौरा, दिनेश कुमावत आदि ऐसे चितेरे और भी बहुत हैं जिन्होंने न केवल अपनी परम्परागत कला को अपनाये रखा अपितु बदलते समय के साथ-साथ अपने आप को साधा भी है।

संदर्भ ग्रन्थ

- 1 डॉ राजेन्द्र सिंह (पुत्र) गहलोत भवन एम.आई. रोड से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
- 2 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 111
- 3 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 87
- 4 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 94
- 5 डॉ राजेन्द्र सिंह (पौत्र) गहलोत भवन एम.आई. रोड से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
- 6 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 109
- 7 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 119
- 8 डॉ देवीलाल वर्मा (पुत्र) पूर्व प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
- 9 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 110
- 10 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 117,118
- 11 कुमावत क्षत्रिय पत्र ट्रस्ट, चित्रकला विशेषांक, जयपुर, पृष्ठ 84
- 12 श्री मदन राजौरा, कलाकुंज स्टूडियो, सुरजगढ़ झुंझनू से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
- 13 आकृति पत्रिका, राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर



रमेश चन्द मीणा
शोधकर्ता, चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

भारत में परम्परागत लघु शैली चित्र : अर्थ, परिभाषा, उद्भव एवं विकास

कला परम्परा की अक्षुण्ण कहानी वहीं से शुरू होती है, जहाँ से मानव विकास की कहानी का शुभारम्भ होता है। जो देश, काल, परिस्थिति, की सामाजिक 'त्री' में परिव्याप्त हो, कला परम्परा की अनवरतता को गतिरूपता का जामा पहनाती है।

वास्तव में, परम्परा एक ऐसा प्रवाह है, ऐसा रिद्म है, जो सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के उन्नत मापदंडों का परिशोधित सहयोग प्राप्त कर गतिमान होती है, प्रगति पथ पर आरूढ होती है।

कला परम्परा से जुड़े पुनरुत्थानवादी कलाकार व चिन्तक 'असित कुमार हलदार' के इस विचार का उल्लेख करना भी संगत प्रतीत होता है कि जिस प्रकार शताब्दियों तक निरन्तर विचारों के मंथन से संस्कृति का विकास होता है। उसी भांति परम्परा भी पीढी के अनुभवों का संचित कोष है और इसमें विकास व प्रगति का तत्त्व अनविर्यतः निहित होता है।¹ अर्थात् परम्परा का स्वरूप नितान्त गत्यात्मक होता है।

परम्परा के अभाव में मानव अस्तित्व विहीन मात्र छाया है। परम्परा अतीत की विषयवस्तु नहीं वरन् वर्तमान की कथावस्तु है। समकालीनता व इतिहास में विरोध नहीं अपितु समन्वय हैं। इतिहास में जाना न वर्तमान से पलायन है, न अतीत से मोह। यह वर्तमान व इतिहास को नूतन दृष्टि से देखने, उसमें किसी नूतन सूत्र की तलाश करने की कोशिश है। परम्परा से आशय प्राचीन रूढियों के मूक अनुमोदन अथवा अंधानुकरण से सर्वथा भिन्न है। सही मायने में परम्परा सामयिकता के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर नैरन्तर्य की भावबोधता को दर्शाती है। परम्परा का ज्ञान मौलिकता का सूत्र प्रदत्त कर, अतीत व वर्तमान में सहसम्बन्ध स्थापित करता है। जिसमें कलाकार मध्यस्थ की भूमिका का निर्वाह करता है। कलाकार शताब्दियों की परम्परा को अपने अंतःकरण में स्वत्व के निजस्व के साथ समन्वित कर, नूतन रूप में प्रत्यक्ष करता है। परम्परा के ज्ञान के अभाव में कला सूक्ष्मताओं के सौन्दर्यपरक ज्ञान की प्राप्ति अकल्पनीय है। परम्परा अतीत की जडता पर मण्डराता रूपक नहीं है। यह जीवन की यात्रा से पल-पल संवर्धित होता हुआ, नवीनताओं, आश्चर्यों व अतीत के बीज का भविष्य के वृक्ष की निर्मिती हेतु प्रतिपल नवीन

सम्भावनाओं के साथ समायोजन करता रहता है। इस प्रकार परम्परा कभी न समाप्त होने वाली भव्यता है, जिसमें आदान-प्रदान की उदारता है। अतः इसकी पद्धति अद्वितीय व अपील सार्वभौमिक हैं।

परम्परा गतिशील चेतना व चिरगतिशील सृजनात्मकता की सम्भावनाओं को समष्टि रूपक है। परम्परा जहाँ एक ओर हमें नवीन के मूल्यांकन का निष्कर्ष प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर अतीत के ज्ञान के साथ-साथ मौलिकता का सूत्रपात भी करती है। इस कारण से सृजनात्मक विकास के लिए अतीत में विद्यमान श्रेष्ठ तत्वों का बोध अनिवार्यतः मानते हैं। परम्परागत ज्ञान के अभाव में हम यह कैसे ज्ञान सकेंगे की मौलिकता क्या है? कहाँ है? वर्तमान कला का यथार्थ मूल्यांकन तभी संभव है, जब उन्हें विगत कला रूपों के परिप्रेक्ष्य में परखा जायेगा। अन्यथा उनकी श्रेष्ठता व मौलिकता का आंकलन नहीं हो सकेगा।

परम्परा विचार से, सोच से निर्मित होती है। परम्परा से प्राप्त कला के व्याकरण से कला मर्यादा की निर्मिति होती है। इसके साथ-साथ ही, कला परम्परा के प्रवाह में गति में परम्परा का नवीनीकरण अनिवार्यतः होता है। परम्परा की सार्वभौमिक सत्यता व कला निर्माण की निर्णायता के विशिष्ट आशय में एक महत्वपूर्ण तथ्य व प्रश्न यह भी है जो आप सभी निर्णायकों की निर्णायकता के सामने प्रस्तुत करना चाहूंगा, कि क्या कोई सृजनकार, सृजनकर्ता विरासत में प्राप्त परम्परा की जड़ों से कटकर, परम्पराच्युक्त होकर नूतन सृष्टि या नवीन सृजन कर सकता है? अर्थात् नहीं और जिस तरह उसे माता-पिता की पुत्र से, अध्यापक का शिष्य से, वृक्ष का बीज से, भक्त का भगवान से सम्बन्ध होता है ठीक उसी तरह कलाकार या सृजनकर्ता का परम्परा से होता है। परम्परा का सृजनकर्ता, सृष्टा से नितान्त अविलग, अपृथक सम्बन्ध हैं, जो कभी टूटेगा नहीं, सर्वथा अटूट हैं, तथा इस सात्विक स्वरूप में जनसामान्य व कला रसिक कला परम्परा की पुरातनता व उसकी सामयिकता को सर्वथा सत्य रूप में महसूस कर सकते हैं। अतः बेहतर यही होगा कि हम पुरातन की संस्तुती करते हुए ही नूतन को स्वीकृति दे, अभिव्यक्ति दे।

शैली : अर्थ एवं परिभाषा

'शैली' हिन्दी भाषा का शब्द है। 'शैली' को अंग्रेजी भाषा में 'स्टाइल' कहते हैं, जिसका प्रादुर्भाव लेटीन भाषा के 'स्टिलस' शब्द से हुआ है। 'शैली' को 'कलम' शब्द से भी अभिव्यक्त किया जाता है यथा— कांगडा कलम, किशनगढ कलम आदि। शैली का आशय व्यक्तिगत माना गया है।^१ आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार 'शैली' का सम्बन्ध व्यक्ति की क्षमताओं व सीमाओं के प्रतिबिम्ब या वैशिष्ट्य से होता है।^२ संस्कृत साहित्य में 'शैली' को 'रीति' शब्द के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया गया है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में वैधम विन्यास क्रमरीति कहा है।^३ वामन ने काव्य अलंकार में शैली को विशिष्टापद रचना रीति कहकर परिभाषित किया है। इस संदर्भ में तूफन्स की प्रसिद्ध उक्ति है कि शैली स्वयं व्यक्ति का स्वरूप

होती है। **गेटे** शैली का आशय कलागत वैशिष्ट्य की अभिव्यक्ति से लेते हैं।⁶ जबकि **ग्रीन** सौन्दर्यपरक स्वरूप को शैली मानते हैं। अतः शैली लिखने या चित्रकृति को सम्पन्न करने की एक विधि है।⁶ शैली कहने या अभिव्यक्त करने का एक ढंग है। तकनीकी भी शैली से जुड़ी हुई है। चित्रकला के संदर्भ में यह चित्रकार की अभिव्यक्ति की भाषा को पूर्णता प्रदान करने में मदद करती है। शैली से हमारा अभिप्रायः रूप का सृजन, रूपान्तरण, चयन, आयोज तथा अर्थ निरूपण व उद्देश्य के प्रस्तुतीकरण की एक विधि से है। **शैली** बाह्य व आन्तरिक अनुभवों व विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का एक सैद्धान्तिक व प्रयोगिक तरीका है। इसमें तकनीक व माध्यम भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि इनका कलात्मक विषय की विषयवस्तु के निर्माण से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। **हरबर्ट रीड** का कथन है कि एक कलाकार निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हेतु अपने पास उपलब्ध तकनीकी एवं चित्र सामग्री का सौन्दर्यपूर्ण तरीके से समन्वय करता है। संयोजन करता है, इसी को '**शैली**' कहते हैं।⁷

शैली की आत्मा नूतनता व मौलिकता में निहित है। मौलिकता व नूतनता देश, काल व परिस्थिति तत्वों से अपने को रूपायित करती है। इस तरह रूपाकारों से रूपायित '**शैली**' स्वयं को अभिव्यक्त करती है। **हरबर्ट रीड** के अनुसार, शैली एक तरीका है, जिसमें हमेशा रूप विद्यमान होता है।⁸ **शैली कोई** अनुकृति नहीं होती है। यहां यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि **शैली** कलाकृति में कलाकार के व्यक्तित्व का दर्पण होती है, जो अभिव्यक्ति व अभिव्यंजना को प्रतिस्थापित करती है, प्रतिबिम्बित करती है।

भारत में लघु चित्र : अर्थ एवं परिभाषा

परम्परा ने हिन्दी साहित्य, कला और संस्कृति का आश्रय लेकर प्रगति और विकास के जो सोपान तय किये हैं, उसके मूल में चिन्तको, मनीषियों, साहित्यकारों और विविध कला-विधाओं व उनसे जुड़े सृजनकर्मियों का अमूल्य योगदान रहा है। इन क्षेत्रों में अनेक ऐसे मूर्धन्य साहित्यकार व कलाकार हुये हैं, जिन्होंने अपनी तरह से साहित्य और कला परम्परा के नये मानदंड स्थापित किये। जो नये रचनाकारों और कला संस्कृति के क्षेत्र के नए यात्रियों के लिए निष्कर्ष भी हैं और प्रेरणा स्रोत भी।

परम्परा भारतीय सभ्यता और संस्कृति की परम्परा को गौरवान्वित करने का श्रेय यहां की चित्रकला को भी रहा है।⁹ **वात्स्यायन** ने अपने **कामसूत्र** में चौसठ कलाओं की सूची में चित्रकला को चौथा स्थान दिया है।¹⁰ भारतीय चित्रकला की परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन हैं। भारतीय चित्रकला की जीवन यात्रा का प्रादुर्भाव, मानव विकास की कहानी के साथ-साथ प्रस्तुत होता है।

यह देश है- अति सर्जना का श्रेत्र, उत्कृष्ट निर्माण का क्षेत्र। भारत वर्ष में कला व साहित्य के क्षेत्र में मध्ययुगीन समय पुनरुत्थान का समय रहा है। इस समय कला के विविध अंगों,

संगीत, वास्तु, मूर्ति व साहित्य आदि के क्षेत्रों में एक नवीन चेतना का आविर्भाव हुआ और चित्रकला भी इस लहर से अछूती नहीं रही।

मध्ययुगीन लघु आकार के पारम्परिक चित्र भारतीय चित्रकला की मूल्यवान धरोहर है।¹¹ हिन्दी में लघु चित्र शब्द अंग्रेजी के **मिनियेचर** का अनुवाद मान लिया गया किन्तु यह मिनियेचर के सही अर्थ को अभिव्यक्ति नहीं देता। मूल रूप से मिनियेचर शब्द का प्रयोग धार्मिक ग्रन्थों के पृष्ठ के लिए होता था। प्रायः सभी भारतीय चित्रों में लघु चित्र अग्रगामी या मुख्य महत्त्व रखते हैं और वो भिन्न-भिन्न इतिहासों को अपने में संजोये हैं। वास्तव में लघुचित्रों को उनके आकार मात्र से ही नहीं परिभाषित किया जा सकता अर्थात् मूल रूप से लघुचित्रों का अर्थ मात्र उसके आकार के लघु होने से नहीं है।¹² शब्द समुदाय में लघु शब्द लघु चित्रों का सामान्य चित्रों से छोटे आकार के उद्गम को प्रदर्शित करता है। **मिनियेचर** शब्द का उद्गम लेटिन शब्द **मिनियेचर** से हुआ है, जिसका अर्थ है— लाल रंग से चित्रांकित करना (वर्मिलियन लाल, मुख्य लाल या पारे का सल्फाइड लाल)। यूरोप के कला जगत में उन चित्रों को मिनियेचर कहा जाता था, जिनको **रैड लेड** के रंगों से चित्रित किया जाता था।¹³ उन चित्रों का अर्थ सामान्यतया: उन चित्रों से हैं, जो आकार में छोटे हैं, साथ ही जिसके कार्य सम्पादन में तथ्यों का लालित्य व बारिकी विद्यमान है।¹⁴ स्वतः अनुशासन लघुचित्रों की मांग है। लघुचित्रों की निर्माण प्रक्रिया में छोटी से छोटी गलती भी दृष्टव्य है अर्थात् लघु चित्रों में छोटी से छोटी गलती के लिए भी कोई जगह नहीं है।¹⁵

परम्परागत लघुचित्र कला से आशय चित्र रचना की ऐसी सुज्ञात, सुव्यवस्थित विधा से हैं, जिसकी अभिव्यक्ति का धरातल बहुत ही छोटा होता है, पर अभिव्यक्ति का प्रचार-प्रसार क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत। लघुचित्र अपनी प्रकृति व रूपगत विशिष्टता में संयत, क्रियात्मकता की बारिकी व लघु दृश्यफलक लिए, ऐसी प्रहस्व रचना है, जो विचार-दृष्टि एवं संवेदनात्मक धरातल पर (कवि बिहारीदास की अभिव्यक्ति विस्तृतता की तरह) परिवेश से वृहतर सारोकार रखती हैं अर्थात् लघुचित्र लघु धरातल पर लघु रूपाकारों में रूपायित हो भाव विस्तृतता प्राप्त करते हैं। जिनमें कार्य की बारिकी विद्यमान हैं।

लघुचित्र एक ऐसा उद्यान नहीं हैं, जिसमें तरह-तरह के वृक्ष व फूल-बेलें सजी हुई हैं वरन् वह एक ऐसा बगीची है जिसमें एक ही गमले का माधुर्य, सौरभ अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है। लघुचित्र एक स्वतःपूर्ण रचना है। जो चित्र परम्परा की वह लध्वाकार विधा है, जिसमें कलाकार एक निश्चित कला-विधि का अनुसरण करता हुआ (लघुक्षेत्र में लघु रूपाकारों द्वारा) ऐसी संवेदना और प्रभावन्विति का सृजन करता है। जो दर्शक को लघु या अल्प समय में ही भाव-विभोर कर रससिक्त करने में समर्थ होता है। लघुचित्र कला का उक्त वैशिष्ट्य निम्नलिखित शब्दों में सुस्पष्ट होता है यथा—

अति दुरह विस्तृत परम्परा, जो ग्रंथों में नहीं समाती।

वह इन्हीं लघु चित्रों में, ज्यों की त्यों बंध चलती।।

लघुचित्र अपने छोटे कलेवर में भी सुविस्तृत लक्ष्य को लेकर चलते हैं व उनकी परिणति करते हैं। लघुचित्र एक वैचित्र्य युक्त आकर्षण और एक सुमधुर रंजकता व रोचकता लिए होते हैं। जिनका आस्वादन जन सामान्य रसत्व की प्राप्ति के लिए करता है।

लघुचित्र समाज सुधार में, सामाजिक समरसता में, स्वदेश प्रेम की भावना में, प्रकृति व पर्यावरण के संरक्षण में, सृजनात्मक अभिव्यक्ति व सौन्दर्य बोध के विकास की अभिवृद्धि में, कला परम्परा की सृष्टि में, ज्ञान की नैरन्तर्यता में, दीपस्तम्भवत सदियों से देश की पीढियों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं।

भारत में लघु चित्रण परम्परा : उद्भव एवं विकास

यूं तो विश्व में समस्त प्रदेशों व क्षेत्रों में चित्रण परम्परा के मनभावन विविध रूप देखने को मिलते हैं। लेकिन भारतीय जनसमाज लघु चित्रण परम्परा से जिस प्रकार जुड़ा है, वह अपने आप में एक आदर्श है। सदियों से रूपहलें भारतीय समाज में लघु चित्रण की जो अविरल रस धारा प्रवाहित होती रही है। उसी के कारण यह गौरवमयी देश आज भी अपनी लघु चित्रण परम्परा का अप्रतिम दृष्टान्त है। ताड पत्रों एवं भोज में लिखी गयी विभिन्न धर्म, सम्प्रदायों की पोथियों में रहे—सहे खाली स्थानों में अलंकरण प्रधान एवं आकृति को मोड—तोडकर प्रस्तुत करने वाली **अपभ्रंश** व **पाल कला शैली** ने लघुचित्र कला की नीच डालने में महती भूमिका निभाई।¹⁶ जिसकी समय सीमा लगभग 7वीं सदी से 13वीं सदी रहा।

लघुचित्र परम्परा की नींव पडते ही मध्ययुग में **पश्चिम भारतीय शैली** या **अपभ्रंश कला** के अनुभवों के छनकर बनती हुई **राजस्थानी** लघुचित्र कला का परिदृश्य सामने आता है। जिसका समय 15वीं सदी के प्रारम्भ से लेकर 19वीं सदी तक विभिन्न परिवर्तन व रूपों में परिलक्षित होता है। **कार्ल खंडालावाल** ने 17वीं सदी व 18वीं सदी के प्रारम्भिक काल को राजस्थानी कला स्वर्ण युग कहा।

राजस्थानी लघुचित्र कला शैली की विकसित हो चुकी लघुचित्र कला के साथ—साथ ही लगभग 1550 ई. में **'मुगल'** लघुचित्र कला शैली का परिदृश्य उभरकर सामने आता है। जो लगभग 1750 ई. तक विकासमान रही।

तदोपरान्त मुगल लघुचित्र शैली की ठोस व सुन्दर पृष्ठभूमि व राजस्थानी लघुचित्र कलम के संविधान को लेकर **पहाड़ी** लघुचित्र शैली (कांगडा, बसोहली, गुलेर, कुल्लु व अन्य विभिन्न शाखायें) के जन्म के कारण भारतीय लघु चित्रकला को एक नई दिशा मिली। जिसकी समय सीमा लगभग 18वीं सदी से लेकर 19वीं सदी के उत्तर तक रही।

मुगल साम्राज्य के पतनोपरान्त आश्रय विहीन मुगल कलाकारों के द्वारा जो नई शैली प्रकाश में आयी वह थी— **पटना शैली**। जिसे **रायकृष्ण दास** ने कम्पनी **शैली** नाम दिया। यह कम्पनी शैली 1750 ई. से लेकर 19वीं सदी के उत्तरकाल तक गतिमान रही। इस शैली में अंग्रेजी अधिकारियों द्वारा बनवाये गये भारतीय विषयों से सम्बन्धित लघुचित्र ही अपना वैशिष्ट्य या मुख्य महत्व रखते हैं।

पटना कलम के उपरान्त कुछ पहाड़ी राज्य व पंजाब में **कांगडा शैली** का जो स्वरूप 19वीं सदी में प्रचलित हुआ, उसे **सिख शैली** कहा गया।

दक्खिनी या दक्षिण शैली में भी लघुचित्रण परम्परा का स्वरूप दृष्टव्य है और वर्तमान समय में भी समसामयिक भारतीय कलाकारों ने परम्परा के साथ—साथ समसामयिक प्रवृत्तियों, प्रयोगों एवं कला विधाओं को समावेश कर कला क्षेत्र में पौराणिक एवं लौकिक विषयों को एक नवीन रूप में प्रस्तुत कर प्रतिष्ठा प्राप्त की है व साथ—साथ में लघुचित्र परम्परा को अक्षुण्ण बनाने में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं।

अपभ्रंश, पाली, राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी, सिख, कम्पनी, दक्खिनी एवं समसामयिक लघु चित्रकारों की कलात्मक थाती ने ही विभिन्न रूपों में विकसित होकर प्रभावशाली भारतीय लघुचित्र शैली को जन्म दिया व पल्लवित किया। भारतीय लघुचित्र परम्परा की इन शैलियों ने अपने देश व काल की असमान परिस्थितियों को ग्रहण कर अपनी समन्वयात्मक नीतियों के कारण एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध बनाये रखा। साथ ही पारस्परिक सहयोग व सद्भावना के बीज बोकर अपने परम्परागत स्वत्व को भी समान रूप से बनाये रखा। आज जो विभिन्न भारतीय लघुचित्र शैलियां हमारे सामने विद्यमान हैं, उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व व संवर्धन की असमान परिस्थितियां रही हैं।

वस्तुतः हमारी विस्तृत लघु चित्रण परम्परा हैं जो सदियों व पीढ़ियों के अनुभवों का संचित अगाध भण्डार है और जिसमें हमारे विकास व प्रगति का तत्व अनिवार्यतः निहित है। सम्प्रती, परम्परागत लघुचित्रों का समृद्ध संचित भण्डार धीरे—धीरे क्रमशः न्यूनता एवं पतन की ओर अग्रसर है। जिसका मूलभूत कारण पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति रूपी 'राहु व केतू' ने विस्तृता प्राप्त कर, भारतीय सभ्यता व संस्कृति रूपी सूर्य व चन्द्र के ग्रहण लगा दिया। अतः हमें आत्मशुद्धि की जाग्रतता की, चेतनता की, अपनी परम्परागत जड़ों को मजबूत बनाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. समन्दर सिंह खंगारोत 'सागर'; आकृति ;त्रैमासिकद्ध (राजस्थान ललित कला अकादमी), जयपुर अक्टूम्बर—दिसम्बर, 1995, पृ.22
2. हरबर्ट रीड; इन्ट्रोडेक्शन ऑफ स्टाईल इन यूरोपियन आर्ट पृ. 34
3. आनंद कुमार स्वामी; ट्रान्सफोरमेशन ऑफ नेचर इन आर्ट, पृ.14—15

4. राजशेखर; काव्य मीमांसा
5. हरबर्ट रीड; इन्ट्रोडक्शन ऑफ स्टार्टल इन यूरोपियन आर्ट पृ. 3
6. ग्रीन थ्योदर; दा आर्ट एण्ड आर्ट क्रिटिसिज्म, पृ 374
7. हरबर्ट रीड; दा मिनिंग ऑफ आर्ट पृ. 49
8. हरबर्ट रीड; आर्ट एण्ड एलिशेन, पृ 72
9. जयसिंह नीरज; राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी), जयपुर, 2008, पृ.82
10. सुनिल कुमार; भारतीय छापा चित्रकला का इतिहास, भारतीय कला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 पृ. 44 / एस.सी.उपाध्याय,वात्स्यायन का कामसूत्र, 1965, पृ. 71
11. प्रेमचन्द गोस्वामी; राजस्थान-संस्कृति, कला एवं साहित्य, (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी), जयपुर, 2008, पृ.39
12. श्यू बरटोन; दी टेक्नीक ऑफ मिनिऐचर पेन्टिंग,बी.टी. बट्सफोर्ड, लंदन, 1995, पृ. 11
13. राल्फ मायेर; ए डिक्शनरी ऑफ आर्ट टर्मस एण्ड टेक्नीक, एडम एण्ड चार्ल्स ब्लैक, लंदन, 1969 पृ. 244
14. अंजन चक्रवर्ती; इंडियन मिनिऐचर पेन्टिंग्स, लस्टरे प्रेस, दिल्ली, 1966 पृ. 7.
15. श्यू बरटोन; दी टेक्नीक ऑफ मिनिऐचर पेन्टिंग,बी.टी. बट्सफोर्ड, लंदन, 1995, पृ. 09
16. समन्दर सिंह खंगारोत 'सागर'; आकृति ;त्रैमासिकद्ध (राजस्थान ललित कला अकादमी), जयपुर अक्टूबर-दिसम्बर, 1995, पृ. 19



डॉ. निधि मीना

व्याख्याता, चित्रकला विभाग
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट
जयपुर (राज.)

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

मीणा जनजाति की महिलाओं की रचनात्मकता के विविध आयाम : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रचनात्मकता के अनेक पहलू हैं, अनेक दिशाएं हैं, विविध दिशाओं में अनेक उद्देश्य तथा विशेषताएं हैं—इन विविधताओं में रचनात्मकता क्या है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, उसी प्रकार जैसे कि हम यह पूछें कि जीवन क्या है? रचनात्मकता में प्रत्येक स्थान एवं काल में जीवन का स्पन्दन छिपा है जिसकी प्रस्तुति में विभिन्नता हो सकती है। कलाकारों की कला में रूप की सर्जना होती है। वह अरूप को रूप देते हैं। अव्यक्त को व्यक्त करते हैं। जनसाधारण कलात्मकता को मनोविनोद का साधन भी मानते हैं सृजन ही कला का सार है और सृजन का सर्वस्व है—नूतन चेतना का अविभाव, नए आयाम और

स्फूर्ति का उदय। कला व्यापक हैं, केवल चित्र, संगीत व मूर्तिकला ही कला नहीं है। स्वर—शब्द, रंग—रेखा, आकार—आयाम, साज—अलंकार आदि सभी कला में प्रकट होते हैं। मात्र इन्हें प्रकट करने के माध्यम अलग—अलग हैं।

मीणा महिलाओं की रचनात्मकता का अनुभव भी जीवन से भिन्न नहीं है। इनकी रचनात्मकता में मानवीय अनुभूति, शुद्ध कलात्मक अनुभव होने के साथ ही कालकृति की श्रेष्ठता तकनीक पर आधारित न होकर श्रेष्ठ भाव या विचार पर रहती है। यही रचनात्मकता विविध स्वरूपों में उभर कर आती है।

रचनात्मकता के विविध आयाम

↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
बुनना	गूदड़ी	बान्दरवाल		कोठा—कोठी	थापे व	मेहन्दी	गोदना	माण्डने
(खाट,	(रल्ली,		पिराण्डे	एवं डूमले	गण्डे			
बीझणी	ईण्डी							
आदि)	आदि)							

रचनात्मकता के विविध आयामों में बुनना (खाट, बीझणी आदि), गूदड़ी (रल्ली, ईण्डी आदि), बान्दरवाल, पिराण्डे, कोठा-कोठी एवं डूमले, थापे व गण्डे, मेहन्दी, गोदना व माण्डने प्रमुख हैं। जो निम्नलिखित हैं :-

1. खाट—आरम्भिक समय से ही मीणा जनजाति के लोग खाट का प्रयोग सोने व बेटने के लिए करते आ रहे हैं। इनका आरम्भिक निवास स्थान जंगल व खेत होने के कारण सोते समय कीड़े-काटों से स्वयं की सुरक्षा हेतु इनकी निर्मिति की गई। यह बड़े व छोटे विभिन्न आकारों में बनाई जाती है। इसका ढांचा लकड़ी का होता है जिसे विभिन्न प्रकार की रंग-बिरंगी पतली रस्सियों से बुनकर खाट का रूप दिया जाता है। चार पाये होने के कारण इसे चारपाई भी कहा जाता है। इसके पायों को भी बुनाई की तरह पायों को भी अलंकृत रूप प्रदान किया जाता है। यह अत्यन्त सुन्दर, सरल व उपयोगी है। खाट एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवश्यकतानुसार आसानी से ले जायी जा सकती है। काफी मजबूत होने के कारण इसका ढांचा लम्बे समय अंतराल तक सही सलामत रहता है केवल इसकी बुनाई कमजोर पड़ जाने के कारण फिर से इसे बुनकर नवीन रूप प्रदान कर दिया जाता है। इनकी बुनाई में विभिन्न प्रकार के अलंकारिक पैटर्न का प्रयोग किया जाता है जैसे गोल, त्रिभुजाकार, आयताकार आदि। इसे विभिन्न रंगों की रस्सियों का प्रयोग कर नये रूप में अलंकृत किया जाता है। जिनमें लहरिया, कोहनी, फूल-पत्ती प्रमुख हैं जिन्हें देखते ही मीणा जनजाति द्वारा उत्पन्न की गयी रचनात्मकता का आभास होता है।

2. बीझणी—अर्थात् हाथ की पंखी। ग्रामीण जनजीवन में गर्मियों के दिनों में बीजणी का महत्त्व देखा जा सकता है। गर्मी से राहत पाने हेतु हर कोई पंखी से हवा करता हुआ दिखाई देता है। बीजणी एक उपयोगी वस्तु है इसकी सार-संभाल मीणा जाति की महिलाएँ बखूबी करती आई हैं। इन महिलाओं ने बीजणी को भी अपनी कला अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया तथा इसे विविध कलात्मक व आकर्षक रूपों में सजाती हैं। आरम्भ में बीजणी खजूर के पत्तों को गूथकर बनाई जाती थी। समय के साथ इसको विभिन्न सामग्रियों से बनाया जाने लगा जैसे बांस, प्लास्टिक की रिपों, गत्तों, लकड़ी आदि से। समय के साथ इसके स्वरूप में भी परिवर्तन व विविधता आई। वर्तमान में बीजणी विविध सुन्दर व आकर्षक रूपों में बनाई जाती है। बीजणी के गूथने व बुनाई में विभिन्न प्रकार की कलात्मक अलंकरण बनाए जाते हैं जो बड़े चित्ताकर्षक होते हैं। इनमें, पगल्या, मोर, फूल-पत्ती, माण्डनों की डिजाईन तथा विभिन्न ज्यामितिय अलंकरण आदि भी बनाए जाते हैं। बीजणी बुनना मीणा जनजाति महिलाओं की कला अभिव्यक्ति की परम्परा रही है। जिसका रूप सौन्दर्य के साथ बढ़ता रहा है।

3. गूदड़ी—गूदड़ी को 'रल्ली' भी कहा जाता है। यह ग्रामीण अंचलों में रोजमर्रा में प्रयोग आने वाली बहुत ही उपयोगी वस्तु है। यह एक प्रकार का बिछौना है जिसे खाटों, जमीन, पलंग व बच्चों के पालनों पर बिछाने व ओढ़ने के उपयोग में लिया जाता रहा है। मीणा जनजाति की

महिलाएं इसे बनाने में कुशल होती हैं। वे आरम्भिक समय से ही बड़ी सृजनशील रही हैं अतः अपनी सृजनशीलता का परिचय देते हुए खाली समय में फटे-पुराने कपड़ों का एवं नवीन कपड़े भी कतरनों का सदुपयोग करते हुए गूदड़ी का निर्माण करती हैं। पुराने रद्दी कपड़ों को महिलाएं एक बराबर सतह में जमाकर सबसे ऊपर सुन्दर एवं रंगीन कपड़े को रखकर गूदड़ी बनाती हैं। मोटे सफेद सूती धागे से आकल्पन पैटर्न बनाते हुए टांके लगाकर इसे पूर्ण करती हैं। यह टांके भी कई प्रकार से लगाए जाते हैं। जैसे—एकदम सीधे एक लय में। कुछ दूरी छोड़कर एक दम बराबर—बराबर इससे गूदड़ी में समरसता एवं एकरूपता आती है। इन टाकों को त्रिभुजाकार या फिर एक रेखा सीधे टाकों से उसके पास दूसरी रेखा त्रिभुजाकार। इससे सौन्दर्य में वृद्धि होती है। इसका सौन्दर्य बढ़ाने के लिए इनके किनारे पर फूंदने, कोढ़ियाँ व अन्य सामग्री आदि लगा दी जाती है। यह हल्की व मजबूत होती है, जो कई वर्षों तक प्रयोग में आती है। ऊपर का कपड़ा फट जाता है तो महिलाएं उसके ऊपर अन्य कपड़ा लगाकर गूदड़ी को फिर से नयी बना देती हैं। इसके मैली होने पर इसे आसानी से धोया जा सकता है। आवश्यकतानुसार विभिन्न-विभिन्न नापों में इसे बनाया जा सकता है। बच्चों के नीचे बिछाने के लिए छोटे नाप की बनाई जाती रही है। कभी-कभी ये महिलाएं इन पर खोल भी चढ़ा देती हैं। यह देखने में सुन्दर व रंग-बिरंगी होती हैं। यह वजन में इतनी हल्की होती हैं कि इनको उठाकर रखना व बिछाना काफी आसान होता है। इसे रखने के लिए काफी कम जगह की आवश्यकता रहती है।

इन महिलाओं की रचनात्मकता जिस प्रकार माण्डने, मेहन्दी, बुनाई आदि में दिखाई देती है उसी प्रकार गूदड़ी में भी अपनी रचनात्मकता का पूर्ण प्रयोग करती हैं। ऊपर चुन-चुनकर बहुत सुन्दर एवं रंग-बिरंगा कपड़ा लगाती हैं। साथ ही इसे बनाते समय एकरूपता का पूर्ण ध्यान रखती हैं।

इन गूदड़ियों को महिलाएं नया रूप देने के लिए बनाने के कई तरीके अपनाती हैं। पहला तरीका जिसमें ऊपर लगाया जाने वाला सुन्दर कपड़ा ओढ़नी, लहंगे व पुरुषों की सफेद धोती आदि का रहता है। जो आगे-पीछे ज्यादातर एक ही होता है। इनके बीच में पुराने, घिसे हुए व फटे हुए वस्त्र जमाकर ऊपर के कपड़ों को तीन तरफ के किनारे अन्दर से सिलकर चौथे किनारे में बाहर से टांके लगाती हैं। इसके पश्चात् पूरी गूदड़ी में मनचाहे आकार में टांके लगाती हैं। इस प्रकार गूदड़ी बनकर तैयार होती है।

दूसरी प्रकार की गूदड़ी में बनाने का तरीका तो वही होता है किन्तु किनारे (मगजी) दूसरे रंग के कपड़े से लगाती रही हैं। इसमें बीच की गूदड़ी प्लेन व किनारी फूल-पत्ती वाली या इसके विपरीत रखकर गूदड़ी को पूर्ण किया जाता है।

4. ईण्डी (चूमली)—मीणा जनजाति की महिलाओं की रचनात्मकता उनकी आवश्यकता का दूसरा पहलू है। ईण्डी इसका सुन्दर उदाहरण है। यह सुन्दर होने के साथ ही ग्रामीण अंचलों

की उपयोगी वस्तु है जिसे महिलाएं स्वयं कटे पुराने वस्त्रों से बनाती हैं। यह सिर पर बोझा रखकर बहुत दूर तक ढोने के काम आती है। इसे सिर पर रखकर बोझ को उठाना आसान हो जाता है। ईण्डी सिर पर रखकर 50 किमी से भी ज्यादा वजन उठाकर कई किमी तक महिलाएं पैदल चल लेती हैं। मीणा जनजाति का कृषि एवं पशुपालन पर आधारित होने के कारण महिलाएं पशुओं के लिए चारा, पानी, अनाज आदि वस्तुएं उठाकर लाती रही हैं।

ईण्डी दो प्रकार से बनाई जाती है पहली साधारण दूसरी अलंकरणात्मक पहली सिर्फ गोल होती है जिसे सजाया नहीं जाता। दूसरी प्रकार की सिर से लेकर कमर तक करीब चार फिट की होती है। जो विशेष अवसरों, कुंआ पूजन, शादी में बासन व चाक-भात के समय प्रयोग में ली जाती है। इसे ही विभिन्न प्रकार से सजाया जाता है। अधिकतर गोटे व पट्टियों से सजाया जाता है विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी (सुवटिया, चिड़कली, मोरया, तीतर, बटेर आदि) को रूप देते हुए ईण्डी में लटकाया जाता है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में जैसे बासन लाना, कलश भरना, देवताओं के कार्यों में ईण्डी का बड़ा महत्त्व रहा है। जहां रोजमर्रा में प्रयोग होने वाली ईण्डी साधारण होती है वहीं सामाजिक कार्यों में प्रयोग होने वाली ईण्डी सुन्दर, रंगीन व चमकदार होती है। इसकी गोटे, काँच, धागे, कोड़ी, कपड़ों की कतरने आदि से मीणा महिलाओं द्वारा सजाया जाता रहा है।

5. बान्दरवाल—प्राचीन काल से आम, अशोक व नीम आदि के पत्तों को धागे से बांधकर बान्दरवाल के रूप में मुख्य द्वार पर बांधने का प्रचलन चला आ रहा है। मीणा जनजाति में धार्मिक, वैवाहिक, अनुष्ठानिक आदि विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का बान्दरवाल मुख्य हिस्सा रहे हैं। वर्तमान समय में इन बान्दरवालों ने दूसरा रूप ले लिया है। आजकल ये कपड़े व कागज के बनाये जाते हैं, जिन्हें गोटे, कांच, सूतली, रंग-बिरंगे धोग, माचिस की तिल्ली, ऊन, कोड़ियां आदि से आज भी सजाया जाता है। कभी-कभी रंगों से भी माण्डा जाता है।

6. पिराण्डे—ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर महिलाएं खाना चूल्हे पर ही बनाती हैं। चूल्हा जलाने व अन्य कार्य के लिए ईंधन की आवश्यकता होती है। यह उन्हें गोबर से बनाये कण्डों से प्राप्त होती है। इन्हें उपले भी कहा जाता है। बारिश के मौसम में इन कण्डों को नहीं थापा जाता और इस मौसम के लिए इन्हें पिराण्डों में सुरक्षित रखा जाता है। पिराण्डे इतने सुरक्षित होते हैं कि उस पर बारिश आँधी किसी का असर नहीं पड़ता। इन पिराण्डों को इन महिलाओं द्वारा विभिन्न प्रकार से अलंकृत किया जाता है।

मीणा जनजाति द्वारा मानव एवं पशुओं को सजाना संवारना प्राचीन काल से ही प्रचलन में रहा है। ऊंट, बैल, गाय आदि का त्यौहारों के अवसर पर थापों, वस्त्रों व गण्डों द्वारा सजाया जाता रहा है। थापे-मेहन्दी व अन्य रंग द्वारा मानव एवं पशुओं के शरीर पर बनाया गया

अलंकरण है जिसके माध्यम से मानव एवं पशुओं को सौन्दर्य प्रदान कर यह जाति अपनी रचना का परिचय देती रही है। इन थापों के अलंकरण में फूल—पत्ति, पशु—पक्षी, मोर, चांद—सूरज, हाथ के थापे, ज्यामितिय आकृतियां आदि बनाये जाते रहे हैं।

आरम्भिक समय से ही मीणा जाति जंगलों व खेतों में निवास करती आयी है एवं पशु—पक्षी उसके सहचर एवं प्रेमी रहे हैं। वह पशुओं के प्रति अपनी भावात्मक व सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति पशुओं को समय—समय पर सजाकर करते आये हैं। गण्डे भी पशुओं के गले में पहनाया जाने वाली एक सजावटी वस्तु है जिसे पशुओं (गाय, भेस, बैल, भेड़ें व ऊँट) के गले में त्यौहारों (गोवर्धन पूजा) पर पहनाया जाता है। बैलों पर गण्डे को मीणा जनजाती के पुरुष विभिन्न प्रकार से बनाते हैं। धागे, मोर पंखी, रस्सी, प्लास्टिक आदि का प्रयोग के साथ ही इन गण्डों में घंटी बांध दी जाती है। जनजाति की कलात्मकता एवं रचनात्मकता का परिचय इनके रूप में देखा जा सकता है।

7. मेहन्दी—मेहन्दी सौभाग्य की प्रतीक एवं सोलह श्रृंगारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। मीणा जनजाति की महिलाएं आरम्भ से ही मेहन्दी माण्डना कला में यत्ति रखती है वह इन्हें भी भाव—विभोर किये बगैर नहीं रही। इसे उत्सवों, त्यौहारों, शादी—ब्याह, मेलों आदि मौकों पर लगायी जाती है। हिन्दू समाज में विवाह के उत्सव पर हाथ व पैरों पर विभिन्न अलंकरणों द्वारा मेहन्दी लगाकर दुल्हन को सजाया जाता है। यह सौन्दर्य वृद्धि का साधन होने के साथ—साथ मंगलकारी भी है। चरकसंहिता में इसका प्रयोग औषध के रूप में होने का उल्लेख मिलता है। अजंता—ऐलोरा के भित्ति—चित्रों में पाटलीपुत्र की राजकुमारी के हाथों व पैरों में मेहन्दी के आलेखन लिखती सहेलियाँ अंकित की गयी है। इसकी महिमा 900 वर्ष पूर्ण रस रतनाकर ग्रन्थ में नित्यानाथ सिद्ध में इस प्रकार स्वीकार की थी—

“महिन्दी पत्र निर्यासेरेव पाराणि षोऽश।

अश्वगन्धं शिलाभागे क्रमबद्ध या विभर्दयेत्।।”

मेहन्दी वह श्रृंगार है जो इस जनजाति में महलों से लेकर झोंपड़ी तक सभी जगह समान रूप से किया जाता रहा है। इसे मांडना अपने आप में ऐसी कला है जो स्निग्धता, कोमलता, कल्पना आदि स्वप्न को धरातल पर प्रस्तुत करती हैं। यह कार्य मीणा महिलाएं बड़ी ही सरलता से सहज रूप में विभिन्न रूपाकारों में प्रस्तुत करती हैं। मेहन्दी के द्वारा हाथ—पैर, दीवार व पशुओं को मीणा महिलाओं द्वारा कलात्मक अलंकरण प्रदान किये जाते हैं। इसका प्रयोग मुख्यतया पर्व, उत्सव, मेले, विवाह आदि पर किया जाता है।

8. गोदना (गुदना—शरीरी पर रचने की क्रिया अंग आरेखन)—आरम्भिक काल से ही भी मीणा जनजाति में गोदने पुरुष व महिला दोनों के द्वारा गुदवाये जाते रहें हैं। पुरुष गोदनों में अपना नाम, फूल, गमला, ओम, शिव, त्रिशूल, चक्र, कृष्ण, हनुमान, मोर, आदि गुदवाते रहे हैं।

महिलाएँ पति का नाम, सहेली का नाम, गमला, मोर, तोता, मछली, बिच्छू, फूल-पत्ती, सूर्य, चांद, पगल्या, सीता की रसोई, बेल, हिरण, बिन्दु स्वास्तिक आदि अपने शरीर पर गुदवाती रही हैं फूल-पत्ती, पुरुष एवं महिलाओं का प्रकृति के करीब होने के कारण ये उनके प्रिय विषय रहे हैं। यह मछली व मोर के साथ इसे बनवाना पसन्द करते हैं क्योंकि मछली तथा मोर त्वरित गति का उर्वरता व सात्विक प्रेम का प्रतीक है।

प्राकृतिक स्वरूपों को अधिक चुना है। प्रकृति प्रेरित आकारों में विषय विविधता भी देखने को मिलती है।

विभिन्न अंगों पर गोदने के नमूनों की तालिका

क्र.सं.	स्थान (अंग)	नमूना (गोदने के नमूने)
1.	माथे पर	विभिन्न प्रकार की छोटी-मोटी बिन्दिया
2.	पीठ पर	सीता की रसोई, मोर, तोता, बेल इत्यादि
3.	बाजू पर	मोर, तोता, फूलपत्ती, मछली इत्यादि
4.	हाथ पर	गमला, खजूर, मछली इत्यादि
5.	हथेली पर	बिच्छू, फूल-पत्ती, मोर, देवी-देवता इत्यादि
6.	छाती पर	मेर, देवी-देवता इत्यादि
7.	अंगूठे पर	बिच्छू, छुई-मुई
8.	पैर पर	मोर, हिरण, गमला इत्यादि

9. माण्डना—मीणा जनजाति की एक ऐसी रचनात्मक शैली है, जिसे उसने अपने समाज में संरक्षित किया, क्रियात्मक अन्विति का परिणाम एवं संजुज्य रूप का नाम ही माण्डना है, अर्थात् माण्डना से अभिप्रायः चित्त संरचना एवं बनाने की क्रिया से है। इसका प्रभाव से भी है, जिसमें परिकल्पना को पृष्ठभूमि के साथ विशेष परम्पराओं के आधार पर उभारना इत्यादि से भी लिया जाता है। माण्डना एक सामाजिक स्मृति है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। इस स्मृति में निरन्तर परिवर्तन भी होता रहा है। माण्डनों की सजीव परम्परा भित्ति (दीवार की विभिन्न सतह-परिन्डा), कोठा-कोठी, चूल्हा, चौखट, दुरज्जा, पोली, बार्या, गोखा, घुबार्या, ओबरी, आला, देवल, चौबारा, चोगरा, मेड़, (चलती दीवार), मींड (घर की बाह्य दीवार), दुछत्ती, ऊंच-नीच की खाड़ (ऊंची-नीची होती हुई दीवार), भूमि (आंगन, चौक, चबूतरा इत्यादि) व अंग (शरीर के विभिन्न भाग इत्यादि पर) के रूप में अधिक दिखाई देती है। इन सभी रूपों में अलग-अलग ढंग से आलेखन एवं भरने की क्रिया विशेष रूप से दोहरायी जाती है। भरने की क्रिया को देशी भाषा में भरत कहा जाता है। जिसकी विभिन्न भांति (जुआ, हरडे, चीण, फूल्या पान, पान की कातर, नागरबेल, ऊंचो-नीचों, अदल-बदल, घेवर, झालर, लहरियां, चांदण, चौपड़,

जोड़ (विभिन्न प्रकार के) घाट, लाडू, बूटा (विभिन्न प्रकार की बेलों के आलेखन का विशिष्ट लघुरूप), ज्यामीतिय रूप (गोला, तिकाना, चौकोर, षटकोण), (तारा), अष्टकोण, सीधी खड़ी, सीधी पड़ी, तिरछी इत्यादि) माण्डनों में देखने को मिलती है जो विभिन्न अवसरों पर अलग-अलग रूपों में अभिव्यक्त होती है। माण्डनों को समाज के विभिन्न रीति-रिवाज के आधार पर परम्परा एवं पृष्ठभूमि के साथ चित्रित किया जाता है। त्यौहार, पर्व, उत्सव, सांस्कारित एवं अनुष्ठानिक आधार पर बनने वाले माण्डनों के कलात्मक स्वरूप में भी भिन्नता पायी जाती है। कुछ माण्डने पर्व, उत्सव एवं अनुष्ठान के आधार पर, तो कुछ बारहमासी भी। चूल्हा-चौका, आंगण व न्हाण के तथा परिंदों के माण्डणे सप्ताह-महिना में भी घर-घर में मांडे जाते हैं। मीन पुराण में महिलाओं के द्वारा स्वस्तिक, पदम् एवं शंख आदि को अनेक बार माण्डने का उल्लेख मिलता है, जो प्रतिदिन किसी न किसी विशेष अनुष्ठान एवं पूजन विधि से सम्बन्धित होते थे। कोठा-काठी पर भी विभिन्न प्रकार की आकृतियां चिकनी सतह पर व उभारदार सतह पर अंकित की जाती है जो माण्डने का ही रूप है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आरेलस्टेन, 'अ सर्वे ऑफ एनशिएन्ट साइट्स अलांग ए लॉस्ट सरस्वती रिवर'
2. तिवारी, डां अनिल कुमार एवं सक्सैना, डॉ हरि मोहन, 'राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी', जयपुर
3. भानावत, डॉ. महेन्द्र 'लोककला मूल्य और सन्दर्भ', भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर, 1977
4. दर्भ, मौक्तिकराम 'मीणायन' सीताराम शरण, झालावाड, प्रथम संस्करण, 2040 संवत्
5. दुलार, डॉ. रविन्द्र कुमार राजस्थान में पर्यटन उद्योग (कला एवं संस्कृति) शिवम बुक हाउस, प्रथम संस्करण, 2007
6. मीणा, मदन 'जॉय ऑफ क्रिएटिविटी', सुरभि स्क्रीन आर्ट, कोटा।
7. मीणा, शकुन्तला 'मीणा जाति का अभ्युदय', आलोक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2006, जयपुर
8. मीणा, यशोदा 'मीणा जनजाति की इतिहास', जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2003
9. पाण्डेय, जी. सी. 'सोशल ट्रांसफॉर्मेशन एण्ड क्रिएटिव इमेजिनेशन' सम्पादक-सुधीर चन्द्रा, 1984



डॉ. आलोक भावसार

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग
शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

कलाविद् डॉ. आर. सी. भावसार की कलाकृतियों में पोर्ट्रेट

मालवा में शाजापुर में नगर में जन्में और अपनी किशोर उम्र से ही चित्रकला के मनोरम लोक में तूलिका का आन्तरिक अध्यात्म लेकर उतर पड़े डॉ. आर. सी. भावसार को आज कौन नहीं जानता ? उन्होंने कला की परीक्षाओं में जी. डी. आर्ट, बम्बई, एम. ए. चित्रकला तथा पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है । इस दौरान श्री भावसार इन्दौर स्कूल ऑफ के छात्र रहे जहाँ उनके कलाकार को उत्कर्ष प्रदान करने में प्रसिद्ध चित्रकार डी.जे. जोशी और चन्द्रेश सक्सेना जैसे गुरुओं का योगदान रहा । उनकी चित्रकला की प्रतिभा को सबसे पहले उनके किशोर काल में उनके हाई स्कूल के अध्यापक श्री ओमप्रकाश भटनागर और श्री गंगाधर गणेश सोमणी तथा श्री राजनारायण जोहरी ने पहचाना और उन्हें प्रोत्साहित किया । शाजापुर और इन्दौर से चित्रकला प्रारम्भिक अभ्यास पूरा कर उज्जैन आगये जहाँ उन्होंने महान पुरातत्ववेत्ता और कला गुरु वि.श्री. वाकणकर के भारती कला भवन को अपना कला-आश्रम बनाया । भावसार ने जब कला को ही अपना जीवन बनाया तो उन्होंने सोचा कि कला को उसकी एकलता के बजाय बहु आयामी क्यों न बनाया जाय, उन्होंने मूर्तिकला में भी अपनी उंगलियों को छेनी-हथोड़ी के स्पर्श से आजमाना शुरू किया । उज्जैन के ऐतिहासिक माधव महाविद्यालय में वे चित्रकला के आचार्य रहे जहाँ रहकर उन्होंने न केवल अपने महाविद्यालय को अपनी मूर्तिकला से नवाजा बल्कि विक्रम विश्वविद्यालय के लिये उसके नाम की महिमा के अनुसार 'विक्रमादित्य' की मूर्ति बनाकर उसका नाम सार्थक किया ।'

डॉ. भावसार ने दृश्य चित्रण (लेण्डस्केप) एवं पोर्ट्रेट पेन्टिंग के क्षेत्र में लम्बी साधना की है और पोर्ट्रेट पेन्टिंग उनका प्रिय विषय रहा है जिसमें उन्होंने अपनी पहचान बनाई है ।

पोर्ट्रेट शब्द की व्याख्या विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है – पोर्ट्रेट पेन्टिंग कला के क्षेत्र में एक शैली है जहाँ मनुष्य के दिखाई देने वाले रूप को अंकित किया जाता है । एक अच्छा पोर्ट्रेट वह है जो विषय की आंतरिक विशेषताओं को अंकित कर दे, न कि बाहरी रूप की साम्यता को । समान्य मान्यता यह है कि जिसमें व्यक्ति की साम्यता और सादृश्यता के दर्शन होते हैं उसे पोर्ट्रेट कहा जा सकता है । चित्रकार जिसे अपनी रेखाओं और रंगों के माध्यम से केद करले और उसमें व्यक्ति की साम्यता हो उसे पोर्ट्रेट कह सकते हैं ।

डॉ. भावसार द्वारा चित्रित पोर्ट्रेट में उपरोक्त सभी मान्यताओं के दर्शन होते हैं । श्री भावसार द्वारा चित्रित अपने आध्यात्मिक गुरु 'श्री श्री सीताराम दास ओंकारनाथ जी महाराज' पोर्ट्रेट की सराहना करते हुए किंकर विठ्ठल रामानुज ने अपने ग्रन्थ 'चित्त का नित्य महोत्सव' में लिखा है कि, "भारत में हजारों चित्रकार हैं जिन्होंने श्री उँकारनाथ देवजी के सम्पूर्ण चित्र, उनकी विचित्र भाव भंगिमाएँ, गति, स्थितियाँ आदि अपनी वृत्ति की स्फूर्ति के अनुसार अंकित की है, परन्तु इस प्रकार के चित्रकार बहुत ही कठिनाई से मिलेंगे जिन्होंने चित्र के हिसाब से नहीं वरन अपनी गहन गुरुभक्ति के फलस्वरूप कुछ—एक ऐसे असाधारण सजीव चित्र भी प्रस्तुत किये हैं जो सहस्रों सीताराम भक्तों के लिये आदरणीय हो उठे हैं । इनमें भारत प्रसिद्ध चित्रकार अविन्द्रनाथ ठाकुर के विशिष्ट छात्र, रविन्द्र नाथ ठाकुर के निकट सहयोगी एवं श्री सीताराम के शिष्य तथा कोलकाता आर्ट कालेज के भूतपूर्व अध्यक्ष मुकुल डे तथा विश्व भारती शान्ति निकेतन की एक विशिष्ट महिला चित्रकार सुश्री रानी चन्द्र भी हैं परन्तु जिन गुरु चित्रकारों ने सबसे अधिक जन प्रियता अर्जित की उनमें से एक हैं बंगाल के चन्दन भाई तथा दूसरे हैं महाकाल नगरी उज्जैन के डॉ. रामचन्द्र भावसार ।²

देवलालीकर आर्ट गेलरी इन्दौर में सृजन आर्ट फेकल्टी इन्दौर द्वारा दि. 9 सितम्बर 2001 को आयोजित उज्जैन के चित्रकार रामचन्द्र भावसार द्वारा चित्रकार श्रीमती मीरा गुप्ता को मॉडल रूप में बिठाकर पोर्ट्रेट का विशेष डिमांस्ट्रेशन, अनेक सिद्धहस्त स्थापित चित्रकारों की उपस्थिति में सम्पन्न किया गया, जिसे देखकर उपस्थित दर्शक मंत्रमुग्ध होगये । इस डिमांस्ट्रेशन के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान टाइम्स, इन्दौर समाचार पत्र ने दि. 11 सितम्बर 2001 को लिखा था —

" Saturday and Sunday afternoon, the Exhibition had special demonstration by R. C. Bhawsar and Shankar Shinde. Easy masterful strokes at Portraiture by Ramchandra Bhawsar of Ujjain was an educative experience for the advocates of abstraction. It enlivened the atmosphere for the next two days with the presence in absentia of the of the subject - Mrs. Meera Gupta - very true to her character. "³

आर्टिस्ट गिल्ड ऑफ मध्यप्रदेश द्वारा भारत भवन भोपाल में आयोजित पोर्ट्रेट डिमांस्ट्रेशन के अन्तर्गत वरिष्ठ चित्रकार रामचन्द्र भावसार ने जाने माने शिल्पकार देवीलाल पाटीदार का पोर्ट्रेट तैयार किया किया गया । लगभग 45 मिनट में पोर्ट्रेट तैयार किया गया । डिमांस्ट्रेशन देखने शहर के प्रख्यात और युवा चित्रकार मौजूद थे ।⁴ उपरोक्त डिमांस्ट्रेशन के सम्बन्ध में दिनांक 10 अप्रैल 2011 के भास्कर ने लिखा था, "क्या कला है, इंसान का पूरा व्यक्तित्व ही केनवास पर उतर आया । अद्भुत । उस मॉडल की इच्छा शक्ति भी काबिल —ए—तारीफ है जो एक घंटे से बगैर पलक झपकये हुए बैठा हुआ है । कछ ऐसा ही वार्तालाप करते दर्शक भारत भवन के अन्तरंग में शनिवार को नजर आए । मौका था यथार्थवादी शैली की चित्रकला के सुप्रसिद्ध चित्रकार रामचन्द्र भावसार द्वारा पोर्ट्रेट कला के लाइव डिमांस्ट्रेशन का । दैनिक

भास्कर एवं आर्टिस्ट गिल्ड ऑफ एम.पी. के संयुक्त आयोजन और आकृति ग्रुप द्वारा प्रायोजित राजा रवि वर्मा आदरांजलि समूह चित्र एवं शिल्प प्रदर्शनी में श्री भावसार ने मॉडल का रूप में देवलाल पाटीदार का स्वरूप केनवास पर उतारा । उन्होंने पोर्ट्रेट की शुरुआत भूरे रंग से चेहरे के बाहरी आकार बनाने से की । इसके बाद पोर्ट्रेट में विभिन्न रंगों का संयोजन करते हुए कम स्ट्रोक में मॉडल का हर एक्सप्रेशन केनवास पर उतारा ।⁵

पोर्ट्रेट पेन्टिंग की सिद्धहस्तता के कारण श्री भावसार ने महाविद्यालयों एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों में अपनी विशेष पहचान बनाई है । आपके पोर्ट्रेट पेन्टिंग के डिमान्सट्रेशन एक से अधिक बार माधवमहाविद्यालय, उज्जैन, के.पी. कॉलेज, देवास, कला महाविद्यालय, इन्दौर, शासकीय सरोजिनी नायडू महाविद्यालय, भोपाल, आगरा कॉलेज, आगरा, माधव महाविद्यालय, ग्वालियर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खेरागढ़, अलिगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलिगढ़, भारत भवन, भोपाल, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, अरविन्दो आश्रम, पॉडीचेरी में हो चुके हैं जहाँ आपने अपनी कार्यशैली प्रणाली से जिज्ञासुओं को प्रभावित किया है ।

चित्र सृजन में प्रायः पहिले रेखांकन किया जाता है और यही कार्य प्रणाली पोर्ट्रेट पेन्टिंग में भी प्रचलित है परन्तु श्री भावसार रेखांकन के बजाय, सीधे सीधे रंगों को लगाकर कार्य प्रारम्भ करते हैं । एक कपड़े का टुकड़ा ले कर उससे छाया प्रकाश के रंगों को केनवास पर लगाकर बैठे हुए मॉडल की आकृति रचते हैं, उसके पश्चात तुलिका के माध्यम से रंगों के विभिन्न बलों(ज्वदमे) को लगाकर, उसकी बारीकियाँ उभार कर साम्यता उत्पन्न करते हैं और देखते ही देखते, साम्यता युक्त पोर्ट्रेट, एक घण्टे की अवधि में तैयार हो जाता है ।

इसके अतिरिक्त आपने अपनी कार्यप्रणाली में कई प्रयोग पोर्ट्रेट बनाते समय किये हैं । कभी उँगलियों से कभी अंगुठे से, तो कभी कपड़े से, तो कभी रोलर से रंगों को लगाकर पोर्ट्रेट बनाये हैं ।

यहाँ श्री भावसार के डिमान्सट्रेशन से सम्बन्धित कुछ पोर्ट्रेट प्रस्तुत है –

प्रस्तुत (चित्र क्रमांक 1) एक ऐतिहासिक चित्र है जो कि मध्यप्रदेश की समकालीन कला के जनक, आचार्य श्री दत्तात्रय दामोदर देवलालीकरजी का है । एम. ए. हुसेन, नारायण श्रीधर बेन्द्रे, डी. जे. जोशी जैसे विश्वविख्यात चित्रकार श्री देवलालिकर के शिष्य रहें हैं । इस पोर्ट्रेट की भी एक कहानी है । चर्चा के दौरान डॉ. आर. सी. भावसार ने उक्त पोर्ट्रेट के बारे में बताया कि “सन 1973 में श्री देवलालिकर उज्जैन के प्रतिष्ठित चिकित्सक” डॉ. व्ही. डी. मुगी के यहाँ आये थे, मैं, उस समय माधव महाविद्यालय, उज्जैन में चित्रकला का प्राध्यापक था, मैंने जब सुना कि श्री देवलालिकर सा. उज्जैन आये हैं तो मैं. उनसे भेंट करने पहुँचा तथा उन्हें माधव महाविद्यालय के चित्रकला विभाग में पधारने के लिये निवेदन किया । उन्होंने कहा मैं वहाँ क्या

करुंगा ? मैंने निवेदन किया कि हमारा विभाग आपका सम्मान करना चाहता है तथा मैं आपका पोर्ट्रेट करना चाहता हूँ । देवलालिकर साहब ने कहा मैं अस्वस्थ हूँ और मेरा महाविद्यालय में आना सम्भव नहीं है, और यदि तुम मेरा पोर्ट्रेट बनाना चाहते हो तो यहाँ आ कर बनालो, परन्तु मैं दस मिनट से अधिक सीटिंग नहीं दें पाउँगा । मैंने उन्हें हाँ बोला और अपने कुछ विद्यार्थियों को साथ लेकर डॉ. मुँगी के घर पहुँचा और दस मिनट में पोर्ट्रेट बना दिया । देवलालिकर सा. बहुत प्रसन्न हुए और पोर्ट्रेट पर बड़े बड़े अक्षरों में अपने हस्ताक्षर कर दिये ।” ° (चित्र क्र. 2)

सन 2003 में ऑल इंडिया फाईन आर्ट्स एन्ड क्राफ्ट सोसायटी दिल्ली द्वारा आयोजित कला कुम्भ बीकानेर में भावसार द्वारा दिये गये डिमाँस्ट्रेशन के चित्र (चित्र क्र. 3, 4)

उज्जैन में डॉ. भावसार द्वारा पोर्ट्रेट डिमाँस्ट्रेशन ‘गुजराती युवती’ का चित्र (चित्र क्र. 5)

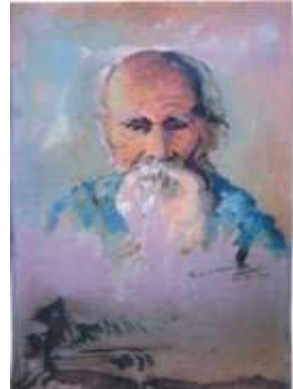
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के चित्रकला विभाग में डिमोन्सट्रेशन सं सम्बन्धित पोर्ट्रेट (चित्र क्र. 6)

संदर्भ ग्रन्थ

1. रमेश दवे : समावर्तन मासिक पत्रिका, जुलासई 2009 पृष्ठ 62
2. किकर विठ्ठल रामानुज : चित्त का नित्य महोत्सव, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 232
प्रकाशक – श्री मुकेश चतुर्वेदी, श्री राज सुपे, श्री उँकार मठ, ऑंकारेश्वर,
जिला खण्डवा, मध्य प्रदेश
3. HT Indore live, Tuesday, September 11, 2001
4. पीपुल्स समाचार, भोपाल, रविवार 10 अप्रैल, 2011
5. दैनिक भास्कर, भोपाल, 10 अप्रैल 2011 रविवार
6. डॉ. आर. सी. भावसार से साक्षात्कार के आधार पर



(चित्र क्र. 1)



(चित्र क्र. 2)



(चित्र क्र. 3)



(चित्र क्र. 4)



(चित्र क्र. 5)



(चित्र क्र. 6)

कीर्ति सुधा मुद्गल
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

भारतीय संघ में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं

200 वर्षों के लम्बे संघर्ष के बाद भारत ने आजादी प्राप्त की लेकिन अभी भी स्वतंत्रता को हम पूर्णतया सफल नहीं कह सकते थे। भारत की स्वाधीनता के बाद विशाल भारत के सामने उसकी अनेकता, देशी रियासतों की समस्या, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता की समस्या ज्वलन्त थी। विविधता में एकता की छवि वाले इस भारत देश ने राष्ट्रीय एकीकरण के उद्देश्य से हमारी राजनीतिक व्यवस्था में संघीय ढाँचे को स्वीकार किया। जिससे विभिन्न संस्कृतियों, भाषा, बोली, धर्मों, जातियों, वर्गों में सामंजस्य स्थापित किया जा सके। 1947 में जब हम स्वतंत्र हुए तब भारत का ही एक अंश अलग से पाकिस्तान बना। इसने संविधान निर्माताओं के प्रान्तीय स्वायत्ता के आदर्श को भुला दिया क्योंकि वो अलगाव का दर्द झेल चुके थे। अब उनके सामने सिर्फ एक ही ध्येय शेष बचा था भारत की एकता। इस एकता के लिए केन्द्र को शक्तिशाली बनाना अत्यन्त आवश्यक था।

देश के बंटवारे से प्रभावित होकर संविधान निर्माताओं प्रान्तीय स्वायत्तता, क्षेत्रीयतावाद, व्यक्ति स्वतंत्रताओं की उपेक्षा करते हुये राष्ट्रीय एकीकरण हेतु एकीकृत संघीय ढाँचे की रचना की। उन्होंने संघात्मक व एकात्मक ढाँचे की प्रणालियों को जो एक-दूसरे की परस्पर विरोधी है को मिलाकर एक विचित्र संघीय पद्धति को निर्माण किया। जिसमें राज्यों की तुलना में केन्द्रीय सरकार को कई गुना अधिक शक्तियां सौंपी गईं।

भारत का संविधान पूर्णतया नवीन नहीं बनाया गया था भारतीय शासन अधिनियम 1935 की 200 धाराओं को नवीन संविधान में शामिल कर लिया गया था। उन्होंने एकीकृत संस्थात्मक ढाँचे को राष्ट्रीय एकता हेतु स्वीकार कर लिया जबकि 1935 के अधिनियम की अनेक धाराएं अलोकतांत्रिक थीं।

विकृत संघीय व्यवस्था :- भारतीय संविधान में संघ शब्द का उल्लेख नहीं अपितु राज्यों का संघ शब्द का प्रयोग हुआ है। भारत के इस विशिष्ट संघवाद के अंतर्गत दोहरे शासन तंत्र की स्थापना की गई और शक्तियों का बंटवारा केन्द्र और राज्यों के बीच किया गया है। लेकिन संघीय ढाँचे की अन्तर्वस्तु को केन्द्र की ओर इतना अधिक झुका दिया कि इसकी मूल

आत्मा विकृत हो गई । इसलिए इसे विकृत संघवाद कहा जायेगा। संघीय शासन की दुर्बलताओं को दूर करने के लिए भारत के संघीय शासन में एकात्मक शासन के लक्षणों को अपना लिया गया है। बंटवारे से भयभीत होकर एकीकृत उपनिवेशवाद के ढाँचे को ग्रहण करना, राज्यों को आर्थिक प्रशासकीय हितों के लिये 'साधन' बनाना और क्षेत्रीय ताकतों को शंका की दृष्टि से देखा जाना इस बात का प्रतीक है।

आधुनिक भारतीय संघीय व्यवस्था अनुबन्धात्मक न होकर समर्पणात्मक है जिसका लक्ष्य केन्द्र से राज्यों को सत्ता का अधिकार दिलाना था। जे.सी. जौहरी के शब्दों में "संघीय पद्धति के संचालन में राजनीतिक दल की भूमिका एक संविधानेत्तर अभिकरण के रूप में होती है।" ए. एच. बिर्च व ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय संघ को सहयोगी संघवाद के नाम से सम्बोधित किया है। लेकिन इसे 'केन्द्रीयकृत' संघवाद की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इस संघीय ढाँचे में केन्द्र की स्थिति कानूनतः सर्वोच्च मानी गई है। इस 'विकृत संघवाद' के लिए एक मात्र उत्तरदायी तत्व देश का बंटवारा था।

केन्द्रीयकरण और राष्ट्रीय एकीकरण :- संविधान निर्माता राष्ट्रीय एकता की हर दशा में रक्षा करना चाहते थे। उनके अनुसार केन्द्रीयकृत शासन व्यवस्था ही देश की भौगोलिक एकता को बना सकता है। भारतीय इतिहास में वह समय चाहे मौर्यकाल, मुगलकाल जब केन्द्र पर एक शक्तिशाली सत्ता हो तथा उसने सभी विरोधियों को समाप्त कर दिया हो। पिछले वर्षों में एक दलीय शासन और प्रधानमंत्रीय भूमिका के उदय से हमारी संघीय व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार अत्यधिक शक्तिशाली हुई है। राज्यों को अस्तित्व केवल नगरपालिकाओं के समान हो गया। केन्द्र राज्यों के बढ़ते हुए शक्ति सन्तुलन के कारण प्रादेशिक दलों का उदय हुआ जिसे दबाने के लिए संवैधानिक उपबन्धों का सहारा केन्द्रीय सरकार ने किया। भारतीय संविधान में राज्यपाल का पद तथा धारा 356 को जोड़ने के पीछे प्रेरित तत्व राष्ट्रीय एकता था। लेकिन सन् 1967 के बाद के राजनीतिक क्रियाकलापों से यह स्पष्ट हो गया कि सरकार ने राज्यपाल के पद व राष्ट्रपति शासन के उपबन्धों का दुरुपयोग अपनी स्वार्थ परक राजनीति के कारण किया। राज्यपाल के पद व धारा 356 का राजनीतिकरण कर दिया गया। दल बदल की अवसरवादिता का लाभ उठाते हुए क्षेत्रीय समर्थन की सरकारों को अस्थिर बनाकर उन्हें सत्ता से हटा दिया गया। 356 धारा का दुरुपयोग का उदाहरण केरल में 1959 का है जिसमें लोकतांत्रिक तरीके से चुनी साम्यवादी पार्टी को पदच्युत किया गया। धारा 356 के प्रयोग का प्रमुख आधार कानून और व्यवस्था की स्थिति थी लेकिन पंजाब में एक वर्ष तक (अगस्त 1982 से 6 अक्टूबर 1983) कानून और व्यवस्था की स्थिति अत्यधिक दयनीय रही मगर वहां केन्द्रीय सरकार ने राजनीतिक हितों के कारण 356 के प्रयोग में देरी की। राज्यपाल का पद केन्द्र व राज्य के बीच विवाद का एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है। राज्यों के राज्यपाल अब पूर्णतः केन्द्रीय सरकार के 'अभिकर्ता' माने जाते हैं। क्योंकि इस पद पर अब उन राजनीतिज्ञों या प्रशासकों को नियुक्त किया जाता है जो केन्द्र के प्रति पूर्ण वफादारी का परिचय देते हैं।

राज्यपाल की विवादास्पद भूमिका :- भारतीय संविधान निर्माता केन्द्र की भांति राज्यों में संसदीय शासन प्रणाली अपनाना चाहते थे। साथ ही राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए राज्यों पर केन्द्र का नियंत्रण भी रखना चाहते थे। इसलिए संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल की विचारित एवं संसदीय व्यवस्था को अपनाया। इसलिए राज्यों में स्वतंत्र संसदीय प्रणाली को केन्द्र की भांति अपनाने पर बल दिया गया। वहीं राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए राज्यों पर केन्द्र का नियंत्रण भी सुनिश्चित किया गया। इन्हीं कारणों से भारतीय संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल की दोहरी भूमिका का राजनीतिक व्यवस्था में प्रावधान किया।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति में राज्यपाल ने मनमाने तरीके से मुख्यमंत्री की नियुक्ति व पदच्युति की। उदाहरण—वर्ष 1967 में राजस्थान के राज्यपाल सम्पूर्णा नन्द ने संयुक्त मोर्चा के कांग्रेस से अधिक सीटें प्राप्त होने के बावजूद कांग्रेस को आमंत्रित किया। 1977 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने बहुमत प्राप्त मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को हटाकर जगदम्बिका पाल को मुख्यमंत्री की शपथ दिलाई। राष्ट्रपति के लिए विधेयकों को आरक्षित रखने के अधिकार का भी केन्द्र को इशारे पर प्रयोग किया। मई 1977 में रोमेश भण्डारी ने भाजपा को अवसर न देते हुए राष्ट्रपति शासन की सिफारिश की।

उपरोक्त दी संवैधानिक व्यवस्थाओं (राज्यपाल का पद व राष्ट्रपति शासन) के दुरुपयोग के फलस्वरूप क्षेत्रीय शक्तियां पुनः प्रबल हो गईं। सरकार के सामने ये मांगें रखी गईं कि केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के विपरित विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त को लागू किया जाए। क्योंकि केन्द्रीयकरण से अस्थिरता व अवसर वादिता को बढ़ावा मिला है। राजनीतिक दलों में विश्वास समाप्त हो संदेह व अविश्वास की भावना व्याप्त हुई। राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से भारत में एकीकृत न्यायिक व्यवस्था व एकीकृत 'सिविल सेवायें' के ढाँचे को ग्रहण किया गया। लेकिन धीरे-धीरे इनकी कार्यप्रणाली, तटस्थता व निष्पक्षता पर संदेह किया जाने लगा। उदाहरणार्थ केन्द्र सरकार ने एकीकृत सेवाओं का लाभ अपने दलीय हितों के लिए प्राप्त किया। अखिल भारतीय कर्मचारी जो लगन व उत्साह केन्द्रीय सरकार की योजनाओं को करने में दिखाते हैं वो राज्य स्तर के कार्यक्रमों में नहीं दिखाते। इस प्रकार अखिल भारतीय सेवाओं का राजनीतिकरण कर केन्द्र ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की।

भारतीय संविधान में इकहरी नागरिकता व एकीकृत न्याय व्यवस्था थी। लेकिन 1973 की घटनाओं के पश्चात ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रीय सरकार भारत में प्रतिबद्ध न्यायपालिका की स्थापना की ओर झुक गई हैं। न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्तियां और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के हस्तान्तरण पर न्यायपालिका व कार्यपालिका के बीच जो तनावद मौजूद है इससे न केवल राष्ट्रीय एकता पर आँच आएगी अपितु न्यायपालिका में राजनीतिक हस्तक्षेप से न्यायालयों की निर्भिकता और स्वतंत्रता पर भी कुठाराघात होगा।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन, वित्तीय साधनों एवं औद्योगिक गतिविधियों पर केन्द्रीय नियंत्रण, राज्यपाल के पद का अन्धस्वार्थरता के लिए इस्तेमाल केन्द्र के हाथों में सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण एवं राज्यों के क्षेत्र में केन्द्रीय हस्तक्षेप आदि कारणों के कारण क्षेत्रीय दल आवाज उठा रहे हैं कि राज्यों के मामले में अनावश्यक केन्द्रीय हस्तक्षेप को रोका जाए। यदि राज्यों को कमजोर बनाकर केन्द्र सबल होता है इस प्रवृत्ति से देश में अधिनायकवादी शासन की स्थापना होगी।

राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधाएं :- राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को राजनीतिक दृष्टिकोण से सुदृढ़ करने हेतु लोकतांत्रिक सहभागिता को पुनः जीवित करना होगा। पंचायती राज व्यवस्था से स्थानीय स्तर पर राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई लेकिन इन संस्थाओं को भी राजनीतिकरण होने के कारण ये संस्थाएं राज्य सरकारों के हाथों की कठपुतली बन गई।

राष्ट्रीय एकीकरण से तात्पर्य राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखना होता है। भारत में क्षेत्रीयतावाद भूमिपुत्र की अवधारणा ने जन्म लिया। जिसके कारण पृथक राज्यों की मांग, स्वायत्ता का प्रश्न, केन्द्र राज्य झगड़े भारतीय संघ से पृथक होने के मुद्दे, क्षेत्रीयता वाद के रूप में भाषावाद आदि राष्ट्रीय एकीकरण के लिए चुनौती हैं। साम्प्रदायिकता, अशिक्षा, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद आदि के कारण देश का विकास प्रगति बाधित हो रही है।

असम व पंजाब में क्षेत्रीयतावाद की समस्याएं आक्रामक हो चुकी हैं। अगर राजनीतिक दल अपने राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर इन्हें हल करने का प्रयत्न करते तो असम की यह समस्या इतना भयावह रूप न लेती। भारत में विभिन्नता और अनेकताओं की मूल समस्या अशिक्षा, शोषण, गरीबी, आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछड़ापन हैं। देश में भावात्मक एकता की प्राप्ति के लिए इस समस्या का हल एक ठोस रचनात्मक नीति के द्वारा निकालना होगा।

सांस्कृतिक बाहुल्य तथा राष्ट्रीय एकीकरण :- यह भारत के सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। 200 वर्षों तक अंग्रेजों के काल में सांस्कृतिक एवं भाषात्मक विचार धाराओं का आर्थिक व राजनीतिक शोषण हुआ था। देश में अनेक विघटनकारी प्रवृत्तियां उत्पन्न हुई थी। देश की संविधान सभा के सामने देश की एकता को बनाये रखने का प्रश्न उत्पन्न हो गया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने, भारत की सभी जातियों, सम्प्रदायों, क्षेत्रीय भाषाओं और सांस्कृतिक विचारधाराओं में "भातृभाव" उत्पन्न करने का वर्णन है। भारतीय संविधान में न्याय, स्वतंत्रता, बंधुत्व के वर्गभेद, भेदभाव, शोषण, पिछड़ापन समाप्त किया जा सके।

भारत की स्वतंत्रता व संविधान निर्माण के बाद भारत के विभिन्न भागों में भाषायी, साम्प्रदायिक तथा क्षेत्रीय प्रवृत्तियां उभरने लगी। भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की मांगें उभरने लगी। एस. के. दर की अध्यक्षता में दर आयोग का गठन किया। उनकी सिफारिशों के

अनुसार राज्यों का पुर्नगठन केवल प्रशासकीय आधार पर ही किया जाए। क्योंकि भाषायी आधार पर राज्यों के गठन से देश की एकता के लिए संकट उत्पन्न हो सकता है। भाषायी व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों की उपेक्षा के कारण क्षेत्रीयता आक्रामक रूप लेने लगी। 1952 तक आन्दोलन इतना उग्र हो गया कि 1953 में भाषा के आधार पर आन्ध्रप्रदेश का निर्माण किया गया। 1956 के पश्चात देश के विभिन्न भागों में भाषायी, सांस्कृतिक और प्रादेशिक प्रवृत्तियों की आवाज और अधिक बुलन्द हुई। इस प्रकार 1960, 1966, 1971, 86, 87, 2000 में विभिन्न राज्यों का गठन किया गया। इन राज्यों के निर्माण के पीछे भाषायी क्षेत्रीयता, आर्थिक विकास प्रादेशिक, विशालता और सम्प्रदाय आदि प्रमुख आधार थे।

यह हमारी भारतीय राजनीति के लिए यह बहुत ही दुर्भाग्य की बात है कि प्रादेशिकता एवं क्षेत्रीयतावाद का तात्पर्य पृथकतावादी प्रवृत्तियों से लिया गया वस्तुतः भाषाई या प्रादेशिक क्षेत्रीयता की भावना को अक्षुण्ण नहीं बनाती। राष्ट्रीयता और प्रादेशिकतावाद एक-दूसरे के पूरक है क्योंकि प्रादेशिकतावाद ही राष्ट्रीयता की भावना को जन्म देने में सहायक होती है। यदि किसी भी व्यवस्था में क्षेत्रीय भावनाओं की उपेक्षा की जाती है तो भावात्मक रूप से राष्ट्रीयता की भावना भारी अनुपात में कमजोर पड़ेगी। हमारे देश में क्षेत्रीयता को जातीयता व सम्प्रदायवाद का एक हथियार माना गया है। हमारे देश में क्षेत्रीय व भाषायी ताकते अपने आर्थिक विकास के लिए क्षेत्रीयता, जातीयता, सम्प्रदायवाद सौदेबाजी का हथियार है। हमें यह नहीं सोचना चाहिए की हर स्वायत्ता की मांग से देश की एकता खण्डित होती है। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए क्षेत्रीय भावनाओं को उदार दृष्टि से देखना होगा। क्षेत्रीयता पर आधारित शक्तियों का आर्थिक, सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से विकास करके इन्हें राष्ट्रीय विचारधारा के साथ जोड़ना होगा।

कांग्रेस के एकदलीय प्रभुत्व शासन की वजह से उन्होंने राज्यपालों के पद, आर्थिक नियोजन, वित्तीय सहायता व धारा 356 व दल बदल की अवसरवादिता के साधनों से क्षेत्रीय दलों के समर्थन की सरकारों को या तो कमजोर किया गया या बर्खास्त किया। उन्होंने राष्ट्रीय एकता का अर्थ राजनीतिक एकरूपता से लिया और आज भी यहीं अवधारणा चल रही है।

1971 में कांग्रेस ने क्षेत्रीय दलों के प्रभाव व सौदेबाजी की क्षमता को क्षीण करने के लिए सभी छोटे-छोटे क्षेत्रीय दलों का विलय कांग्रेस पार्टी के भीतर कर लिया। कुछ इनसे बाहर रहे जैसे जम्मू कश्मीर में नेशनल कांग्रेस व तमिलनाडु में डी.एम.के.। आज पुनः उत्तर पूर्वी राज्यों, केरल, कर्नाटका, आ.प्र., असम, जम्मू कश्मीर आदि में क्षेत्रीय ताकतों का दबदबा है।

1999 के लोकसभा चुनावों के बाद गठबंधन सरकारों का युग आया इसके बाद क्षेत्रीय दलों को थोड़ा महत्व मिला। भारत में मत प्राप्त करने के लक्ष्य से भाषात्मक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के साथ चुनावी गठबंधन किये हैं। कांग्रेस ने साम्प्रदायिक दलों से राजनीतिक स्तर पर गठबंधन करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया। केवल यह सोचना कि प्रादेशिक प्रवृत्तियों

पर क्षेत्रीय ताकते राष्ट्रीय एकता को अनेक टुकड़ों में बांट सकती हैं। रुस में भी विभिन्न जातियां व राष्ट्रीयता की विभिन्नताएं मौजूद हैं। फिर भी वहां के विकास व एकता पर इसका प्रतिकूल असर नहीं पड़ा। राज्यों के स्तर पर क्षेत्रीय ताकतों की उपेक्षा की गई सरकार यह भूल गई है कि ब्रिटिश सरकार के विरोध व स्वतंत्रता के लिए सभी उपराष्ट्रीय शक्तियों ने मिलकर एकता प्रदर्शित की थी तथा उसका विकास भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संरक्षण में हुआ था। यदि उपराष्ट्रीयता की भावना या क्षेत्रीयता किसी कारणवश विकृत रूप धारण कर राष्ट्रीय एकता को चुनौती पेश करें तो उसे नियंत्रित करने की आवश्यकता है। इसके लिए केन्द्रीय प्रशासन के पास असीम शक्तियां हैं। यहीं नहीं, संविधान के लागू होने के पश्चात हमारी संघीय व्यवस्था ने यह क्षमता अर्जित कर ली है कि संघीय सरकार क्षेत्रीयता और साम्प्रदायिकता पर आश्रित दलों को पृथक्वादी मनोवृत्ति से हटाकर राष्ट्रीय जीवन की धारा की ओर मोड़ा है। उदाहरण तमिलनाडु में डी.एम.के. पार्टी पहले उग्र क्षेत्रीयतावाद के आधार पर तमिल राज्य की मांग पर उतारू थे पर अब संविधान की सीमा में अधिक स्वायत्तता की मांग कर रही है। आज आवश्यकता है कि राष्ट्रीयता व उपराष्ट्रीयता के विचारों में परस्पर सामंजस्य स्थापित किया जाए। न्यायपालिका ने भी इसमें सहायक भूमिका निभाई है। क्षेत्रीय व स्थानीय समस्याओं के हेतु समुचित नवीन शिक्षा प्रणाली, अच्छी योजनाएं, आर्थिक विकास, सुशासन, सशक्त जनमत, आधुनिकीकरण आदि की आवश्यकता है। वर्तमान समय में तेलंगाणा के मुद्दे पर फिर यह बहस शुरू हो गयी है कि 29 वे राज्य का निर्माण कहीं राजनीतिक लाभ के लिए तो नहीं किया जा रहा। इससे कितने राज्यों में अलग राज्य बनाने के सुर तेज होंगे। राज्यों का पुनर्गठन केवल प्रशासकीय सुविधा के अनुकूल अपितु सामाजिक एकता, आर्थिक विकास व राजनीतिक व्यवहारिता के आधार पर किया जाएगा। केवल नये राज्यों के बना देने से समस्या समाप्त नहीं हो जाती। झारखण्ड, छत्तीसगढ़ का हाल हमारी आँखों के सामने है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. एम. वी. पायली "इण्डियन कान्स्टिट्यूशन" पृ.-285-289
2. राबर्ट एच. हार्डगेव "इण्डिया : गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलीटिक्स इन ए डवलपिंग नेशन (लंदन : 2970 पृष्ठ 44)
3. के.सी. व्हीचर "फेडरल गवर्नमेन्ट" पृ-224
4. जे.सी. जौहरी "भारतीय शासन एवं राजनीति"
5. ओ.पी. गोयल "इण्डिया गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन दिल्ली" 1979 (लाइफ एण्ड लाइट पब्लिकेशन) पृ-53
6. होबसन एण्ड डगलस "इण्डियन डेमोक्रेसी" विकास पब्लिकेशन पृ-125
7. के.एम. मुंशी, सी.ए.डी. टवस टप्पू पृ-927
8. एन.एस. गहलोत, दी ऑफिस ऑफ गवर्नर : इमेज एण्ड रिएलिटी (इलाहाबाद)

9. ए. प्रसाद : सेन्टर स्टेट पावर अण्डर इण्डियन फ़ेडरल सिस्टम (एन डी : डीप एण्ड डीप पब्लिकेशन) 1982
10. इ.एम.एस, नम्बूदरीपाद, नेशनल पॉलिटिकल बैंक ग्राउण्ड ऑफ इण्डियन फ़ेडरलिज्म" कुरीन एण्ड वर्जिश, पृ.-64
11. एच.एस. वर्मा : रुलिंग पार्टीज एण्ड फ़ेडरल पॉलिसी, इन यूनियन स्टेट रिलेशन, पृ-196
12. मॉरिस जॉन्स : डब्ल्यू.एम., पॉलियामेन्ट इन इण्डिया (लन्दन-1957) पृ-21,22
13. के. संस्थानम : "यूनियन स्टेट्स रिलेशन इन इण्डिया" 1960 पृ-47
14. के. वी. राव. "पॉलियामेन्ट्री डेमोक्रेसी ऑफ इण्डिया-ए क्रिटिकल कमेन्टरी, पृ-349
15. मायरन वीनर : "पॉलिटिकल एण्ड सोशल इंटीग्रेशन कार्मस एण्ड स्ट्रेट्जीज पृ.-202



सत्य नारायण
शोधार्थी
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

राजस्थान में पत्रकारिता का उद्भव और विकास

भारत में पहला समाचार पत्र यद्यपि सन् 1780 में प्रारम्भ हुआ जबकि राजपूताना में इसके उनहत्तर वर्ष बाद सन् 1849 में कोई पत्र निकला। भरतपुर के शासक ने शासन की ओर से उर्दू एवं हिन्दी में द्विभाषी पत्र 'मजहरूल सरूर' सन् 1849 में प्रकाशित किया। इस मासिक पत्र को राजपूताना का सर्वप्रथम पत्र माना जाता है।

सन् 1856 में जयपुर से हैडमास्टर कन्हैयालाल के सम्पादन में एक द्विभाषी पत्र 'रोजतुल तालीम' अथवा 'राजपूताना अखबार' प्रकाशित हुआ। इसमें शिक्षाप्रद समाचारों के साथ-साथ मनोरंजनात्मक विषय भी छपते थे। पत्र में विज्ञापन भी दिये जाते थे, जिनका मूल्य दो आने प्रति पंक्ति निर्धारित किया गया था। अजमेर से सन् 1861 में 'जगलाभ चिन्तक' तथा सन् 1863 में 'जगहित कारक' का प्रकाशन शुरू हुआ। ये पत्र पूर्णतः हिन्दी में निकलते थे एवं इनकी भाषा तत्कालीन हिन्दी के विकासमान स्वरूप को प्रतिबिंबित करती थी।

जोधपुर दरबार की ओर से सन् 1864 में 'जोधपुर गवर्नमेन्ट गजट' शुरू हुआ। जोधपुर से ही सन् 1866 में 'मारवाड़ गजट' शुरू हुआ। इसी वर्ष जोधपुर में उर्दू में 'मुहिबे मारवाड़' तथा हिन्दी में 'मरुधर मित्र' शुरू हुए। 'मारवाड़ गजट' जोधपुर महाराजा तख्त सिंह के काल में शुरू हुआ, इस अखबार के प्रबंधकर्ता बाबू हीरालाल थे। यह अखबार न केवल सरकारी सूचनाएँ प्रकाशित करता था, अपितु कांग्रेस की गतिविधियों पर भी टीका-टिप्पणी करता था। उदयपुर से सन् 1869 में 'उदयपुर गजट' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्र हिंदी में था। सन् 1879 में मेवाड़ शासक सज्जन सिंह के नाम से यह पत्र 'सज्जन कीर्ति सुधाकर' के नाम से निकलने लगा। 'जयपुर गजट' सन् 1878 में जयपुर से निकलना प्रारम्भ हुआ। इसी दौरान अजमेर से 'राजस्थान ऑफिशियल गजट' के नाम से भी एक पत्र निकला।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से नाथद्वारा से पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने सन् 1881 में 'विद्यार्थी सम्मिलित हरिश्चन्द्र चंद्रिका एवं मोहनचंद्र चंद्रिका' का प्रकाशन शुरू किया। अजमेर से सन् 1882 में 'देश हितैषी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ तथा नाथद्वारा से सन् 1883 में गोस्वामी गोवर्द्धनलाल के संरक्षण में वल्लभ कुल सम्प्रदाय का मासिक 'संदर्भ स्मारक-संदर्भ प्रचारक' प्रारम्भ हुआ। सन् 1884 में जयपुर से मासिक 'समाचार मार्त्तण्ड' एवं इसी वर्ष फतहपुर से 'कायस्थ व्यवहार' का प्रकाशन शुरू

हुआ। इस दौर के जन अभिमुख पत्रों में सुधारवादी स्वयं के प्रमुखतया प्रखरता से उभरने तथा भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज बुलंद करने से समाचार पत्रों के प्रति लोगों की रूचि बढ़ी।

अजमेर से 8 अगस्त सन् 1885 को अंग्रेजी साप्ताहिक 'राजपूताना मालवा टाइम्स' एवं हिन्दी में 'राजस्थान पत्रिका' के नाम से इसका प्रकाशन शुरू हुआ। इसी वर्ष अजमेर से मौलवी मुरादअली बीमार के संपादकत्व में उर्दू साप्ताहिक 'राजपूताना गजट' तथा हनुमान सिंह के संपादकत्व में अंग्रेजी का पहला पत्र 'राजपूताना हैराल्ड' छपा। सन् 1885 में ही आर्य समाज, अजमेर के पहले मंत्री मुन्नालाल शर्मा द्वारा 'भारतोद्धारक' नामक मासिक पत्र निकाला गया। जयपुर से इस वर्ष मासिक पत्र 'सदाचार मार्तण्ड' प्रकाशित होने लगा। बीकानेर से सन् 1887 में 'बीकानेर गजट' का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

मुंशी समर्थदान ने सन् 1889 में अजमेर से साप्ताहिक 'राजस्थान समाचार' का प्रकाशन सम्पादन शुरू किया। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अनुसार यह पहला व्यावसायिक दैनिक था। जनवरी सन् 1890 में जोधपुर से 'प्रसिद्ध चित्रावली' का प्रकाशन हुआ। यह पहला सचित्र मासिक हिन्दी-उर्दू पत्र था तथा मुंशी देवीप्रसाद इसके सम्पादक थे। 20 फरवरी, सन् 1890 को बूंदी से 'सर्वहित' पाक्षिक का प्रकाशन हुआ। इसके प्रथम सम्पादक रामप्रताप शर्मा थे, फिर लज्जाराम शर्मा सम्पादक हो गए। सन् 1895 में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा अजमेर से जैन धर्म विषयक पत्र 'जैन गजट' निकाला गया।

जयपुर से सन् 1889 में 'भारत मार्तण्ड,' सन् 1902 में समालोचक एवं 11 फरवरी, सन् 1905 को पण्डित माधव प्रसाद शास्त्री के सम्पादन में मासिक 'भारत सर्वस्व' निकले। सन् 1889 में अजमेर से मासिक 'परोपकारी' निकला। यह आर्य समाज की परोपकारिणी सभा का पत्र था। अजमेर से ही श्रीमद् दयानन्द अनाथालय के मुखपत्र के रूप में नवम्बर सन् 1903 में 'अनाथ रक्षक' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके संपादक सेठ मांगीलाल कवि किंकर थे। भरतपुर से सन् 1911 में 'भरतपुर गजट' तथा धौलपुर से सन् 1914 में 'धौलपुर गजट' प्रारम्भ हुए। सन् 1915 में आबूरोड से मासिक 'हिन्दी साहित्य ग्रंथावली' एवं भरतपुर से 'निबंधमाला' तथा सन् 1916 में अजमेर से जगन्नाथदास के संपादन में रामानुज सम्प्रदाय के मासिक पत्र 'श्री वैष्णव' का प्रकाशन शुरू हुआ।

सन् 1918 में अजमेर से त्रिभाषी 'मेरवाड़ा गजट' तथा जोधपुर से पाक्षिक 'युगांतर' निकला। इसी वर्ष जोधपुर से मासिक 'मारवाड़ी ओसवाल' एवं 'ओसवाल' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार राजस्थान में पत्रकारिता के विकास के इस आविर्भाव काल में अनेक पत्र निकले परंतु इस दौर में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने जन-जागृति एवं कुप्रथाओं के विरोध में प्रयास किए, उनमें 'मारवाड़ गजट', 'राजपूताना हैराल्ड', 'राजपूताना गजट', 'राजस्थान समाचार', 'राजपूताना टाइम्स' एवं 'सर्वहित' प्रमुख थे। इन पत्रों ने लोकधर्मी पत्रकारिता की शुरुआत की एवं राजनीतिक चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(2) विकास काल (प्रथम चरण सन् 1920-1938 तक)

राजस्थान में पत्रकारिता के विकास के इस चरण में स्वतंत्रता संग्रामकालीन उस पत्रकारिता का उदय हुआ जिसे मुख्यतः राजनीतिक चेतना और लोक जागरण की पत्रकारिता कहा जा सकता है। इस दौर में

मिशनरी पत्रकारिता का सूत्रपात ऐसे पत्रों से हुआ जिनके जनक सही अर्थों में विभिन्न भागों से प्रारंभ हुए जन आंदोलनों के प्रणेता थे। राजपूताना में सन् 1920 से जो पत्र-पत्रिकाएँ शुरु हुई वे स्वातंत्र्य भाव से ओत-प्रोत थीं। उनका उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जागृति था।

राजपूताना की राजनीति उसके आंदोलन के प्रारम्भ से ही पत्रकारों के हाथ में रही। श्री विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी, हरिभाऊ उपाध्याय, जयनारायण व्यास, बाबा नृसिंह दास, ऋषिदत्त मेहता, जगदीश प्रसाद माथुर, क्षेमानंद राहत, हीरालाल शास्त्री, प्रेमनारायण माथुर, सिद्धराज ढड्डा, रघुवर दयाल गोयल, युगल किशोर चतुर्वेदी, मास्टर आदित्येन्द्र, मास्टर भोलानाथ, अभिन्न हरि, शोभालाल गुप्त, गोकुल लाल असावा एवं रमेशचन्द्र व्यास आदि ने पत्रकारिता के माध्यम से ही जन आंदोलनों को आगे बढ़ाया।

जन जागृति और स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्यों को लेकर सन् 1920 के आस-पास राजस्थान में पत्रकारिता की जो शुरुआत हुई, उसमें हम 'राजस्थान केसरी' को सर्वप्रथम ले सकते हैं। वैसे गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' ने रियासती जनता का खुलकर समर्थन किया किन्तु 'राजस्थान केसरी' पर राजपूताना की जनता का सम्पूर्ण अधिकार था। 'राजस्थान केसरी' साप्ताहिक अक्टूबर सन् 1920 में वर्धा से निकलने लगा। सन् 1919 में अजमेर में 'राजस्थान सेवा संघ' की स्थापना हुई। इसके बाद 'राजस्थान केसरी' का संपादक मण्डल अजमेर आ गया एवं जनवरी सन् 1922 में 'नवीन राजस्थान' का प्रकाशन शुरु हुआ। स्वतंत्रता के संदेशवाहक इस पत्र की निर्भीकता से बौखलाकर मेवाड़, अलवर, सिरोही, बूंदी और अनेक अन्य रियासतों ने इस पत्र पर अपनी सीमा में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया।

'नवीन राजस्थान' पर रोक लग जाने के बाद इसके संचालकों ने उसी वर्ष इसे 'तरुण राजस्थान' के नाम से निकालना शुरु कर दिया। इसके संपादक श्री शोभालाल गुप्त और श्री रामनारायण चौधरी थे। राजा महेन्द्र प्रताप के एक क्रान्तिकारी पत्र तथा उस पर प्रकाशित संपादकीय के कारण इन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया तथा 6-6 माह की सजा दी गयी। बूंदी के किसान आन्दोलन का इस पत्र ने पूरा समर्थन किया तथा अलवर के नीमूचाणा व सिरोही के हत्याकाण्ड पर मार्मिक किन्तु तेजस्वी डिसपेच प्रकाशित कर जनमानस को झिंझोड़ दिया। इस कारण अनेक रियासतों ने इसके प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया तथा राजस्थान सेवा संघ के कार्यालय पर अंग्रेज पुलिस कप्तान के नेतृत्व में 200 पुलिस वालों ने छापा मारा एवं 'तरुण राजस्थान' के महत्वपूर्ण दस्तावेज व फाइलें उठाकर ले गये। राजस्थान सेवा संघ में मतभेद पैदा हो जाने पर श्री रामनारायण चौधरी के बाद इस पत्र के संपादक श्री जय नारायण व्यास बने और इसे ब्यावर से निकाला जाने लगा।

जब 'तरुण राजस्थान' पर रोक लगी तो वह 'राजस्थान संदेश' के रूप में विजय सिंह पथिक के द्वारा अजमेर से निकाला जाने लगा। इस पत्र में प्रकाशित समाचारों से रुष्ट होकर अजमेर मेरवाड़ा चीफ कमिश्नर के सेक्रेटरी ने पत्र से दो हजार रुपये की जमानत मांगी थी। स्वाधीनता आंदोलन को बल प्रदान करने के लिए निकाले गये पत्रों की शृंखला में श्री ऋषिदत्त मेहता के पत्र 'राजस्थान' का स्थान भी प्रमुख है। यह पत्र सन् 1923 में बूंदी से निकलने लगा। पूर्व में यह पत्र ब्यावर एवं अजमेर से प्रकाशित हुआ

था। इसके संपादक श्री ऋषिदत्त मेहता के पिता श्री नित्यानन्द नागर ने नमक सत्याग्रह के समय राजपूताने के प्रथम सत्याग्रही जत्थे का नेतृत्व किया था और उसके बाद दूसरे और तीसरे जत्थे का नेतृत्व स्वयं ऋषिदत्त मेहता और उनकी पत्नी सत्यभामा ने किया था। इसी दौरान 13 फरवरी, सन् 1923 को अजमेर से साप्ताहिक 'आर्य मार्तण्ड' निकला जिसके संपादक तथा प्रकाशक पण्डित रामसहाय शर्मा थे।

द्विवेदी युग के मूर्धन्य साहित्य सेवी पण्डित रामनिवास शर्मा ने सन् 1920 में झालावाड़ के झालरापाटन के राजा भवानी सिंह के संरक्षण में मासिक 'सौरभ' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र के माध्यम से उच्च कोटि का साहित्य प्रकाशित किया जाता था। साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता के क्षेत्र में 'त्यागभूमि' का प्रकाशन एक चिरस्मरणीय घटना है। यह पत्र अजमेर से सन् 1927 में निकला, जिसके सम्पादन का दायित्व सुप्रसिद्ध पत्रकार और साहित्यकार श्री हरिभाऊ उपाध्याय पर था। भरतपुर सरकार के संरक्षण में सन् 1926 में पण्डित बृजदयाल शर्मा के सम्पादकत्व में 'भारतवीर' साप्ताहिक शुरु हुआ। एक वर्ष में इस पत्र ने लगभग 1400 पृष्ठ पठनीय सामग्री और 1700 चित्र प्रकाशित किये थे।

'राजस्थान केसरी', 'नवीन राजस्थान' एवं 'तरुण राजस्थान' के माध्यम से अपने पत्रकार कौशल तथा देशप्रेम की भावना से राजपूताना में ख्याति प्राप्त कर चुके श्री रामनारायण चौधरी ने अंग्रेजी में पत्र निकालने का विचार किया ताकि अंग्रेजों और अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों के बीच राजपूताना की रियासतों की जानकारी पहुँच सके। इसी विचार को दृष्टि में रखकर सन् 1929 में श्री शोभालाल गुप्त की सहायता से उन्होंने 'यंग राजस्थान' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक निकाला।

सन् 1930 में अजमेर से श्री जगदीश माथुर 'दीपक' ने साप्ताहिक 'मीरा' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके माध्यम से उन्होंने दासताग्रस्त राजस्थान की पर्दे में लिपटी नारी को नवजागरण का संदेश दिया। सितम्बर सन् 1932 में लाडली नारायण गोयल ने जयपुर से मासिक 'प्रभात' आरम्भ किया। प्रकाशन के समय से ही श्री सिद्धराज ढड्डा इसके संपादन में सहयोगी थे। इस पत्र ने अपने लेखों में युवकों से कर्तव्यसमर में आने का आह्वान किया। आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर के संस्थापक श्री मथुराप्रसाद शिवहरे ने सन् 1932 में 'वैदिक विज्ञान' मासिक का प्रकाशन किया जिसके संपादक विश्वनाथ विद्यालंकार थे। कोटा के सुपरिचित राजनेता और साहित्य सेवी श्री अभिन्न हरि एवं पं. ताड़केश्वर शर्मा द्वारा सन् 1934 में साप्ताहिक 'गणेश' का प्रकाशन शुरु किया गया जिसमें कोटा राज्य की गतिविधियों पर आधारित हास परिहास और व्यंग्य प्रधान रचनाएँ प्रकाशित होती थी।

श्री जय नारायण व्यास ने 'तरुण राजस्थान' के अपने संचित अनुभव के आधार पर सन् 1935 में बंबई से 'अखण्ड भारत' दैनिक का प्रकाशन शुरु किया जिसका उद्देश्य मध्य भारत और राजस्थान की जनता पर किये जा रहे अत्याचारों का भण्डाफोड़ कर उत्तरदायी शासन की दिशा में विभिन्न जन आंदोलनों को शक्ति प्रदान करना था। इसी वर्ष जयपुर से श्री प्रियतम कामदार ने 'जयपुर समाचार' का प्रकाशन आरम्भ

किया। बालक-बालिकाओं तथा उनके अभिभावकों को उपयुक्त मानसिक सामग्री देने के लिए सन् 1935 में ही श्रीकालूलाल श्रीमाली और श्री जनार्दन राय नागर के संपादकत्व में उदयपुर से 'बालहित' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

नवम्बर सन् 1936 में 'अजय' मासिक पत्र अजमेर से निकला श्री दत्तोत्रय वाब्ले इसके संपादक तथा श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री एवं श्री सूर्यदेव शर्मा इसके सहायक संपादक थे। एक वर्ष चलकर नवम्बर, सन् 1937 में यह पत्र 'विजय' के नाम से साप्ताहिक रूप में निकलने लगा जो राजपूताना की देशी रियासतों की जनता का प्रमुख प्रवक्ता बना। राजस्थान सेवक मण्डल की सन् 1935 में स्थापना करने वालों में से एक श्री रामनारायण चौधरी ने इसी वर्ष अजमेर में 'आदर्श प्रेस' नामक मुद्रणालय खरीदा। वहाँ से सन् 1936 में साप्ताहिक 'नवज्योति' का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्र ने राजस्थान की जन आकांक्षाओं को प्रभावशाली ढंग से उठाया, जन अभाव-अभियोगों को दूर करने का प्रयत्न किया एवं शासकों के उत्पीड़न-शोषण के विरुद्ध वाणी मुखर की।

'अखण्ड भारत' बन्द होने के बाद भी व्यास जी का पत्रकार शान्त नहीं हुआ और उन्होंने सामान्य जन से उसकी अपनी भाषा में संवाद करने के उद्देश्य से सन् 1937 में राजस्थानी भाषा में व्यावर से पाक्षिक 'आगीवाण' का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र की लेखक मंडली में श्री हरिभाऊ उपाध्याय, सांवरलाल शर्मा, भंवरलाल शर्मा, साहबचंद सुराणा, हरिप्रसाद अग्रवाल, देवीलाल गुप्त, गोपीलाल शर्मा, स्वामी सच्चिदानन्द, ठाकुर दयालसिंह, चांदकरण शारदा, मोतीलाल ज्योतिषी, गुलाबचन्द काला आदि प्रमुख थे। अखिल भारतीय चारण सम्मेलन द्वारा सन् 1938 में काठियावाड़ से त्रैमासिक 'चारण' पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इसके संपादक श्री ईश्वरदान आशिया और सहायक सम्पादक श्री शुभकरण कविया मारवाड़ के ही थे और यहीं से इसका सम्पादन कार्य करते थे। इस पत्र का एक खण्ड राजस्थानी तथा हिन्दी में तथा दूसरा खण्ड गुजराती में छपता था। जोधपुर से 1 सितम्बर सन् 1938 को शुरू हुआ साप्ताहिक पत्र 'मारवाड़ी समाचार' यद्यपि राजभक्त तथा लोकपरिषद् विरोधी था, तथापि उसने लोक चेतना जागृति के लिए उल्लेखनीय कार्य किया।

(3) विकास काल (द्वितीय चरण सन् 1938-1947 तक)

राजस्थान में स्वतंत्रता संग्रामपरक राजनीतिक चेतना का तीसरा और सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण सन् 1938 में प्रारम्भ होता है, जब हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि राज्यों में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष वहीं की रियासती जनता द्वारा चलाया जाए। परिणामतः सन् 1938 के बाद ही राजस्थान में अधिकांश प्रजामण्डलों और प्रजापरिषदों की स्थापना हुई और प्रत्येक रियासत के लोगों ने अपने-अपने क्षेत्र में राजनीतिक अधिकारों तथा उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन तेज किए। प्रकटतः राज्यों में जब राजनीतिक चेतना में प्रखरता आई, तो उसका प्रभाव पत्रकारिता पर भी पड़ा। इस दौर में एक ओर जहाँ पहले से निकल रहे पत्रों का तेवर और धारदार हो गया, वहीं अनेक नए पत्र भी निकले।

राजनीतिक सरगर्मियों के इस दौर में निकले पत्रों में प्रथम 'नव जीवन' साप्ताहिक था, जिसकी शुरुआत दिसंबर सन् 1939 में अजमेर से हुई। इसके संपादक नारायण सिंह, सहसंपादक कनक मधुकर थे। इन्होंने अपने लेखों और सम्पादकीय द्वारा राजपूताना की देशी रियासतों के आन्दोलनों को एक विशिष्ट गति प्रदान की। इसी दौरान कलकत्ता से 'राजस्थान' एवं 'राजस्थानी' का प्रकाशन क्रमशः श्री किशोर सिंह एवं श्री अगरचन्द नाहटा के सम्पादकत्व में किया गया। राजस्थानी साहित्य और संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए इन दोनों ही पत्रों की सेवाएं बहुत ही मूल्यवान थी।

सन् 1939 में जयपुर से श्रीमती कमला देवी ने 'प्रकाश' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसका उद्देश्य उच्च साहित्य द्वारा जन जागृति लाना तथा उज्वल विभूतियों के जीवन चरित्र प्रकाश में लाना था। सन् 1940 में सरदार वल्लभ भाई पटेल के सम्बन्धी एम.एल. पटेल ने अजमेर में रेल कर्मचारियों की अत्यधिक संख्या को देखकर वहाँ 'रेलवे मैन' पत्र आरम्भ किया। जयपुर राज्य में जन जागृति की उत्कट कामना से प्रेरित होकर श्री गुलाबचंद काला ने 1 सितम्बर, सन् 1940 को पाक्षिक 'जय भूमि' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। सितम्बर, सन् 1943 में यह पत्र साप्ताहिक एवं सन् 1946 में दैनिक हो गया। जयपुर से ही सन् 1940 में यू.एन. चक्रवर्ती ने 'द इण्डियन इण्डिया' निकाला।

'तरुण राजस्थान' एवं 'सैनिक' में पत्रकारिता का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्मा ने जोधपुर से सन् 1940 में साप्ताहिक 'प्रजा सेवक' शुरु किया। अनेक अमानुषिक यातनाओं के बावजूद भी शर्मा जी ने इस पत्र के माध्यम से परम्परागत राजशाही पर चोट करना जारी रखा। लोग इस पत्र के इस कदर दीवाने थे कि जब बीकानेर रियासत में इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तो यह तस्करी द्वारा ऊँटों की हादियों में छुपा-छुपा कर वहाँ लाया जाता था। जोधपुर से ही सन् 1940 में श्री गणेशचन्द्र जोशी 'मन्वन्तर' ने 'कल की दुनिया' प्रकाशित किया। इसी वर्ष जयपुर से श्री दयाशंकर पाठक द्वारा सम्पादित पत्र 'हितैषी' प्रकाशित हुआ एवं जोधपुर से 'मतवाला' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

20 अक्टूबर, सन् 1941 को जयपुर से पाक्षिक 'राजस्थान टाईम्स' आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक एवं प्रकाशक श्री वासुदेव शर्मा थे। इस पत्र ने सरकार पर कड़े प्रहार किये तथा स्थानीयता का आह्वान किया। अजमेर से इसी वर्ष श्री मानमल जैन के संपादन में मासिक 'वीरपुत्र' का प्रकाशन हुआ। इससे पूर्व जैन समाज के 'जैन जगत', 'सत्य संदेश', 'जैन ज्ञान प्रकाश', 'जैन शिक्षण संदेश', 'जैन बंधु' एवं 'जैन ध्वज' का प्रकाशन प्रारम्भ हो चुका था। सन् 1936 में श्री प्रियतम कामदार के 'जयपुर समाचार' को बन्द कर दिये जाने के पश्चात् उन्होंने 8 अगस्त, सन् 1942 को जयपुर से 'प्रचार' नामक पत्र निकाला। 'प्रचार' के उद्देश्य को कामदार ने इस प्रकार दर्शाया कि— 'चोर, पापी और उल्लू सब अंधेरा चाहते हैं, एवं प्रचार पब्लिक की सर्चलाइट है।'

श्री प्रियतम लाल कामदार के 'मान सूर्योदय' अथवा 'जयपुर समाचार' के बन्द होने के बाद जयपुर से ही इस दैनिक का प्रकाशन 8 सितम्बर, सन् 1942 को श्री श्यामलाल वर्मा के संपादकत्व में प्रारम्भ हुआ। कालान्तर में यही 'जयपुर समाचार', 'राजस्थान समाचार' के रूप में राजस्थान का एक निर्भीक और

सशक्त दैनिक बना। 'प्रभात' के संपादक श्री लाडली नारायण गोयल तथा श्री सूर्य नारायण चतुर्वेदी 'दिवाकर' ने सितम्बर, सन् 1942 में ही जयपुर से साप्ताहिक 'जय ध्वनि' प्रकाशित किया। इसी माह 19 सितम्बर, सन् 1942 से जयपुर से ही श्री केशरलाल जैन अजमेरा ने अग्रेजी साप्ताहिक 'राजस्थान हैराल्ड' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पत्र राज्य प्रशासन एवं जनता के मध्य कड़ी बनने के साथ ही निष्पक्ष समाचारों से जनता को स्वाधीनता आंदोलन की प्रगति से अवगत कराता रहा। जयपुर से ही इस वर्ष 'आजाद सैनिक' भी प्रकाशित हुआ।

प्रख्यात समाजसेवी श्री जमनालाल बजाज की स्मृति में जयपुर से सन् 1943 में साप्ताहिक पत्र 'लोकवाणी' का प्रकाशन शुरु हुआ। इसके प्रकाशन में श्री जवाहरलाल जैन, श्री सिद्धराज ढड्डा, श्री प्रवीण चन्द जैन आदि का सहयोग रहा एवं श्री देवीशंकर तिवारी के संपादकत्व में निकाला गया। इस पत्र ने महात्मा गाँधी की विचारधारा के प्रचार के साथ ही रियासती जन समस्याओं का अच्छा विवेचन किया। अलवर से श्री कुंजबिहारी लाल मोदी ने 1 जनवरी, सन् 1943 से साप्ताहिक 'अलवर पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ किया। पत्रिका का उद्देश्य प्रजामंडल और राष्ट्रीयता का प्रचार करने के साथ उत्तरदायी शासन की माँग को गति प्रदान करना था। सन् 1946 में जब मोदी जी को जेल जाना पड़ा तो उनकी अनुपस्थिति में उनके पुत्र और भतीजे ने प्रकाशन जारी रखा।

जनवरी, सन् 1943 में आचार्य हस्तीमल जी की प्रेरणा से जोधपुर से श्री फूलचन्द जैन 'सारंग' विद्यालंकार के संपादन में इतिहास, संस्कृति और धर्म की मासिकी 'जिनवाणी' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसी वर्ष अजमेर से श्री प्रकाशमल जैन के संपादन में त्रैमासिक 'जैन-ज्योति' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। सन् 1944 में श्री हरीश मन्नावत का 'अखंड' मासिक, जोधपुर से 'नवयुग' साप्ताहिक, कोटा से राजेन्द्रकुमार 'अजेय' और श्री नाथूलाल जैन का 'दीनबंधु' साप्ताहिक, श्री बाबूलाल इन्दु के 'अधिकार' और 'धरती के लाल', श्री शिवदयाल राजावत के 'चम्बल' और 'किसान संदेश' एवं श्री इन्द्रदत्त स्वाधीन का 'जनवाणी' प्रारम्भ हुए।

सन् 1945 में अलवर से ऋषि जैमिनी कौषिक के संपादकत्व में मासिक 'राजस्थान क्षितिज' का प्रकाशन शुरु हुआ जिसे हिन्दी डाइजेस्ट की संज्ञा दी जा सकती है। इस पत्र में साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ सामाजिक उत्थान और जन जागरण तथा राजनीतिक घटनाचक्र विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होती थी। इसी वर्ष 2 अक्टूबर, सन् 1945 को श्री युगल किशोर चतुर्वेदी ने भरतपुर से 'नवयुग-संदेश' का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

श्री अम्बिकेश कुन्तल द्वारा संचालित और श्री नन्दकिशोर पारीक तथा श्री राधाशरण जोशी द्वारा संपादित साहित्यिक एवं सिने-पत्रिका 'चाँदनी' का प्रकाशन मई 1946 में जयपुर से प्रारम्भ हुआ। इसमें रंगीन चित्र प्रचुरता से छापे जाते थे। फिल्मों सम्बन्धी सामग्री के अतिरिक्त इसमें कहानियाँ, कविताएँ तथा एकांकी प्रकाशित होते थे। जयपुर से ही एक ओर मासिक पत्र 'भाई-बहिन' का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ। इसके संपादक श्री रतनलाल जोशी थे। बालकों में स्वाधीनता की भावना जागृत करने, उन्हें रोचक

और शिक्षाप्रद सामग्री प्रदान करने तथा अभिभावकों को उपयुक्त मानसिक सामग्री देने में इस पत्र ने महती भूमिका निभाई। इसी वर्ष श्री रामनारायण चौधरी ने अजमेर से 'नया राजस्थान' का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्र ने अपने समाचारों, लेखों एवं संपादकीय विचारों के माध्यम से बंटवारे के समय साम्प्रदायिक सौहार्द का वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

जोधपुर से श्री सुमनेश जोशी ने सन् 1946 में 'रियासती' नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। जोधपुर के तत्कालीन महाराजा और पाकिस्तान के निर्माता मोहम्मद अली जिन्ना की भारत-पाक सीमा पर षडयंत्रपूर्ण वार्ता का भण्डाफोड़ करने के कारण जोशी जी और उनके सहयोगियों के विरुद्ध वारंट जारी कर दिये गये तथा इस पत्र का प्रकाशन बन्द हो गया। जयपुर से जनवरी, सन् 1946 में श्री अद्भुत शास्त्री के संपादन में 'मारवाड़ी गौरव' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जो विभिन्न प्रान्तों से सम्बद्ध पत्र था। इसी दौरान 'युवक हृदय' मासिक एवं बीकानेर से 'राजस्थान भारती' का भी प्रकाशन आरम्भ हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ

1. भानावत, डॉ. संजीव, सांस्कृतिक चेतना और जैन पत्रकारिता, सिद्ध श्री प्रकाशन, जयपुर, 1990
2. भानावत, डॉ. संजीव, हिन्दी जैन पत्रकारिता : एक शताब्दी, श्री अखिल भारतीय जैन विद्वद् परिषद् एवं सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, 1990
3. भट्ट, राजेन्द्र शंकर, पत्र, पत्रकार और पत्रकारिता, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 1990
4. भट्ट, राजेन्द्र शंकर, स्वतंत्रता सेनानी, समाज सेवक, संपादक, कप्तान दुर्गाप्रसाद चौधरी, दैनिक नवज्योति प्रकाशन, जयपुर, 1993
5. बोलिया, लक्ष्मण, राजस्थान-पत्रकारिता और विकास, राजस्थान समाचार पत्र प्रकाशन, चोमूं हाऊस, जयपुर, 2001
6. चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद, हिन्दी पत्रकारिता के कीर्तिमान, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 1994
7. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास की भूमिका, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1997
8. दीक्षित, डॉ. सूर्यप्रसाद, वृहद् हिन्दी पत्र-पत्रिका कोश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
9. दुबे, राजीव, हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय आन्दोलन, सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988
10. जोशी, सुमनेश, राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, ग्रंथागार, जयपुर, 1973
11. जोशी, डॉ. सुशीला, हिन्दी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1994
12. जोशी, डॉ. बी.बी., हिन्दी पत्रिकाओं में राष्ट्रीय काव्य चेतना, समृद्धि प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988
13. मधुप, महेन्द्र, जयपुर की पत्र-पत्रिकाओं का स्वाधीनता आंदोलन में योगदान सम्मोक्षण फोरम, जयपुर, 1970
14. पंकज, डॉ. विष्णु, राजस्थान के पत्र और पत्रकार, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, 1992
15. पाण्डे, राम, जयपुर राज्य प्रजामण्डल, शोधक, जयपुर, 1994

16. परिहार, डॉ. विनीता, राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2002
17. पाण्डे, डॉ. पद्माकर, हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय आन्दोलन, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1993
18. पाण्डेय, डॉ. रत्नाकर, हिन्दी पत्रकारिता, मणिमय प्रकाशन, कलकत्ता, 1976
19. प्रकाश, डॉ. विद्या, निर्भीक राष्ट्रनायक गणेश शंकर विद्यार्थी, कॉलेज, बुक डिपो, जयपुर, 2006
20. पीतलिया, रामशरण, हिन्दी की कीर्तिशेष पत्र-पत्रिकाएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2000
21. प्रभाकर, मनोहर, राजस्थान में हिन्दी पत्रकारिता, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1981
22. रंजन, राहुल, उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता में सामाजिक चेतना, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, 1999
23. राय, सुजाता, हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय जागरण, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 1992



डॉ. स्मृति सिंह

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
अग्रवाल पी.जी. कॉलेज, जयपुर

ATISHAY KALIT

Vol. 2, Pt. B

Sr. 4, 2013

ISSN : 2277-419X

संत दादूदयाल के साहित्य में दार्शनिक तत्व

दर्शन शब्द संस्कृत की दृश धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय लगने से बनता है इसका सामान्य अर्थ होता है 'देखना'। इस शब्द का प्रयोग साहित्य के परिप्रेक्ष्य में साहित्यकार की जीवन दृष्टि उसके आदर्शों, सिद्धान्तों और संसार विषयक धारणाओं से है। पारिभाषिक रूप में यह शब्द – "जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव ब्रह्म, प्रकृति पुरुष, जगत, मोक्ष, मानव जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण हो।"¹

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल जिसमें दर्शन को काव्य में ढालकर बुद्धि तर्कों के आधार पर उसके सामान्य रूप की व्याख्या की गई है। संत कवियों का काव्य दार्शनिकता से संबद्ध है इन संतो ने प्रेम-भक्ति के द्वारा परम तत्व के स्वरूप को जानने का प्रयत्न किया है संतो की दार्शनिक चेतना एक ओर उपनिषदों और दूसरी ओर मानवीय उदार चेतना एवं प्रगतिशील दृष्टि का प्रतिफलन है। संत साहित्य में उस समय प्रचलित विभिन्न धर्मों एवं मतों में जो दार्शनिक विचार धाराएँ थीं उन सभी का संगम मिलता है।

कबीर तथा अन्य संतों की तरह दादूदयाल संत पहले और कवि बाद में है जो जन-जन तक अपनी वाणी को पहुँचाते हैं। ऊपरी सतह से देखने पर संत दादू की ब्रह्म, आत्मा, माया, जगत, मोक्ष, कर्म, ज्ञान आदि की मान्यताएँ पूर्व परम्परा का दोहरान भर लगती हैं परन्तु गहराई से देखने पर इनके विचार मौलिक एवं स्वतंत्र दिखाई देते हैं।

ब्रह्म – संत दादू दयाल निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं सत्य अन्वेषी दादू के सिद्धान्त स्वानुभूति पर आधारित है अनुभूति के सूक्ष्म ढाँचे में ढलकर ही उनके व्यक्तिगत विचार सिद्धान्त का रूप धारण कर लेते हैं। परम तत्व को अपना साध्य मानकर ब्रह्म के स्वरूप को तीन प्रकार से दिखाया है— निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म और सगुण निर्गुण मिश्रित ब्रह्म।

दर्शनशास्त्रों में ब्रह्म के दो रूप मिलते हैं निरुपाधि और सोपाधि ब्रह्म। निरुपाधि ब्रह्म से तात्पर्य ब्रह्म का निर्मुक्त स्वरूप और सोपाधि से तात्पर्य ब्रह्म की सर्वव्यापकता व अन्यान्य विशेषताओं से युक्त वर्णन है।

दादू के काव्य में ये दोनों रूप मिलते हैं। निर्गुण ब्रह्म की धारणा मूलतः उपनिषद व शंकर के वेदान्त के आधार पर दिखाई देती है निर्गुण ब्रह्म अगम्य, गुणातीत, मन और बुद्धि की पहुँच से परे है ब्रह्म के परमतत्व के स्वरूप को संत दादू ने इस प्रकार बताया है।

"परमब्रह्म परांपर, सो ममदेव निरंजम्।²

निराकारं निर्मलं तस्य दादू वंदम्।।"

संत दादू ब्रह्म के अन्यान्य विशेषताओं से युक्त सर्वव्यापी सोपाधि रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म

**“बिनु श्रवणु सब कुछ सुनै, बिन नैनहु सब देखै ³
बिन रसना मुख सब कुछ बोले यहु दादू अचिरज पैखै।”**

संत दादू ने ब्रह्म के तेज, उसकी सर्वव्यापकता का वर्णन किया है ब्रह्म को कण-कण में व्याप्त समर्थ बताते हुए उसकी अद्वितीय शक्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्म को सगुण निर्गुण से भी परे माना है। गुण-अवगुण से रहित ब्रह्म दादू के पदों में दिखाई देता है।

“गुण अवगुण थे रहित है सो निज ब्रह्म अगाध। ⁴

कबीर, नानक आदि संतों की तरह दादू ने भी परम तत्व या परब्रह्म को भाव विहवल होकर राम, रहिमान, साई, परमानन्द आदि नामों से पुकारा है। इन पर सूफी मत का प्रभाव भी पड़ा दिखाई देता है वे ब्रह्म के नूर अर्थात् प्रकाश मय स्वरूप पर बल देते हैं। वे ईश्वर को खण्ड-खण्ड करके देखने का विरोध करते हैं और साधक को अद्वैत भाव से ब्रह्म की भक्ति करने को उपदेश देते हैं। संत दादू परमपिता परमेश्वर की उपस्थिति प्रत्येक जीव में मानते हैं। ब्रह्म का निवास स्थल मनुष्य का हृदय एवं क्रीड़ा स्थली संसार को मानते हैं। इस प्रकार दादू ने ब्रह्म को शून्य, सर्वव्यापक, अगम, अगोचर, निर्गुण, सगुण से परे माना है दादू प्रधानतः अद्वैतवाद के समर्थक हैं परन्तु भावावेश की अवस्था में ब्रह्म के सगुण रूप के भी अत्यन्त सुंदर वर्णन हमें उनके पदों में मिलते हैं दादू का राम अति रहस्यमय, गुणातीत, असीम, अनंत है।

जीवात्मा – संत दादूदयाल के मतानुसार आत्मा निराकार, अनंत एवं चैतन्य शक्ति है जीवात्मा परमात्मा का अंश है और ब्रह्म के साथ उसका अटूट सम्बन्ध है और जब जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होता है तो जीवात्मा सभी प्रकार के सांसारिक कष्टों से मुक्त हो जाती है। दादू अद्वैतवाद के प्रवर्तक शंकराचार्य के सिद्धान्त, आत्मा व परमात्मा में ऐक्य है तथा ब्रह्म व जीवन में अटूट सम्बन्ध, को प्रतिपादित करते दिखाई देते हैं।

**“परआत्म सो आतमा, ज्यों जल उदिक समान। ⁵
तन मन पावी लौणा ज्यों पावै पद निर्वाण।।”**

संत दादू का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति के अंदर ब्रह्म का निवास होता है परन्तु जीव सांसारिक विषय वासनाओं की ओर आकर्षित हो जाता है फलतः वह परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता है।

“कर्म के बस जीव है कर्मरहित सो ब्रह्म।”⁶

यही जीव जब माया के आवरण से मुक्त हो जाता है तो ज्ञान के प्रकाश से ब्रह्ममय हो जाता है अतः जीवात्मा व ब्रह्म अंत में एक हो जाते हैं। जीव देह में स्थित सूक्ष्म तत्व तो आत्मा सूक्ष्मतम है इस प्रकार जीवात्मा व ब्रह्म का सम्बंध अटूट है “जगतगुरु शंकराचार्य ने शरीर और इन्द्रियों पर शासन करने वाली और कर्मों का फल भोगने वाली आत्मा को जीव कहा है।” ⁷

वस्तुतः संत दादू सनातन परम्परा का समर्थन करते हुए जीवात्मा व परमात्मा में कोई भेद नहीं मानते हैं तथा “जल में गगन गगन में जल है।” कहकर जीवात्मा व परमात्मा के संबंध को व्याख्यायित करते हैं।

जगत – जगत की उत्पत्ति और रचना प्राचीन काल से ही दार्शनिकों के लिए चिन्तन का विषय है दादू साहित्य में भी जगत की निस्सारता एवं मिथ्यात्व का निरूपण किया गया है वे मानते हैं कि “संसार एक स्वप्नवत है और जितनी वस्तुएँ हैं वे सारी की सारी मिथ्या है।

इसके विषाद, हर्ष, मान, अपमान, जाति, कुलवर्ग, सभी मिथ्या है।⁸ संत दादूदयाल के मतानुसार सर्वप्रथम ब्रह्म ही विद्यमान था इसी शब्द ब्रह्म से समस्त सृष्टि की रचना हुई है।

“पहिली कीपा आपथै उत्पत्ति ओंकार।”

ओंकार थै ऊपजै पंच तत्व आकार।

पंचतत्व थै घटभया, बहुविधि सब विस्तार।

दादू घट थै ऊपजै, मैं से वरण विचार।।”

शब्द से यहाँ अभिप्राय सदगुरु के उपदेशरूपी शब्द से है जो मुक्ति का मार्ग प्रदान करते हैं। दादू के अनुसार यह जगत स्वप्नमय है तथा शंकराचार्य के मत के प्रभाव स्वरूप वे ब्रह्म के अतिरिक्त सब मिथ्या मानते हैं। चूंकि यह जगत मिथ्या है अतः यह परिवर्तन शील एवं दुःखमय है जीव के लिए यह संसार मात्र बंधन है जगत की निस्सारता क्षण भंगुरता और भ्रम के माया जाल को दादू ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

“मृग जल देखि तहाँ मन छांव दिन दिन झूठी आस ¹⁰

अहँ जहँ जाइ तहाँ जल नाहिं निहयै मरै पिचासा”

माया — साधना के क्षेत्र में माया को जीव व ब्रह्म में भेद डालने वाली कहा है असीम को सीमा में बाँधने वाली यह माया अनित्य, दुःख, अनात्म वस्तुओं में सुख एवं मोह के दर्शन करवाती है। संतो ने माया की अवरोधी शक्ति को पहचानते हुए जहाँ तहाँ उसकी भर्त्सना करते हुए उससे बचने का उपदेश दिया है। माया भक्तों को भ्रमित कर सांसारिक प्रलोभनों में फँसा लेती है जिससे कर्मबंधनों में पड़कर जीव आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता है इसलिए संतो ने इसे नागिन, सर्पिणी, डाकिनी, आदि नामों से पुकारा है। दादू ने माया के आकर्षण का वर्णन करते हुए उसे मृगजल और झूठी कहा है।

यहु सब माया मृगजल झूठा, झिलमिल होई ¹¹

दादू चिलका रेखि करि संत करि जाना सोई

कनक और कामिनी माया का ही प्रलोभन है जिसमें वह जीव को फँसा लेती है काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि माया के सहायक हैं जिनके वशीभूत हो जीव संसार में आने के उद्देश्य को भूलकर सांसारिक प्रपंचों में पड़ जाता है।

“काल कनक कामिनी परिहरि इनका संगम ¹²

दादू सब जग जलि मूवा ज्यूं दीपक जोति पतंग।।”

माया भुलावे में रखकर सर्पिणी के समान सबको डसती है ईश्वर ही इस माया के जाल से बचा सकता है जब तक ब्रह्म की लौ हृदय में प्रज्ज्वलित नहीं होती है तब तक ही माया का कुप्रभाव रहता है माया के प्रभाव से मुक्त होने के लिए जीव को सदगुरु की कृपा में संसार की निस्सारता व माया के प्रलोभन से बचने का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

मुक्ति — सांसारिक बंधनों से मुक्त हो मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति पर विस्तृत चिन्तन मनन वेदान्त, उपनिषदों में मिलता है। संतकाव्य में भी गीता व उपनिषद के समान मुक्ति को जीवन्मुक्तक, जीवन्मुक्त, मरजीवा आदि नामों से व्याख्यायित किया है। मुक्ति का साधारण अर्थ ‘छुटकारा’ है अतः जब जीव सांसारिक बंधनों से मुक्त हो कर माया मोह के द्वारा फैलाए जाल,

काम, क्रोध, लोभ, सुख-दुख निरपेक्ष हो ब्रह्म से अद्वैत स्थापित कर लेता है तब इस अवस्था को मोक्ष कहा जाता है संत दादू ने भी इसी प्रकार कर्मों के कटने को मुक्ति कहा है।

**दादू जीवत छूटे देह गुण जीवन मुक्ता होई।¹³
जीवत काटे कर्म सब मुक्ति कहावे सोई।।**

इस प्रकार संत दादू मृत्यु के बाद मुक्ति को व्यर्थ मानते हुए जीवित अवस्था में ही अच्छे कर्म करते हुए मुक्ति प्राप्त करने में विश्वास रखते हैं। मृत्यु के बाद स्वर्ग जाने जैसी बातों को भी वे मिथ्या मानते हैं तथा जीवित प्राणी द्वारा सद्गुरु के मार्गदर्शन में सत्कर्म करने को ही मुक्ति का द्वार बताते हैं।

**“दादू घटि कस्तूरी मृग के भर्मन फिरै उदास।¹⁴
अंतर गति जागै नहीं ताथै सुँधै घास।”**

सांसारिक भ्रम दूर होने के बाद एवं सत्कर्मों से जब जीव को मुक्ति रूपी परमपद की प्राप्ति होती है तो आत्मा परमात्मा में भेद समाप्त हो जाते हैं एवं अद्वैत की स्थिति आ जाती है।

**“परआत्म सो आत्मा ज्यों जल उदिक समान।¹⁵
तन मन पाणी लौणा ज्यों पावै पद निर्वाण।।”**

इस प्रकार आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य ही मोक्ष या मुक्ति है।

निष्कर्षतः संत साहित्य का हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है यहाँ मानवीय सरोकारों से लेकर दर्शन की जटिलता को ज्ञान एवं स्वानुभूति द्वारा सहज बनाया गया है। संत दादू ने ब्रह्म, जीवात्मा, मुक्ति, जगत, माया आदि के बारे में जो विचार प्रस्तुत किए हैं, वे उनके सहज चिन्तन का ही परिणाम है यह तथ्य विचारणीय है कि दादू के साहित्य के ये तत्व आज के भौतिकवादी युग में भी हमें मानसिक शांति एवं आत्मिक संतोष प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. सं. चतुर्वेदी : द्वारिका प्रसाद शर्मा : संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ - पृ. 510
2. स्वामी मंगलदास : दादूदयाल की वाणी, गुरुदेव को अंग - 1
3. वही, परचै को अंग - 4
4. वही, साधु कौ अंग - 15
5. स्वामी नारायणदास: दादूवाणी, लौको अंग - 33
6. स्वामी मंगलदास : दादूदयाल की वाणी, पखि को अंग - 27
7. डॉ. चौरसिया, संत साहित्य के दार्शनिक सिद्धान्त - पृ. 103
8. वही - पृ. 105
9. स्वामी मंगलदास: दादूवाणी, सबद कौ अंग - 8
10. स्वामी मंगलदास : दादूवाणी, माया कौ अंग - 94
11. वही - 7
12. स. परशुराम चतुर्वेदी : दादूग्रन्थावली, माया कौ अंग - 37
13. स्वामी मंगलदास : दादूदयाल की वाणी, संजीवन कौ अंग - 32
14. स. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी, स्वामी दादूदयाल की वाणी, कस्तूरी मृग कौ अंग -
15. स्वामी नारायणदास : दादूवाणी लौको अंग - 21



Dr. Chitra Rathore
Associate Professor,
Department of EAFM
S.S. Jain Subodh P.G. College, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

ENVIRONMENT OF FINANCE BUSINESS ORGANIZATIONS AND PUBLIC SECTOR

The financial decisions of a firm are significantly influenced by the legal form of its organisation, the regulatory framework governing it, the tax laws applicable to it, and the features of the financial system in which it operates. To illustrate this point some examples are given below:

- * A private limited company cannot raise equity capital by issuing shares to the general public.
- * A company in which foreign shareholding is hundred per cent may not be allowed to
 - * undertake certain activities.
- * The tax rate for a cooperative society is lower than that of a public limited company.
- * Financial institutions generally go by a debt-equity norm of 1.5 to 1.0.
- * This chapter describes the environment of finance. It is divided into four sections.
 - * Forms of business organisation
 - * Regulatory framework
 - * Taxes
 - * Financial system

FORMS OF BUSINESS ORGANISATION

The important forms of business organisation are:

- * Sole proprietorship
- * Partnership
- * Cooperative society
- * Private company
- * Public company

The choice of the form of organisation is very important as it has a bearing on (i) the ability of the entity to raise finances, (ii) the manner in which risk is shared

between owners and creditors, (iii) the extent of control exercisable by the owners, (iv) the nature of regulatory framework applicable to the entity, and (v) the tax burden for the entity and the owners.

Sole Proprietorship

A sole proprietorship concern is a business owned by a single person. From a legal point of view, the proprietorship concern has no separate status apart from its owner. The proprietor enjoys the rewards and assumes the risks of running the business. He realises all the profits, bears all the losses, and incurs all the liabilities of the business. The advantages of the sole proprietorship form of business are: (i) It can be set up easily and inexpensively as there is no formal requirement for incorporation, (ii) It is subject to few governmental regulations, (iii) There is no firm tax. The limitations of the sole proprietorship form of business are: (i) The life of the proprietorship concern is limited to the life of the owner, (ii) The personal liability of the owner is unlimited, (iii) The ability of the firm to raise funds is severely constrained—this limits its growth.

Partnership

A partnership firm is a business owned by two or more persons. It may be viewed as an extension of the sole proprietorship form. The partners bear the risks and reap the rewards of the business. Generally, a partnership comes into being with the execution of a partnership agreement, referred to commonly as the partnership deed. This specifies, inter alia, the capital contributions, shares, rights, duties, and obligations of the partners. In India, partnerships are governed by the Indian Partnership Act, 1932. This legislation regulates the relationships between the partners inter se as well as between the partners and the parties dealing with the partnership firm. The advantages of the partnership form of business organisation are: (i) It can be, like a proprietorship concern, set up with relative ease and economy, (ii) It is relatively free from governmental regulations, (iii) It can benefit from the varied experience and expertise of the partners. The limitations of the partnership form of business are: (i) The life of a partnership firm is rather limited. Withdrawal or death of any of the partners may result in the dissolution of the partnership firm, (ii) Possible conflict among the partners is a potential threat to the business. (iii) The personal liability of the partners is unlimited, (iv) While the partnership firm can raise more funds than a proprietorship concern, its ability to raise funds is also limited.

Cooperative Society

A cooperative society may be defined as “a society which has as its objective the promotion of economic interests of its members in accordance with cooperative

principles. “ The key features of a cooperative organisation are as follows: (i) While there is no maximum limit for membership, a minimum of ten members are required to form a cooperative society. The members of a cooperative society are its owners, (ii) A cooperative society is required to be registered with the Registrar of Cooperative Societies, (iii) The management of a cooperative society is vested in the hands of the managing committee elected by members on the principle of ‘one member, one vote’, (iv) The dividend payable on the capital contributed by members is subject to a ceiling of 9 per cent. The surplus left after the dividend payment is distributed in the form of bonus which is linked to the volume of business done by members with the society. The advantages of a cooperative organisation are as follows: (i) It can be formed easily: (ii) The liability of the members is limited, (iii) Grants and financial assistance are provided by the government to cooperative organisations.

The disadvantages of a cooperative organisation are as follows; (i) Cooperatives cannot employ outside talent, (ii) Members do not have an incentive to provide capital because the dividend rate is low and the principle of ‘one member, one vote’ is followed, (iii) Often, influential members exploit the cooperative society for personal gains.

Private Company

The corporate form of business organisation, whether it is a private company or a public company, has two salient features:

Distinct Legal Personality - A company is a distinct legal entity separate from its owners, the shareholders. Hence a company, unlike a proprietorship firm or a partnership concern, can own assets, incur liabilities, enter into contracts, sue, and be sued in its name. As a natural corollary to this, the shareholders, even though they own the company, cannot be held liable for the actions of the company.

Limited Liability - The liability of the shareholders of a company is limited to the share capital subscribed to by them. This means that if a shareholder subscribes to 100 shares which are offered at Rs. 10 per share, his liability is limited to Rs. 1,000. Once this amount is fully paid, he has no further obligation. This is in sharp contrast to the unlimited personal liability of the proprietor in a proprietorship firm or the partners in a partnership concern. A private company is a corporate body that can be formed by just two persons subscribing to its share capital. Its distinctive features are: (i) The number of its shareholders cannot exceed fifty. (ii) Public cannot be invited to subscribe to its capital, (iii) The members’ right to transfer shares is somewhat restricted. The advantages of the private company form of

organisation are: (i) The liability of the shareholders is limited, (ii) Under the Companies Act, the regulation and control of private companies is not very extensive, (iii) The promoters, by being selective in choosing the members, can hope to enjoy unchallenged control over the firm. The disadvantages of the private company form of organisation are: (i) The burden of taxation is rather high. First, the tax rate on the company's income is high. Second, the dividend declared by the firm is subject to further taxation in the hands of the members. (ii) The shares-of a private company are not freely negotiable, (iii) The ability of the firm to raise capital is limited.

Public Company

A public company' is a corporate body that has a minimum of seven members (shareholders). A public company unlike a private company (i) does not limit the number of its members, (ii) invites the public to subscribe to its capital, and (iii) permits free transfer of shares.

The advantages of a public company form of organisation are considerable: (i) The company has, theoretically, an unlimited life. (ii) The ownership of the company, represented by equity shares, is easily transferable, (iii) The liability of shareholders is limited to the capital subscribed to by them. Civ) The firm can raise substantial funds. The disadvantages associated with the public company form of business are: (i) Setting up a public company is somewhat involved. An elaborate procedure has to be gone through before a public company comes into existence, (ii) The income of a public company is effectively double-taxed. It is first treated as the income of the company and tax is imposed thereon. Then, the dividends paid by the company out of its post-tax-profits are treated as taxable income in the hands of shareholders, (iii) The affairs of a public company are subject to fairly comprehensive regulations under the Companies Act.

On the whole, the public company form of organisation is the most appropriate from the point of view of value maximisation, except, of course, when the business is small. The reasons are:

- * The risk to investors is less, owing to the limited liability feature.
- * The potential for growth is enormous because of access to substantial funds.
- * The liquidity of investment is high because of easy transferability of shares.

REGULATORY FRAMEWORK

Corporate investment and financing decisions are guided, shaped, and circumscribed by a fairly comprehensive regulatory framework which seeks to (i) define avenues of investment available business firms in different categories,

ownership-wise and size-wise, (ii) induce investments along certain lines by providing incentives, concessions, and reliefs, and (iii) impose restrictions on the ways and means by which business firms can raise and deploy funds. The principal elements this regulatory framework are:

- * Industrial Policy
- * Companies Act
- * Securities and Exchange Board of India Guidelines

Industrial Policy

The industrial policy of the government encompasses legislations (like the Industrial Development and Regulation Act) and incentives (like the incentives for export-oriented units) which are applicable to the industrial sector as shown..

In the past the industrial policy framework of the government was characterised by extensive bureaucratic control over choices which ought to have been the prerogative of the entrepreneurs. Accordingly, over time, bureaucratic controls became dysfunctional and led to dilatory decision making, corruption, and inefficient choices of scale, location, and technology. Even though some relaxation was effected over the years, the basic structure remained more or less unchanged. The New Industrial Policy of 1991, announced in the wake of liberalisation initiatives of the government, however, represented a significant departure from the earlier regime. A watershed in India's industrial policy, it sought to correct the distortions or weaknesses that had crept in, unshackle the Indian industry from the multiplicity of administrative and legal controls, and enhance the international competitiveness of Indian industry.

Companies Act

The Companies Act 1956, together with its amendments, is a very comprehensive piece of legislation, regulating the functioning of joint stock companies. As far as corporate financial management is concerned, the Companies Act has provisions covering matters like types of share capital, issue of share capital, issue of debentures, loans, investments, inter-corporate investments, distribution of dividends, convertible loans, reorganisation, amalgamation, and liquidation. Some of the important company law provisions pertaining to financial management are;

1. A company can issue only two kinds of shares: equity shares and preference shares.
2. Additional issue of shares has to be offered to existing equity shareholders in proportion to the shares held by them unless the company, in a general body

meeting, decides otherwise by passing a special resolution, or by passing an ordinary resolution and securing the permission of the central government.

3. Share capital issue cannot be made publicly unless a prospectus, giving prescribed information about the company, is furnished.
4. Debentures carrying voting rights cannot be issued.
5. The board of directors of a company or a subsidiary thereof shall not, except with the consent of the company in a general meeting, borrow money which, together with those already borrowed by the company (apart from temporary loans obtained from the company's bankers in the ordinary course of business), exceeds the aggregate of the paid-up capital of the company and its free reserves.
6. A company can buy up to 10 per cent of the subscribed capital of another corporate body, provided that the aggregate of investments made in all other corporate bodies does not exceed 30 per cent of the subscribed capital of the investing company.
7. A company can lend only up to 30 per cent of its paid-up capital and free reserves to other companies where the lending company and the borrowing company are not under the same management and only up to 20 per cent where they are under the same management.
8. Dividends are payable only out of profits after setting aside a certain percentage towards reserves.
9. A company is required to prepare its financial statements (profit and loss account and balance sheet) in 'a certain manner and format and get the same audited by a chartered accountant.
10. A public company is required to get its audited financial statements approved by its shareholders. (The financial statements along with the Directors' Report, Auditors' Report, and annexures to the financial statements as prescribed by the Company's Act constitute the annual report of the company.)

SEBI Guidelines

Until early 1992, matters like a company's capital structure, its pricing of capital issues, dividend and interest rates, capitalisation of reserves, etc. were governed by the Capital issues (Control) Act, 1947. The system had certain drawbacks like the underpricing of equity issues, delays in getting clearances, etc. So the Act was abolished and companies are now required to conform to the disclosure and investor

protection guidelines issued by the Securities and Exchange Board of India (SEBI). The important guidelines are:

1. A new company set up by existing companies with a five-year track record of consistent profitability can freely price its capital issues, provided the promoting companies' participation is at least 90 per cent. Other new companies must price their issues at par.

2. Closely held companies and private companies going public can price their issues of capital freely provided they have a certain track record.

3. For issues up to Rs. 100 crore promoters' contribution must be at least 25 per cent. For issues of over Rs. 100 crore promoters' contribution must be at least 20 per cent.

TAXES

Taxes may be divided into two broad categories: direct taxes and indirect taxes. A tax is referred to as a direct tax if the impact and incidence of the tax is on the same person. Income-tax, wealth-tax, and gift tax are examples of direct taxes. A tax is regarded as an indirect tax if the impact and incidence of the tax is on different persons (the impact is on one person, but through the process of shifting the incidence is on another). Excise duty, sales tax, and customs duty are the three important indirect taxes.

Direct Taxes

Income tax is the most important direct tax. The procedure for computing the tax liability of a business entity involves the following steps:

Step I Compute the income from business. This step broadly consists of computing the gross revenues less deductions associated with activities which can be attributed with the character of business profession.

Step 2 Add income from other heads to get the gross total income. To the income from business determined in Step I is added the income from other heads (which includes income from house property, capital gains, and income from other sources) to obtain the gross total income. Normally, in this addition, negative figures under one head would be set off against the positive figures under any other head(s)

Step 3 Make deductions from the gross total income to obtain the taxable income. A of the Income Tax Act provides for a number of deductions' from the gross total income. Note that the aggregate of these deductions shall not exceed the gross total income. The difference between the gross total income and the sum of

the deductions from gross total income is the base on which the tax rate is applied to arrive at the tax liability.

Step 4 Compute the tax burden using the tax applicable to the assessee. For tax purposes, companies are classified as domestic companies and foreign companies and are taxed at 35% and 45% respectively.

Indirect Taxes

The three most important indirect taxes are the excise duty, the sales tax, and the customs duty.

Central Excise Duty - The principal source of revenue for the central government, the central excise represents a levy on goods manufactured in the country. The key provisions in respect of central excise duty are as follows:

- * Excise duty is leviable on all goods, other than salt, which are produced or manufactured in India.
- * There are two types of excise duties: (a) specific and (b) ad valorem. A specific duty is related to the quantum of manufacture. An ad valorem duty, on the other hand, is based on the value of goods.
- * The Modified Value Added Tax Scheme (MODVAT Scheme) essentially enables manufacturers of excisable goods to reduce the final burden of excise duty by claiming credit for the excise duty paid on raw materials, components, consumables, and packing materials.

Sales Tax - A major source of revenue for state governments, sales tax is an important indirect tax. The salient features of sales tax are as follows:

Sales tax is leviable on "sale of goods". Originally goods were regarded as tangible, movable property. The 46th Constitutional Amendment of 1982 enlarged the definition of sales. As things stand today, in addition to the sale of goods, the following transactions attract sales tax: (i) works contracts, (ii) hire purchase and lease transactions, and (iii) supply of foodstuffs in hotels and restaurants.

The constitution of India has laid down that taxes on the sales or purchases of goods, other than newspapers, will come under the jurisdiction of the state governments. Hence, every state has its own general sales tax law. Article 206 of the constitution, however, imposes a restriction on the tax to be levied by the states on the sale or purchase of goods outside the respective states (or in the course of import or export of goods). For this purpose the Central Sales Tax Act was enacted in 1956.

Customs Duty - Customs duty is an important indirect tax levied by the central government on the import of goods into India or export of goods out of India. The key features of customs duty are as follows:

- The rates of customs duty applicable to various goods are specified under the Customs Tariff Act 1975 (the Act hereafter). This is based on a system of classification, derived from the 'Excise duty is also levied by state governments on items like liquor. However, the state excise collection is a negligible international convention of harmonized commodity description and coding system, which is quite rational fraction of the central excise collection. Hence, we will focus only on the central excise duty only.

The Financial System

The financial system consist of a variety of institutions, markets, and instruments that are related in the manner shown in fig. It provides the principal means by which savings are transformed into investments. Given its role in the allocation of resources the efficient functioning of the financial system is of critical importance to a modern economy.

Financial instruments, financial institutions, and financial markets are closely interrelated and it is difficult to separate them. However, for pedagogic convenience we discuss them one by one. Financial instruments range from the common (coins, currency notes, demand deposits, corporate debentures, gilt-edged securities, and equity shares) to the more exotic (futures and options). Financial instruments may be viewed as financial assets and financial liabilities. Financial assets represent claims against the future income and wealth of others. Financial liabilities the counterparts of financial assets, represent promises to pay some portion of prospective income and wealth to others. Financial assets and liabilities emanate from the basic process of financing They distribute the returns and risks of economic activities to a variety of participants. The important financial assets and liabilities, claims and promises, in our economy are as follows

Money- Money is issued by the Reserve Bank of India and to a minor extent by the Ministry” of Finance.

Demand Deposit - This is a promise to repay a given sum as and when demanded by the hold It may or may not carry interest with it.

Short-term Debt - This is a promise to repay a specified sum along with interest within a period of one year.

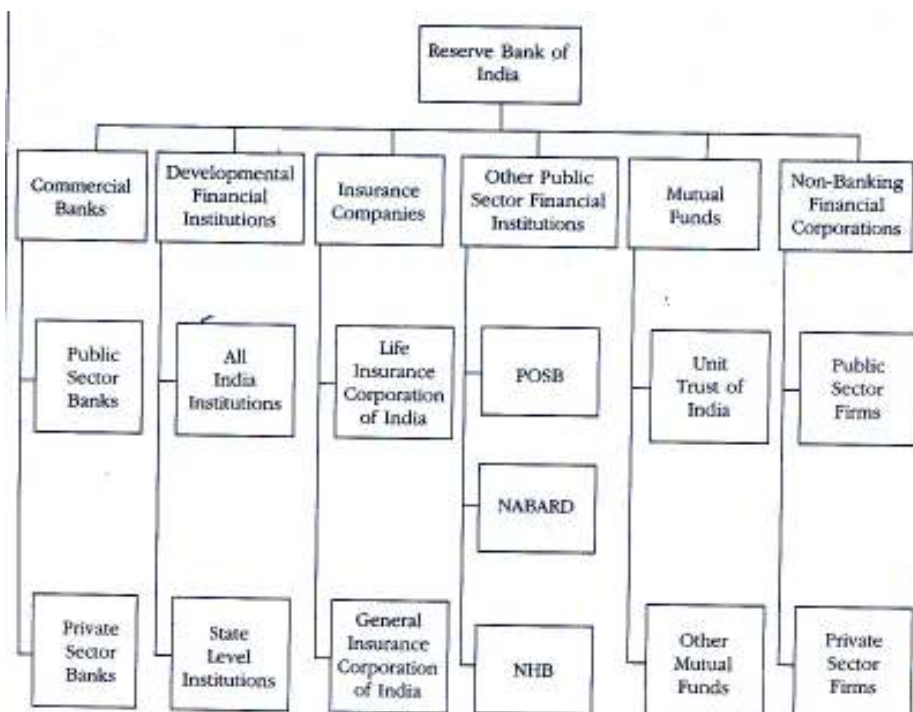
Intermediate-term Debt - This is a promise to repay a specified sum along with interest within period that exceeds one year but is less than five years'.

Long-term Debt - This is a promise to pay a stream of interest over a long period of time (ordinarily exceeding five years) and then repay the principal in a lump sum or in installments. (In exception cases the debt may be perpetual.)

Equity Stock - This represents ownership capital. Equity shareholders have a residual interest the income-and wealth of the company after all other claims are fulfilled. In addition to the above, a modern financial system has many other financial contracts. In addition to the above, a modern financial sys forwards, futures,

Financial Institution

The primary role of a financial institution is to serve as an intermediary between lenders . borrowers. Financial institutions in the organised sector function under the overall surveillance borrowers. Financial institutions in the organised sector function under the overall the Reserve Bank of India. The structure of financial institutions in India depicted in. Reserve Bank of India The Reserve Bank of India (RED being the central banking.



Bank of India, Industrial Finance Corporation of India, and Industrial Credit and Investment Corporation of India), State Financial Corporations, and State Industrial and Development Corporations has been established. By and large these institutions have been fairly responsive to the growing and varied long-term financial requirements of industries.

Insurance Companies - Presently there are two insurance companies in India; the Life Insurance Corporation (LIC) of India and the General Insurance Corporation (GIC) of India (which is essentially a holding company that has four fully-owned subsidiary companies in its fold). The Life Insurance Corporation of India, which provides life insurance, has massive resources at its command due to two reasons: (i) insurance policies usually incorporate a substantial element of savings, and (ii) insurance premiums are payable in advance. The subsidiaries of the General Insurance Corporation of India, which are engaged in the business of property insurance, too, have considerable resources with them because of the advance collection of insurance premiums.

Other Public Sector Financial Institutions - There are a variety of other public sector financial institutions. A brief description of the more important ones follows:

Post Office Savings Bank (POSB) Run by the Post and Telegraph Department on behalf of the Ministry of Finance, Government of India, the POSB is operated through the vast network of post offices. The POSB collects funds through various schemes like savings bank accounts, recurring and cumulative time deposit schemes, Public Provident Fund, and Indira Vikas Patras.

National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) The apex agricultural financing institution, NABARD channelises assistance through an elaborate network of regional, state level, and field level institutions like the Regional Rural Banks (RRB), the State Cooperative Banks, and so on. **National Housing Bank (NHB)** The apex agency for housing finance, NHB seeks to promote an institutional framework for the supply of finance in the housing sector.

Mutual Funds A mutual fund is a collective investment arrangement. The mutual fund is organised (with a board of trustees). It is, in a way, an umbrella organisation which floats various schemes in which the investment public can participate. Presently there are a number of mutual funds in both the public sector as well as the private sector. Of course, Unit Trust of India, with its massive resources, continues to dominate the mutual fund scene in India. Non-banking Financial Corporations From the mid-eighties many non-banking financial corpora-

tions have come into being in the public sector as well as the private sector. Numerically, of course, most of them are in the private sector. Some of the well known non-banking finance corporations are SEI Capital Markets, Kotak Mahindra Finance, Sundaram Finance, and Infrastructure Leasing and Finance Corporation. Non-banking financial corporations engage in a variety of fund-based as well as non-fund based activities. The principal fund-based activities are leasing, hire purchase, and bill discounting; the 'Except when it is set up under a statute as in the case of the Unit Trust of India main non-fund based activities are issue management, corporate advisory services, loan syndication, and forex advisory services.

Financial Markets

As against real transactions that involve exchange of money for real goods or services, a financial transaction involves creation or transfer of a financial asset. Here are some examples of financial transactions; issue of equity stock by a company, purchase of bonds in the secondary market, deposit of money in a bank account, transfer of funds from a current account to a savings account. While this list can be easily extended, the point of such examples is clear: financial transactions are very pervasive throughout the economic system. Hence financial markets, which exist wherever financial transactions occur, are equally pervasive.

There are two broad segments of the financial market, viz., the money market and the capital market. The money market deals with short-term debt, whereas the capital market deals with long-term debt and stock (equity and preference). Further, each of these markets has a primary segment and a secondary segment. New financial assets are issued in the primary market, whereas outstanding financial assets are traded in the secondary segment.

Money Market - The money market deals in short-term debt in contrast to the capital market which deals in long-term debt and stock (equity and preference). The money market in India, as in many other developing countries, is dichotomized into the organised and unorganised segments. The principal intermediaries in the organised segment are the commercial and other banks. (In addition, there are the LIC, UTI, Discount and Finance House of India Ltd., mutual funds, non-banking financial companies, and cooperative societies which presently play a minor role.) These intermediaries lend funds on a short-term basis to create an active inter-bank call loan market as part of the organised money market.

Capital Market - The capital market is the market for financial assets that have long or indefinite maturity. When a company wishes to raise capital by issuing

securities, it goes to the primary market which is the segment of the capital market where issuers exchange financial securities for long-term funds. The primary market facilitates the formation of capital. There are three ways in which a company may raise capital in the primary market: public issue, rights issue, and private placement. Public issue, which involves sale of securities to members of the public, is the most important mode of raising long-term funds. Rights issue is the method of raising further capital from existing shareholders by offering additional securities to them on a pre-emptive basis. Private placement is a way of selling securities privately to a small group of investors.

The secondary market in India, where outstanding securities are traded, consists of the stock exchanges recognised by the government. There are presently twenty one regional exchanges (located at Mumbai, Calcutta, Delhi, Chennai and other cities) and two nation-wide computerised exchanges, viz., the National Stock Exchange (NSE) and the Over-The-Counter Exchange of India (OTCEI). The government has accorded powers to the Securities and Exchange Board of India (SEBI), an autonomous body, to oversee the functioning of the securities market and the operations of intermediaries like mutual funds and merchant bankers and to prohibit insider trading.

The Major financial institutions in India are commercial banks, developmental financial institutions, insurance companies, mutual funds, and non-banking financial corporations. A financial transaction involves creation or transfer of a financial asset. Financial markets, which exist wherever financial transactions occur, are quite pervasive.

Reference:

1. Pandey, I.M., Break even Analysis with Non-linear Revenue and Cost function, *Business Analyst*, Vol. 7, No. 1, January - June, 1976
2. The Valuation of Growth Stocks, the Investment Opportunity Approach, *Journal of Finance*, 21, March, 2006
3. Mume, Gelen A., *Theory of Financial Structure*, New York, Holt, Rinehart and Winston, 2006
4. Van Horne, James C., *Financial Management and Policy*, New Delhi, Prentice Hall of India, 1999
5. Buchan, Joseph and Ernest Koenigsberg, *Scientific Inventory Management*, Prentice Hall, Inc., 2006



Dr. Arun Soule
Associate Professor
Deptt. of English
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

THE Mc CARTHY YEARS: A REFLECTION OF THE DARK PERIOD OF AMERICAN DEMOCRACY IN *THE DEER PARK*

After the Second World War, there emerged a period of “Cold War” between America and Russia. Even though there was no war between the two countries, yet each was suspicious of the growing power of the other. As Russia followed the Communist form of government, and America the Capitalist way of life, both the countries were radically different in their ideologies, and both tried to popularize their way of life in the world at large, because both countries were super-powers at that time, and that is the reason why the world was referred to as “bipolar” at that time. This led to escalating levels of espionage and spying on each other’s movements. The activities of the KGB of the Russia and of the CIA of America were at their peak during the period of the fifties.

Norman Mailer’s novel, *The Deer Park* (1955) depicted the political situation of the mid-fifties of America. The bureaucracy of America had assumed immense powers during those unstable times, and the freedom of the individual had diminished as never before. The American government had started investigating government employees, and anyone found guilty lost not only his job but would not be able to get employment anywhere. This programme of hounding suspects of communism came to be known after the most forceful member of this committee, Joe McCarthy and this programme came to be known as McCarthyism (Feuerlicht 36-112).

The setting of the novel is Desert D’Or, a Hollywood pleasure resort, which is modelled on Palm Springs in California, and serves as a microcosm of the Hollywood Society. The locale of Desert D’Or suggests an openness of space, even though it is a defined area. It is, however, ironical that the minds of most people living in these luxurious surroundings are closed. There are differences in ideology, which lead to victimization of individuals, and loss of freedom.

Charles Eitel, the movie director of Supreme Pictures comes to Desert D’Or after he has been blackballed (black listed) by the Congressional Investigating Com-

mittee. He is one of the victims of the Committee for Un-American Activities and is faced with the moral dilemma between loyalty and exile on one hand, and surrender on the other. Eitel chose to remain silent, not because he was actually involved in un-American activities but because he considered it against his moral integrity to betray people, even if it entailed his boycott from Hollywood.

The extent of victimization that took place during those times is reflected in the remarks of President Truman, who defined McCarthyism as, "corruption of the truth, abandonment of our historical devotion of fair play, and of due process of law"(Feuerlicht 112).

Though Eitel's defiance was generally condemned by Hollywood society, there were people like Marion Faye and Sergius O'Shaugnessey who admired Eitel for daring to oppose such a powerfully oppressive government organization as the Subversive Committee.

Eitel could have chosen to defy the Committee for other reasons as well. For one, he was by now fed-up of the atmosphere of work in the studio where a director was only as good as his last film. Eitel had enjoyed a period in the thirties where he achieved fame as a true artist when he made courageous films on contemporary social themes. As an individual also, he revealed himself as a man of integrity in the manner in which he risked his life in the course of the struggle for democracy in Spain. But now, Eitel was forced to compromise with the studio executives and be content with only making formula-based films which assured commercial success but no artistic satisfaction. To be able to make honest and artistically fulfilling films was now a dream that Eitel could never hope to fulfill under the present circumstances at Supreme Studios, because he found himself helpless before people like Herman Teppis and Collie Munshin who controlled the studios. Even the consolation of being rich with a fourteen room mansion and an opulent life-style is not compensation enough to smother his yearning to be a true artist. Another reason, why Eitel brought about a situation, where he had to leave Supreme Studios was because he wanted to get another chance to be able to make artistically honest films. As he admits, "I began to think that the reason I acted the way I did with the committee was to give myself another chance" (Park 51-52).

The dilemma of the artist between choosing genuine art and compromising for economic security is a common theme in Hollywood novels. Jonas Spatz says, "Particularly in Hollywood novels, the integral desire is a central theme. In some of these the assumption is that creativity is incompatible with financial security" (Spatz 187).

While in exile and living on the periphery of Desert D'Or society, Eitel meets Sergius O'Shaugnessey, who like him, has also come to Desert D'Or to discover his potential and regain his individuality. Sergius had refused to be a cog in the totalitarian machinery of the American government. Sergius had been an air-force lieutenant, who along with other fliers had bombarded Korean villages, Sergius realizes that he has unwittingly been serving as an instrument of destruction for his country, as he had bombed so many thousands and yet had remained indifferent to these killings. In recoil from such horrors, he suffers from a breakdown. This also reflects Mailer's disgust with the Eisenhower years and the Korean war. Mailer considers such collective violence abhorrent and condemns it. Mailer has remained consistent in his condemnation of collective violence. In an interview with Paul Krassner, Mailer remarked,

"I still disapprove of bombing a city, I disapprove of the kind of man who will derive aesthetic satisfaction from the fact that an Ethiopian village looks like a red rose at the moment the bombs are exploding" (*The Presidential Papers* 137).

Both Eitel and Sergius are forced by a repressive system to live lives in which they have not been able to be true to themselves. Eitel had been forced to make stereotyped films which made money but were far from reality. His battle is not simply that of a man fighting the Hollywood establishment, but a fight against repressive society. His refusal to conform to the norms of such a society is heroic. Hollywood is no different, in the way people interact, from any other organization in America. It is, in fact, a microcosm of America. Stanley T. Gutman says, "Hollywood, if one examines it as a whole and not just its cinematic products, is America in microcosm: it manifests the competition, violence, and chaos of American society" (Gutman 52).

Eitel comes to desert D'Or with the thought of continuing his personal project of writing the script of an artistically satisfying film.

Sergius also comes to Desert D'Or after his disillusionment with the air force, on the winnings of a lucky gambling venture with fourteen thousand dollars, to drift and absorb newer influences. Sergius has come to Desert D'Or with the sole object of having a good time. He wants to get things the easy way without struggling for it but soon realizes that he has to pay in different ways if he has to achieve something. Eitel tells Sergius, "One cannot look for a good time, Sergius." Sergius soon realizes that by compromising for security and comfort, he is drifting away from his aim of being a writer and developing as an individual.

Eitel also has many difficulties in realizing his aim to finish his personal project of writing the script of an artistically satisfying film. He suffers from economic deprivation and alienation, and realizes the importance of courage. As Robert Solataroff puts it, “psychic expansion demands more primitive virtues than intellectual keenness” (Solataroff 62).

In *Desert D’Or* Sergius learns that the Hollywood people live inauthentic lives. Their relationships are functional and are based on bettering their professional status. It is for this reason that Collie Munshin’s offer to help him is met with suspicion by Eitel. Eitel knows that Collie is perfectly capable of stealing his plot.

Though America is a democratic country, the totalitarian forces of the establishment are oppressive and dictatorial. This is seen in the characters of Herman Teppis and Collie Munshin. Herman Teppis, the President of Supreme Pictures is typical of the repressive establishment figures of America, who try to give the illusion that they care for the welfare of others and are very liberal, when all they are interested in is consolidating maximum power for themselves. When someone goes against their wishes, they become victims of their wrath. This is seen when Herman Teppis invites Sergius to his party but brusquely tells Eitel that he is not invited (*Park* 71). Teppis represents the strict, authoritative members of the establishment, who, behind a friendly and protective facade, manipulate and govern the lives of their staff not only in the professional but also in their personal lives, as is seen in the quasi-comic portrayal of Teppis as he tries to force a marriage between the homosexual Teddy Pope and the unwilling Lulu Meyers, (*Park* 264, 272).

It is also notable that Supreme Pictures, apart from making films, works hand-in-glove with the Subversive Committee, as is seen when it does not employ Eitel, until he compromises with the Subversive Committee. Malcolm Bradbury, speaking of this novel, says that it is,

Set in the Hollywood of the McCarthyite anti-communist purges, this novel identifies the politics of the movies with the chaos of national politics and the Californian desert spaces around *Desert D’Or* with contemporary American history (Bradbury 149).

Marion Faye is the other character, apart from Sergius and Eitel, who is on the road to growth and development, while in rebellion against societal norms.

Marion Faye is the extreme representative of rebellion towards society. His life is spent in experimenting with people and understanding them. He has an abhorrence for falsehood and is brutally honest. When the call-girl Bobby returns after an

evening with Eitel, with declarations that he is in love with her, Faye does not hesitate in deflating her ego. He phones Eitel in the early hours of the morning and lets Bobby know that Eitel is not even interested in seeing her again. Marion can be brutally frank in educating others. Marion corrects Bobby's false impressions of her relationship with Eitel, even if he has to be cruel to her because he desired "to burn into her brain the seed of what she had never possessed: one grain of honesty" (*Park* 156). He knows instinctively that if he is trapped into conforming to the dictates of society, he will not grow as an individual. Robert Solataroff says, "With his superior reason, Faye cognitively (not instinctually) knows that he can only conquer himself by expunging from his psyche all the tendencies to obey the dictates of the society he hates so much" (Solataroff 66).

Faye has another important function in the novel. He serves as the voice of conscience of Eitel, who tells him to desist from churning out inauthentic films which are nothing but "crud" (*Park* 48) and "slop" (*Park* 49).

It is not easy for Sergius to traverse the path of self-development in Desert D'Or. He is visited by two F.B.I. men because of his friendship with Eitel, who has been black-balled by the Congressional Investigating Committee and also because a gossip column had mistakenly referred to him as a marine captain instead of an air-force lieutenant. They are insulting in their investigation and even threaten Sergius with violence. Sergius narrowly escapes either breaking down with fear before these two men, or being brutally beaten up by them (*Park* 315). The presence of the F.B.I. men is intimidating and he is reminded how often such persons in authority had been intimidating him since the days when he was in the orphanage. Courage is required to regain self-esteem and Sergius, in defiance of the orders of the F.B.I. men, leaves for Mexico. The significance of courage is understood by Eitel, for he tells Elena, "everything you learn is done by fighting your fear" (*Park* 104).

The violence of the F.B.I. men as they threaten Sergius in the hotel room is not exaggerated. In the 1950s such overt violence from the bureaucratic state was a possible reality. These two agents look out of place in a democratic society and are a reflection of the fact that the supposedly democratic government machinery is not as liberal as made out. Commenting on these F.B.I. men, Barry Leeds comments, "they are characters who belong in a totalitarian state and who are not supposed to exist in an ostensible democracy" (Leeds 113).

Sergius has overcome his fear of the two agents. He has also gained the moral strength to turn his back to the temptations of Hollywood, namely Lulu Meyers, the

idol of millions as a wife, economic security and the hope of becoming a movie-star. Sergius refuses to sell the rights to his life-story because he could not bear to be a part of the Hollywood system which made money by projecting unrealistic and cheaply optimistic dreams before the gullible masses. Instead, Sergius chooses the path to growth and self-development.

Sergius has shown himself courageous as an individual and an artist. Eitel had been the inspiration for Sergius. He starts identifying with Eitel when he reads Eitel's defiant testimony before the Congressional Committee, and even feels that Eitel's words are his own, "I felt as if I were speaking my own words, or at least the way I would have liked to say them into the eye of somebody who knew I had broken a regulation" (*Park* 32).

Eitel's courage inspires Sergius to struggle and aspire to be an honest and bold writer, who would not hesitate in writing of the realistic world and would be able to show "the real world, where orphans burned orphans" (*Park* 363).

Eitel also travels on the road to self-development and growth as an individual and an artist. He wants to write a script, which would be refreshingly realistic and honest. But difficulties and temptations come along. He is troubled by economic considerations. He is tempted in various ways by the Hollywood world. First he is visited by Nelson Nevins, who arouses Eitel's jealousies by his boastful accounts of worldly success and an affair with a famous Italian actress. Then he is visited by Collie Munshin, the son-in-law of Herman Teppis, who is the most powerful man after Teppis at Supreme Studios. Collie sees Eitel struggling with his script and he makes a few suggestions which changed the original script considerably but would be sure of commercial success and prove to be a "gold mine" (*Park* 179). The altered script is as false and far from reality as the earlier scripts of Eitel, but Eitel is surprised to discover how easy it has now become to complete it, and he works on it by adding,

"A little syrup, a little acid, and lots of heart. These were the cup-cakes which won Hercules awards, and it was fine to be working again with cynical-speed" (*Park* 199).

The beginnings of Eitel's compromises have started with his giving way to Collie's suggestions in his script. His compromise with society is complete when he allows himself to be persuaded to capitulate to Congressman, Crane. What is ironic is that Crane's Committee admits its mistake about Eitel's connections with the communists. His capitulation is made public in the papers. Eitel gets back his job at

Supreme Studios, but he has compromised as an artist by going back to writing maudlin and inauthentic movie-scripts. He has also compromised as a self-respecting individual by agreeing to false charges against him for the security and financial support of his position as director. Robert Beigibing does not blame Eitel entirely, but attributes part of his failure to his approaching middle-age and diminishing energy, and says that "Eitel's failure is not so much a failure of vision as it is a failure of energy" (Beigibing 38).

Eitel is despised for compromising with the Norton Committee by Sergius and Marion Faye, because for them he stood as a symbol of rebellion against oppressiveness and falsehood. Sergius had refused a movie contract and the luxuries of Hollywood that it promised, because of the example set by Eitel, who had left an opulent life-style in favour of honesty, truth and self-respect. Marion is sharp in his criticism of Eitel, when he tells him, "You might have been an artist, and you spit on it" (*Park* 182). Eitel, himself is not very happy with the situation because he feels like a defeated man, who has failed as an artist and an individual. He feels that he has prostituted his talent and feels no better than a common whore in the way Hollywood uses and abuses him, "I had the sensation of being a complete and total whore in the world, and I accepted every blow, every kick, and every gratuitous kindness with the inner gratitude that it could have been a god deal worse" (*Park* 297).

The establishment is strong and not easy to resist. Teppis and Munshin represent the establishment. They are powerful and as the novel shows, they get what they want. Though their actions are at times despicable, they do not get their just desserts. They are always successful. As Gutman says, "The measure of this power is that the industry – in the persons of Teppis and Munshin always wins" (Gutman 53).

Eitel is an honest person, but as often happens, honest and good people suffer in a corrupt environment. As Sergius says, "I had the notion that there were few kind and honest men in the world, and the world always took care to put them down" (*Park* 31).

It is noticeable that most of Eitel's troubles arise from problems which are his own creation. His problem is that he wants to be heroic but lacks the energy and the will to make tremendous efforts.

It would not be fair to condemn Eitel outright, because he does have some heroic qualities, along with his weaknesses. He may be considered heroic by mod-

ern standards, because of his honesty, willingness and effort to fight the corrupt establishment, but ultimately suffers failure because he ultimately gets tired of fighting the establishment and continuing on the difficult path of self-development and authenticity.

Works Cited

1. Bradbury, Malcolm. *The Modern American Novel*. Oxford: Oxford University Press, 1983.
2. Beigibing, Robert J. *Acts of Regeneration: Allegory and Archetype in the Works of Norman Mailer*. Columbia and London: University of Missouri Press, 1980.
3. Fuerlicht, Roberta Strauss. *Joe McCarthy and McCarthyism: The Hate that Haunts America*. New York: McGraw Hill, 1972.
4. Gutman, Stanley T. *Mankind in Barbary*. New Hampshire: University of Vermont, 1935.
5. Leeds, Barry H. *The Structured Vision of Norman Mailer*. New York: New York University Press, 1969.
6. Mailer, Norman. *The Deer Park*. New York: Granada Publishing Ltd., 1955.
7. Mailer, Norman. *The Presidential Papers*. London: Andre Deutsch, 1964.
8. Solataroff, Robert. *Down Mailer's Way*. Chicago: University of Illinois Press, 1974.
9. Spatz Jonas. *Hollywood in Fiction: Some Versions of the American Myth*. The Hague: Moulton and Co., 1969.



Dr. Shashi goel
Co-editor, Atishay Kalit
ICSSR Post Doctoral Fellow
Deptt of Political Science
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

GENDER DISCRIMINATION: FROM WOMB TO TOMB

“The term “discrimination against : women” shall mean any distinction, exclusion or restriction made on the basis of sex which has the effect or purpose of impairing or nullifying the recognition, enjoyment or exercise by women, irrespective of their marital status, on a basis of equality of men and women, of human rights and fundamental freedoms in the political, economic, social, cultural, civil or any other field”.

Article 1, CEDAW¹

Layers of inequality constrain life choices, these are: Regional inequalities, urban-rural disparities, gender inequality, Income, public policy and all. In those genders inequality or disparities are among the deepest and most pervasive of inequalities.

Women’s transitional alliances and international conferences have globalized gender issue. On 18 December 1979, the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women was adopted by the United Nation General Assembly. It entered into force as an international treaty on 3 September 1981 after the twentieth century had ratified it. By the tenth anniversary of the convention in 1989, almost one hundred nations have agreed to be bound by its provisions. In its preamble, the convention explicitly acknowledges that “extensive discrimination against women continues to exist”, and emphasizes that such discrimination “violates the principles of equality of rights and respect for human dignity”. As defined in article 1, Discrimination is understood as “any distinction, exclusion or restriction made on the basis of sex.... In the political, economic, social, cultural, civil or any other field.”²

The social, cultural and religious fiber of India is predominantly patriarchal contributing extensively to the secondary status to women. Indian women have been the victim of deep rooted traditional oppression and socio-economic inequality in a male dominated society. Family, society, religion, media, law and legal system,

cultural beliefs and practices, education, political system and institutions define and reinforce gender inequalities. This is the age old system of inequality and stereotype role of women. The reason for these inequalities is due to patriarchal structure and gender biased society. The patrilineal social structure based on the foundation that the family line runs through a male, makes men a precious “commodity” that needs to be protected and given a special status.

The belief is that, only the son who can perform the last rites, that lineage and inheritance runs through the male line, son will look after parents in old age, men are the bread winners etc. and the girl child is a burden for father have resulted in the low valuation of a female child. Another important pillar of the patriarchal structure is marriage wherein women are given a subordinate status, having no say in the running of their lives or any control over their bodies or bodily integrity. Marriage is also considered as a process whereby the burden of the father is passed on to the husband for a very high price. The dowry or groom price so very staggeringly high irrespective of the class structure that generation may have to toil to repay the debts incurred during marriage. All of this has contributed to a low social status for women in society, to such an extent that even the birth of a girl child in a family is sought to be avoided.³

A deleterious fall-out of the subjugated position of women is their vulnerability to violence like domestic violence, rape, sexual abuse, dowry harassment, trafficking etc., with little or no mechanisms for combating the same, either by civil society action. A pernicious form of violence against women in some parts of India has been and still is the elimination of the girl child or female infanticide. The female foeticide and infanticide both are two side of the same coin and this has adversely resulted in the declining sex ratio with all the social implications.

It may be argued that the deliberate neglect of female children ought to come under the label of infanticide. There might be a case for this, but the point recognize is that the social practices that lead to excess female mortality are more subtle and widespread than the graphic stories of infant drawing, poisoning, or asphyxiation that periodically make headlines in the newspapers. This is not to deny that female infanticide, strictly defined, does indeed occur in India⁴.

In India itself, male and female death rates in the 0-6 age group are now quite close to each other in terms of averages for the country as a whole, but a strong female disadvantage persists in regions where gender inequality is particularly pronounced, including most states of north India.

The force of excess female mortality, therefore, lies mortality rates in 0-6 age groups beyond that of female infanticide. The female disadvantage in these age group is itself due to a well-documented practice of preferential treatment of boys and neglect of female children in intra-household allocation. Female infant deaths due to infanticide, which are reported by the parents as due to some other cause. But the anthropological evidence suggests that female infanticide, when it does occur, takes place very soon after birth. There is indeed, considerable direct evidence of neglect of female children in terms of health care, nutrition and related needs, particularly in north India⁵.

Table 1:- Sex ratio and Child sex ratio (per 1000 male) in India

Year	Sex-ratio	Child-Sex Ratio (0-6) years
1991	927	945
2001	933	927
2001	940	914

Table 2:- Sex ratio and Child sex ratio (per 1000 male) in Rajasthan

Year	Sex-ratio	Child-Sex Ratio (0-6) years
1991	910	916
2001	921	909
2001	926	883

Table 3:- Sex ratio and Child sex ratio (per 1000 male) in Jaipur

Year	Sex-ratio	Child-Sex Ratio (0-6) years
1991	892	925
2001	897	899
2001	909	859

The comparative analysis of the data of last three censuses as shown in table 1, 2 and 3 has established that there is an increasing overall sex ratio (SR) in India, Rajasthan (states) and Jaipur (Dist.), but drastically decline in child sex ratio (CSR) 0-6. Thus the situation is in very bad shape. Female feticides and infanticide both are responsible for declining CSR. There are many reasons behind it like: Patriarchy,

typical social-economic and cultural mind set particularly in Rajasthan. Where in 1981 CSR were 954 and in provisional census data 2011 it are 883, 71 point CSR clearly declined in Rajasthan, since 1981 to 2011. Thus according to census 2011, 86 female child (per 1000 male child) are missing in India and 117 female child are missing in Rajasthan.⁶

Girl children are deprived of adequate nutrition, health care and love and access to education, knowledge and respectability. This continues throughout their lives from birth to death by denying women access and control over resources and power in all areas within the family, at the workplace and in society.

Women's nutritional status and their vulnerability to malnutrition vary throughout their lifecycle. Indicators that describe women's nutritional status include trends in anemia, low birth weight deliveries, measures of the body mass index (BMI), arm circumference, stunting (retarded growth due to chronic malnutrition) or underweight⁷.

The gender disparities and discrimination in the areas of health, nutrition and nourishment can be observed in following areas:-

1. The social status of women and nature of their domestic lives have constrained their accessibility to health services.
2. Women face birth related complications in terms of early marriage, more children, pregnancy damages and abortions.
3. Women suffer much in comparison to men in terms of energy deficiency, chronic diseases etc.
4. Higher mortality rate among women.
5. Inequitable feeding practices for boys and girls.
6. Strong preference for son which is indeed an alteration of patriarchal society has resulted in female feticides.
7. Female infanticide takes place in tribes.
8. Female children are more prone to communicable diseases.
9. Discrimination against female children in terms of immunization, particularly in rural area.
10. The women are subject to higher risks of sexually transmitted disease.
11. Women face maternal mortality risk.
12. Lack of pre and post-natal care leading to maternal morbidity particularly in rural areas⁸.

Women suffer subordination that they experience, regardless of class takes various forms of discrimination, disregard, insult, control, exploitation, oppression and violence within the family, in the work place and in society. The forms of oppression and types of discrimination may differ, but the concept remains the same.

“Short-changing girls is not only a matter of gender discrimination; it is bad economics and bad societal policy. Experience has shown, over and over again, that investment in girls education translate directly quickly into better nutrition for the whole family, better health care, declining fertility, poverty, reduction and better overall economic performance.”

Kofi Annan, United Nations Secretary General.⁹

Types of Gender discrimination

There are various kinds of gender discrimination and disparities, which are as follows:

1. **Natality:** - In this type of discrimination a preference is given for boys over girls that many male-dominated societies have, gender inequality, can manifest itself in the forms of the parents wanting the new form to be a boy rather than a girl. There was a time when this could be no more than a wish (a day dream or a night mare, depending on one’s prespective) but with the availability of modern techniques to determine the gender of the foetus, sex-selective abortion has become common in many countries. It is particularly prevalent in Asia and in India.
2. **Professional or Employment:** - In terms of employment as well as promotion in work and occupation, women often face greater handicap than men. A country like in India may be quite egalitarian in matters of demography or basic facilities, and even to a great extent in higher education and yet progress to elevated levels of employment and occupation seems to be much more problematic for women than for man. The example of employment in equality can be explained by saying that men get priority in seeking job than women.
3. **Ownership:-** In many societies the ownership of property can also be very unequal. Even basic assets such as homes and land may be very asymmetrically shared. The absence of claims of property can not only reduce the voice of women, but also make it harder for women to enter and flourish is commercial, economic and even some social activities. This type of discrimination has existed in most parts of the world, though there are also local variations. For example, even though traditional property rights have favored men in the bulk of India.

4. **Household:** - There are often enough, basic inequalities in gender relation within the family or the household, which can take many different forms. Even in cases in which there are no overt sights of anti-female bias in say, survival or son-preference or education, or even in promotion to higher executive positions, the family arrangements can be quite unequal in terms of sharing the burden of housework and child care. It is, for example, quite common in many societies to take it for granted that while men will naturally work outside the home, women could do it if and only if they could combine it with various inescapable and unequally shared household duties. This is sometimes called “division of labour”, though women could be forgiven for seeing it as “accumulation of labour”. The reach of this inequality includes not only unequal relation within the family, but also derivative inequalities in employment and recognition in the outside world. Also the established fixity of this type of “division” or “accumulation” of labour can also have far reaching effects on the knowledge and understanding of different types of work in professional circles.
5. **Discrimination in Special opportunity:-** Even when there is relatively little difference in basic facilities including schooling, the opportunities of higher education may be far fewer for young women than for young men. Indeed, gender bias in higher education and professional training can be observed even in some of the richest countries in the world, In India too, sometimes this type of division has been based on the superficially innocuous idea that the respective “provinces” of men and women are just different.

It is sad, distressing and unfortunate that between the male and female who is creative, positively constructive and highly beautiful is called weaker, inferior of the second sex: is sexually harassed, victimized and traumatized, is subject to discrimination, violence, exploitation, oppression and injustice, and is treated as a commodity for sale and purchase. She is marginalized. There is utter disregard for her psychological, emotional, physical and spiritual quests. Tragically, The most perverted and cruelest form is the practice of female foeticide and infanticide.

“A society’s progress can really be judged by how well half our society progresses. And if they are to progress fast, half the talent and half the energy cannot be ignored. Women must be allowed full freedom of action and movement.”(Rajiv Gandhi)

In theory our society attaches great sanctity to women. But, in practice it is violated in such a gruesome manner and on such a scale that hypocrisy is too mild an

expression for it. Barring some regions and communities in the country; women have been reduced to playthings, whose sole purpose in life is to minister to the needs of men. Even those who claim to be most progressive or revolutionaries in their public life are feudalistically domineering and possessive in their homes towards their womenfolk.

Types of Crime against women

Violence against women in India has assumed an alarming proportion. It is often seen as an assault against her body, but more importantly it is a negation of her personhood. Violence takes a dismaying variety of forms, from domestic abuse and rape to child marriage and female circumcision. In recent years, there is a growing concern over dowry deaths, rape, prostitution, sexual harassment, wife beating and abuse of women including eve-teasing etc. Which are reported in newspapers and other Indian media very frequently.

According to 'V.N. Shrivastve' the Violence may be of three kinds- Domestic violence, Physical violence and psychological violence.¹⁰

- (i) **Domestic Violence :-** Domestic violence is violent victimization of women, within the boundaries of family, usually by men (or his family) to whom they are married or with whom they have marriage like relationship. Violence can be both physical a psychological. It indicated threat or aggressive behaviour towards her not only to her physical being but also towards her self-respect and self-confidence.
- (ii) **Physical Violence :-** Physical violence includes all types of aggressive physical behaviour by husband or his family towards the women's body (victim). It includes the sexual violence also.
- (iii) **Psychological Violence :-** Psychological violence is carried out with psychological Weapons (threats / insults / humiliating treatment / denial of human existence) rather than physical attack.

The crimes against women enumerated by Usha Verma are:¹¹

(I) Physical Violence (Torture) :-

- (i) Amniocentesis Tests under the guise of directing congenital abnormality, female fetus is aborted after sex determination. If it is found that it is a female child, the pregnancy is terminated. It has become quite popular and several open advertisements to the effect can be seen in the newspapers and magazines. Thus the birth rate of women is decreasing.

- (ii) Neglect, starvation, lack of immunization, no medical service and malnutrition of female child. A son is given the choicest food, milk, while the female child is not provided with.
- (iii) Infanticide – in spite of laws, it is still prevailing.
- (iv) Eve teasing
- (v) Molestation
- (vi) Abduction and kidnapping
- (vii) Wife beating
- (viii) Wrongful confinement
- (ix) Fraudulent marriage
- (x) Adultery – Enticement of married women
- (xi) Cruelties on married women
- (xii) Rape
- (xiii) Outraging the modesty of a woman
- (xiv) Defaming young girls
- (xv) Prostitution
- (xvi) Indecent representation of women

(II) Mental Cruelties:-

- (i) Discrimination in male and female child
- (ii) Married women debarred of employment in several organizations.
- (iii) Female generally having no say in her marriage.
- (iv) No equal remunerations.
- (v) Wife having no title in her husband's or in laws property or home.
- (vi) The Dowry menace
- (vii) Discrimination under law
 - (a) woman but a natural guardian of her children
 - (b) no community of property
 - (c) custody of children
 - (d) discrimination in employment

Violence against women is partly a result of gender relations that assumes men to be superior to women. Given the subordinate status of women, such of gender violence is considered normal and enjoys social sanction. Manifestations of violence include physical aggression, such as flows of varying intensity, burns, attempted hanging, sexual abuse and rape, psychological violence through insults, humiliation, coercion, blackmail, economic or emotional threats, and control over speech and actions. In extreme, but not unknown cases, death is the result. These expressions of violence take place in a man-women relationship within the family, state and society.

After studying the data of Crime against women. It is observed that crime against women is increasing day by day. She is not safe even in her own home. In family, she has to face many types of violence like: Rape, incest, female foeticide, infanticide, domestic violence, physical abuse, sexual assault etc. Most of the women, are facing the Domestic violence whether they are married or unmarried or belonging to any caste, class, religion or at any age of life from womb to tomb (from birth to death).

Reference:-

1. CEDAW, Article 1
2. Ibid, Preamble of CEDAW
3. Handbook on PCPNDT Act 1994, Ministry of health and family welfare, 2006
4. Panigrahi, Lalita; British social policy and female infanticide in India, Munshiram Manoharlal Publications, 1972, New Delhi, p. 92
5. Agarwal, Bina; Social security and the family: coping with seasonality and calamity in rural India, 1991, p. 51
6. Census of India, 2001 Report.
7. Sharma, Usha; Gender mainstreaming and women's rights author press, New Delhi, 2004, p. 48
8. Upreti, B.C.; Gender disparity in South Asia, An overview of Dimensions of Inequality and strategies for equity, Anamika publishers, New Delhi, 2005, p. 71
9. Kofi Annan, United Nations Secretary General, www.un.org
10. Shrivastve, V.P.; Handbook on crime against women, Indian Publishers, Delhi 2005, p. 145
11. Verma, Usha; Crime Against Women



Dr. Rita Pratap
Editor
Atishaya Kalit, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

VAGAD CIRCUIT – A TOURIST PARADISE (BANSWARA AND DUNGARPUR)

Due to its colourful, multifarious and glorious history tradition and culture, Rajasthan is one of the few Indian states which allures foreign and domestic tourists both. Its deserts, lakes, fairs and festivals, wild life, valiant, history and diversified culture have attracted people.

In Vagad area two districts are included that is Banswara and Dungarpur. The word **Vagad** is derived from the Gujarati word Vagda, which means a sparsely populated area. The portion of Vagad between the two rivers Som and Jakham is known as **Katara area** as the shape is in a *katar* or dirk.

A Vagad Circuit¹ for tourists during the period of **Beneshwar Fair** in the month of January-February would be milestone for them. These two important cities in the Vagad circuit are located on either side of the banks of river Mahi.

Banswara : For one could also call it a bamboo town, as that's where the place derives its name from for once *Bans* or bamboo grew here in abundance. The region is inhabited by tribals a stronghold of the Bhils, a tribe constituting half of the total population. The undulating green hills, forest thickets, the lakes valleys, all give this area its own unique feel and a circuit would be ideal break away, for the nature lovers. Mango, Dates, Mahua trees grow in abundance along with teak forests on the slopes of the Aravalli hills. So also Banswara has a rich wild life too. Bounded by Udaipur and Chittorgarh, the district presently comprises the territories of the former Banswara state once founded by Maharawal Jagmal Singh and chieftainship of Kushalgarh.

The prime sites for the tourists to visit is '**Anand Sagar Lake or Bai Talab**' an artificial lake on the eastern side of the town constructed by Lachhi Bai of Idar the queen of Maharawal Jagmal. Beautiful Chhatris of Rulers of the state and an array of holy trees called **Kalpa Vriksha** famous for fulfilling desires of visitors lie close by.

‘**Dialab Lake**’ is another sport where a beautiful lake is found covered with lotus flowers. On its bank is the ‘**Badal Mahal**’ the summer resort of former rulers.

Excursions can also be taken to following places that is : **Mahi Dam** which is 18 kms from Banswara where under the Mahi Bajaj Nagar project Various Dams and Canals have been built over the mahi river amid beautiful surroundings. The mahi river has a number of islands at interval and hence Banswara is at times referred to as the city of hundred islands. The ‘**Kagdi-Pik-up-Wear**’ a part of Mahi Bajaj Sagar project is also a small dam with beautiful natural surrounding with fountain garden and children’s park, Mahadeo Joshi’s ***Samadhi Sthal*** and ‘**Sai Baba Temple**’ nearby are added attractions. The Sai Baba Temple situated at the top of the hill over looking Kagdi Lake is also worth visiting.

In **Madareshwar**, set amid natural beauty is a temple of Lord Shiva. 19 kms away is also an ancient temple of the Goddess ***Tripura Sundari*** (One of the *Shakti Peeth* of Hindus) commonly known as ‘**Turtia Mata**’.² The idol of the goddess riding on a tiger is magnificent in black stone with 18 hands, each carrying some symbol.

Talwara,³ 15 kms from Bansawara is a historic city is famous for its ancient temples and ruins of some old monuments which include ‘**Laxmi Narain Temple**’, **Gokarneshwar Mahadev Temple** and **Jain Temple of Sambhav Nath**. Sompura artists belong to this place who are well known as stone carvers. Exquisite green stone idols made by local artisans is famous.

55 kms away from Banswara on outskirts, the area adjoining **Arthuna**⁴ around Lonkiya village still have the remains of Shaivite temples. The idols found here bear the inscriptions dating back to V.S.1173 and 1194. Among the dilapidated ruins is a beautifully carved conjugated statue of Shiv, Ganesh and Parvati.⁵

In a around the village of Arthuna, clusters of ruined Hindu (Shavite) and Jain Temples dating back to the 11th, 12th and 15th century are found. The **Mandleshwar temple** built in 1080 AD by Chamunda Raja Parmara Chief and named after his father Mandan Deva, bear several inscription that’s speak of the past glory of **Arthuna**.⁶ (Plate - 1)



Temple complex, Arthuna

Abdulla Peer is also a popular shrine of Bohra Muslim Saint. During the annual Urs festival a large number of Bohra Muslims from all over Vagad area visit the place.

Dungarpur

Dungarpur is a picturesque town and what strikes a visitor is its varied topography. Nestled in the foothills of the Aravallis of the rugged terrain of the north-east merges into fertile plains of alluvial soil in the south-west. The Mahi and Som rivers meander through the district. The Mahi separating it from Banswara and the Som drawing a natural boundary between the district and Udaipur.

Dungarpur, famous for its unique style of architecture was founded in 1282 AD to by **Rawal Veer Singh**, who drove out the Bhil chieftain Dungaria. The magnificent palaces and residences of nobles, adorned by *Jharokha's* built in stone. This architectural style is said to have been developed during the reign of Maharawal Shiv Singh (1730-1785 AD)

The major attraction here are **Udai-Bilas Palace⁷ (Plate -2)** built by the side of a lake. It is a palace, the royal residence named after its founder Maharawal Udai Singh II, a patron of art and architecture. He built a wing of this building in blueish, grey, local stone **Parewa**. This **Ek Thambia Mahal** (literally means one pillared palace) is embellished with intricate sculptured, pillars and panels.



Junagarh, this fort was built in different phases of construction between 13 and 18 centuries. The seven storeyed edifice resembling a fortress surrounded with solid ramparts, watch towers, turrets and cupolas. The splendid interior of **Juna Palace** is embellished with beautiful frescoes, miniature painting, glass, mirror work and Chinese tiles. **(Plate -3)** The exterior has crenellated walls. Prior permission is sought to visit this palace.



Gaib Sagar Lake, along this is the famous shrine of Shrinathji. The shrine is a conglomeration of several exquisitely built temples with the main temples.

The **Vijay Raj Rajeshwar Temple, (Plate-4)** dedicated to Lord Shiva is also one of the finest architectural splendour and fine example of the craftsmanship of the *shilpis* of Dungarpur.



The next is the Archeological museum which houses a fine collection of ancient artifacts.

About 24 kms from Dungarpur is a temple of 12th century **Deo Somnath** dedicated to Lord Shiva. **(Plate -5)** Built in white stone it is an excellent, specimen of Indian temple architecture. (Moreover replica of Somanath Temple in Gujarat). Today it is a protected monument under the management of Archaeological Survey of India.⁸



About 58 kms away is a tiny village renowned for its magnificent shrine detected to **Sayyed Fakhruddin at Galiyakot (Plate-6)** once the capital of the Parmar Kings. Thousand of devotees throng here during the Urs. The shrine is beautifully illuminated and decorated during the occasion. A visit to Jain temple close by cannot be missed either.



About 41 kms from Dungarpur is an erstwhile capital of Vagad this palace has some excellent temples of which one is made of white stone and is dedicated to Shiva and the other is an ancient Jain temple whose black wall has exquisitely carved images of the 24 Tirthankars.

9 kms away is also a famous temple dedicated to Lord Shiva. On this venue is held a colourful fair on the fifth day after holi festival. Gair Dance by the Bhils is the major highlight of the fair.

About 6 kms from the Dungarpur is a place called **Beneshwar** where a Shivalingam stands at the confluence of the Som Jakham and Mahi rivers. **(Plate-7)** Near by it is a Vishnu temple believed to be built at the spot where **Mavji**, an incarnation of Lord Krishna meditated. A spacious two storeyed structure with exquisitely carved pillars and gateways is the **Brahma Temple**. On the full moon day Magh Shukla Purnima (Jan.-Feb.) thousands of Bhils from Madhya Pradesh, Gujarat and Rajasthan gather at the confluence of the Mahi and Som rivers for a sacred dip. It is an occasion of worship. **(Plate -8)**

As regards travel information, the details of the spots of tourists attraction should be made available in audio visual cassettes or C.D. form and also on internet, if tourist's interests in coming to Rajasthan is to be enhanced.



Rajasthan's history and heritage is the main driving force for both domestic and foreign tourists to visit the state. The books and publications in both Hindi and English languages about Rajasthan, its people, its history, legends, culture, monuments, art & crafts etc. can have a major impact in enhancing tourism to the state.⁹

The other point to be looked into is the role of transportation in promotion of Rajasthan's tourism.¹⁰

Books, Booklets, published and sold on tourists counters directly targeting tourists which feature the interest of both the general reader and indirectly potential tourists. These books should cover Rajasthan cultural, heritage, monuments, fairs, folksongs, legends, paintings, music, art & crafts, food and cuisine.

Besides this detail travel information that is how to get there by Air, Train or by Road where to stay, the general information regarding the Place, Area, Climate, Best Season, Clothing and Languages Spoken. Tours, that is mode of sight seeing, addresses of travel agents, clubs, airways, guide of services, sports and entertainment, local transport, hotels to dine etc. are some specific areas to be dealt in details.¹¹

References:

1. www.rajasthantourism.gov.in
2. Radhey S. Joshi; Rajasthan Darshan, Bhilwara, 2007, p. 44.
3. Discover Rajasthan, Jaipur, 2006, p. 17.
4. Rajesh Vyas; Sanskritik Paryatan, (R.H.G.A.) Jaipur, 2009, p.59.
5. Rajasthan -Lesser known Destinations, Rajasthan Tourism, p.35.
6. Radhey S. Joshi; Rajasthan Darshan, Bhilwara, 2007, p. 45.
7. Discover Rajasthan, Jaipur, 2006, p. 35.
8. Rajasthan-Lesser known Destinations, Rajasthan Tourism, p.34.
9. Rakesh Hooja; History and the Growth of Tourism in Rajasthan, some talking points, History and Growth of Tourism edited by Dr. Ram Pandey, Jaipur, 2005, p.16.
10. Mrs. Pratibha; Role of Transportation in Promotion of Rajasthan Tourism, History and Growth of Tourism edited by Dr. Ram Pandey, Jaipur, 2005, p.19-23.
11. Rajesh K. Vyas ; Paryatan Udhbhav Avam Vikas, (R.H.G.A.) Jaipur, 2008, p. 121-139.



Rajveer Yadav
Research Scholar
Department of Political Science,
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

INDIA - SOUTH AFRICA ECONOMIC RELATIONS IN POST-APARTHEID ERA

India's relationship with South Africa under apartheid was acrimonious. India was the first country in the world to sever all its diplomatic links with South Africa, even at the cost of its exports which amounted to 5% of its total exports. Till early years of 1990s both countries were, to varying degrees, isolated from the world economy. South Africa was isolated from the world due to its apartheid policies, since it faced international economic sanctions from the western countries too, which were erstwhile supporters of the apartheid regime. These sanctions imposed out of international pressure halted the economic growth of the nation. Whereas, India was isolated from the globalisation process as it adhered to closed economy due to which India logged behind in the race of development. Further, the government policies were hostile to foreign investments as a lot of regulations were present in form of licensing requirements, etc. It became a necessity for both the countries to adapt itself to the changed world scenario, and accept the principles of globalisation in a democratic framework which favoured their respective economies. India supported the South African struggle against apartheid and with its abolition, it began to demonstrate its willingness to build a more cooperative relationship with the Nelson Mandela government. The foundation stone of Indo-South African relationship has been expressed beautifully in words of Mahatama Gandhi as "commerce between India and Africa will be of ideas and services, not of manufacturing goods against raw materials after the fashion of western exploiters." Both the countries instituted economic reforms and common experiences emanating from them have engendered greater cooperation in many areas.

Frequent visits by Dr. Mandela have strengthened economic links between Indian businesses and that of Blacks in South Africa. Dr. Mandela stated that one of the values of forming joint ventures will be to ensure not only a transfer of technology to Blacks in our country but also providing the necessary training and capital for Black businesses to be able to compete. With the resumption of diplomatic links, a

new era ushered into Indo-South Africa relations, the prospects of resumption of trade between India and South Africa brightened with the exchange of trade delegations. South Africa took a bold initiative by sending a delegation to India in April-May 1992. This delegation had prolonged discussions with its counterparts in India. India did not lag behind in its efforts to probe South African markets. The Punjab, Haryana and Delhi Chamber of Commerce and Industry (PHDCCI) made a detailed study of prospects of trade with South Africa. It observed that South Africa being a market of US \$ 18,000 million, offers a large opportunity for Indian exports.¹ In April-May 1993, a nineteen-member delegation of FICCI left for South Africa to pick up the threads of negotiations which had gone on between India and South Africa. The prospects of Indo-South African trade brightened considerably when FICCI signed a Cooperation Agreement for the promotion of bilateral business with the South African Chamber of Business at Johannesburg on May 5, 1993. The agreement provided for greater exchange of business information and delegations, promotion of joint ventures and investment opportunities and technology transfers.² It also provided for assistance to trade missions and individual businessmen visiting South Africa and India. For the first time since 1946, the ball was set in motion for the resumption of trade.

With the liberalization process gaining momentum and the opening up of its manufacturing and financial sectors to the globalization process, there is so much in South Africa's and India's trading pattern, as also in their differential and disparate growth archetype, that deserves a closer examination for a lasting economic partnership between the two major economics.³ It may also be underscored that the two countries occupy strategic position on the rim of the Indian Ocean, this position is of great importance in terms of economics as well.

After the end of Apartheid, Government of both the countries initiated the process of meeting of foreign ministers for the reinstatement of political, economic and cultural ties. The importance of these ministerial visits was recognized and finally materialized when the Indo-South Africa Joint Commission at the level of Foreign Ministers was set up in 1994 to identify the areas of mutual benefit. Various meetings have been held till now and have been proved to be of great significance. Economic relations were further discussed during South African ministerial visit in 1995 and knowledge for expertise in small scale industries was also shared. Various sectors have been identified for economic linkages viz. tourism, housing, health and pharmaceuticals, food processing, power generation, etc.

South Africa opened its High Commission in India in 1994 and Consulate General in Mumbai in 1995. The First South African High Commissioner to India was Mr. Jeery M. Matsila who arrived in India in May 1995. As a result of re-establishment of trade links with South Africa, immediately following the apartheid, dramatic increase in trade is witnessed. For Eg. India's export to South Africa from April to August 1993 increased by 80%. The data given below shows the considerable growth within a short span of two years:-

Growth in Bilateral Trade from 1993-94 to 1994-95

Year	India's Export to South Africa	India's Import from South Africa
1993-94	US \$ 26 million	US \$ 25 million
1994-95	US \$ 142 million	US \$ 141 million

India-South Africa Bilateral trade has witnessed consistent growth since 1994. This trade takes place in variety of goods and articles. Natural Resources of South Africa along with certain key technologies, not commercially available else, like coal-to petroleum or gas conversion, etc. and Indian expertise in IT, manufacturing sector, textiles has boosted this exchange process.⁴

BILATERAL TRADE

Though the ties with South Africa were reinstated in 1993-94, but a major breakthrough was provided by the Red Fort Declaration on Strategic Partnership. The already warm relationship between the countries got impetus from the Red Fort Declaration of 1997. It was based on the shared values of democracy, economic development with social justice and a just & equitable global order. Consequently, India and South Africa moved a step further by not only showing interest in trade commodities, but also spanning other avenues of cooperation such as human resource development, social empowerment, regional imbalances, etc. Indian government contributed its technological expertise by entering into cooperation in field of information as per the Memorandum of Understanding, which the two countries had entered in 1998.

During the period (2001-02), total bilateral trade grew by 29%. South African imports from India grew by 39.26% in 2002 valued at 2.94 billion, whereas South African exports to India in 2002 grew by 22.34% over 2001, valued at 4.03 billion. Similarly, Indian share in South African imports increased from 0.98% (2001) to 1.07% (2002), while Indian share in South African exports came down from 1.31% (2001) to 1.28% (2002).

MAJOR ITEMS OF BILATERAL TRADE

Major Indian exports to South Africa are : Rice; Cotton-including accessories, cotton yarn, fabrics, etc.; manufacture of metals; finished leather and leather goods; primary/semi-finished iron - steel; drugs, pharmaceuticals and fine chemicals; transport equipments; plastic and linoleum products; handicrafts and handmade carpets; electronic goods; sports goods; gems and jewellery; rubber products; spices, castor oil, tea; paper and wood products, etc.

Major South African exports to India are : Diamond, gold & silver; inorganic chemicals; iron and steel; metal ores and manufactures, metal scrap; cotton raw and waste; organic chemicals; fertilizers crude and manufactured; non-ferrous metals and crude minerals; pearls, precious and semi precious stones etc.⁵

A look at the trade figures doesn't show a much healthy context when considered in global trade perspective of both countries. At individual level, growth of trade between both countries might seem satisfactory, but in comparison to respective trade with other countries, the statistics are almost insignificant. South Africa is a rapidly growing economy, rich in natural resources and technology. It is not only an attractive market on its own but also a gateway to other countries in the Southern African region. Similarly, India which posed a GDP growth rate of 8% before the economic slowdown worldwide is also one of the fastest growing economies of world with world-class industries, services and technologies. Both together represent enormous complementarities and synergies which business enterprises in both the countries need to tap. Government of both the countries has initiated series of steps so as to ensure increased trading activity and cooperation. The potential of both economies could result in a greater production and enhanced cooperation will span other areas of economic activity. The sharing of technical & technological expertise and the experience of relevant fields could be harnessed to overcome the shortcomings which both nations face. For Eg. South Africa could share its mining and exploration expertise, whereas India could provide its information and communication skills, etc. One such step has been the organisation of various trade fairs, events etc., where the potential of both economies could be showcased. To enumerate a few, South Africa has had a presence at Agro-Tech 2006 (Agriculture), IMME 2006 (Mining and Machinery), IETF 2007 (Engineering and Technology) and Stonemart 2007 (Dimension Stone)⁶

With a purpose to promote South Africa at several levels primarily through media and business organisations, International Marketing Council of South Africa

was officially launched on 31 January, 2007 in Mumbai. It has its headquarters in Johannesburg and it provides interested investors and tourists with all the information they may require. This allows government and private sector representatives to exchange ideas and views freely leading to policies and strategic decisions with an integrated approach. It was established by the South African Government and is largely funded by the Government. However, it is beginning to receive increased private sector support and its board is heavily represented by the private sector.

Commercial interactions, visits of businessmen, both ways, and trade promotion measures including participation in trade fairs, etc. have been and continue to be intensive. Confederation of Indian Industry (CII), which had an office in Johannesburg till recently, organises 'Enterprise India' and 'Made in India' shows regularly.

Strategies to Strengthen Economic Relations

Sound Economic Relations between countries encompasses various fields of governance and economy. In order to provide dynamism to the economic relations, the cooperation between India and South Africa is not limited to trade only but support is also extended to many projects undertaken by South African government, Pan-African forums, etc. Various initiatives have been taken by both the governments to tap the skills and experiences of both countries. Extending the cooperation to ideas and services apart from trade and commerce has provided a sense of trust and confidence to foster the relations in such a way, so as to reap maximum benefits.

(1) NEPAD (New Partnership for Africa's Development):- NEPAD is a vision and strategic framework for Africa's renewal. The NEPAD strategic framework document arises from a mandate given to the five initiating Heads of State by the Organisation of African Unity (OAU) to develop an integrated socio-economic development framework for Africa. It is designed to address the current challenges the African continent is facing. Issues such as the escalating poverty levels, underdevelopment and continued marginalization of Africa needed a new radical intervention, spearheaded by African leaders, to develop a new vision that would guarantee Africa's Renewal. One of its objectives is to halt the marginalisation of Africa in the globalization process and enhance its full and beneficial integration into the global economy.

Government of India's vibrant 'Focus Africa' policy aims at providing a functional framework for sustained partnership between India and African countries per se, as well as with regional groupings in the continent. India intends to evolve stronger bonds by developing strong financial institutional linkages and a partnership

in trade and industry with Africa. India has strongly supported the objectives of NEPAD. India strives to raise the availability of credit to bilateral and regional institutions in Africa, and in this regard, Indian government has committed US\$ 200 million to be utilized through credit lines, grants, etc. Indian Government has also committed, through the Ministry of Commerce, promotional funds to implement the Focus Africa programme, to enhance the trade, commerce and investment related work in full measure. Under NEPAD, intra-regional economic projects, including infrastructure, are planned and in which Indian companies can play a role. Indian companies have begun the utilization of the funds with major projects in Angola, Senegal, Mali, etc. Both the CII and Exim Bank of India have played an important role in fulfillment of the objectives of starting a significant dialogue between financial institutions in Africa and India and for a better interaction of African financial institutions with Indian industry.

The Pan-African e-Network will also be funded under this programme. Further, talks over Satellite Network are going on between India and NEPAD. The proposed Indian network will primarily provide internet, tele-education, tele-medicine, video-conferencing and voice-over internet protocol services. It will also support e-governance projects, resource mapping, meteorological services as well as entertainment services. Such systems have considerable potential to deliver education and health care to rural and resource deficit areas with the advantages of offering large cost and time savings.

(2) SADC (Southern African Development Community):- SADC

(Formerly SADCC) was formed in 1992, with an aim to provide for both socio-economic cooperation and political and security cooperation. In 2000 the formation of the SADC Free Trade Area began with the participation of SACU countries (South Africa, Botswana, Lesotho, Namibia and Swaziland). Next to join were Mauritius, Zimbabwe and Madagascar. In 2008, Malawi, Mozambique, Tanzania, Zambia, etc. joined thereby bringing total number of SADC Free Trade Area members to 14. Aims of SADC are quite diversified. In some areas, mere coordination of national activities and policies is the aim of cooperation. In others, the member states aim for reaching to more forms of cooperation i.e. they aim to harmonise their trade and economic policies with a view to establish a common market with common regulatory institutions.

One significant challenge for SADC is that member states also participate in other regional economic cooperation forums and regional political and security

cooperation forums that may compete with or undermine SADC's aims. But, to overcome such challenge, on 22 October, 2008, SADC joined with Common Market for Eastern and Southern Africa (COMESA) and the East African Community (EAC) to form the African Free Trade Zone, consisting of 26 countries with a GDP of an estimated \$ 624 bn. It is hoped that the African Free Trade Zone agreement would ease access to markets within the zone and end problems arising from the fact that several of the member countries belong to multiple groups. It is believed that the African Free Trade Zone agreement will help intra-regional trade and boost growth.

The evolution of regional organisations in Africa is a corollary to forces of globalisation and a structured response to the problem of market fragmentation. The solution to many challenges that confront Africa today viz. poverty, food security, HIV/AIDS, illiteracy and political conflicts, lies in forging potent regional institutions. It is in this context that there is growing relevance of regional structures such as SADC.

India has envisaged a partnership with African States, so as to get access to its markets as well as share its skill and expertise with them. In the true spirit of South-South cooperation, a symbiotic relationship has been nurtured in the economic development sector. With SADC, India could get access to many Southern as well as Eastern African markets and open its market to them as well. With the formation of African Free Trade Zone, approximately half of the African continent has been converted into a common market. In this era of globalisation both India and South Africa realised the potential of trade and sharing of skills and expertise with each other and with other countries too. Keeping in view such a vision, a Memorandum of Understanding on Economic Cooperation was signed between India and SADC as far back as in October 1997. It is a comprehensive agreement that envisages cooperation in diverse sectors such as agriculture, water resources management, human resource development, promotion of SMEs, communication, commerce, banking, trade and investment. The Memorandum is activated through identification of relevant organisations and concrete programmes. These organisations will help to achieve the aims through a spread in their network. In this direction, it is further required to know the areas in which SADC is competent enough to deal with other governments so that specific programmes and policies suitable to the needs of SADC could be evolved.

There is a great deal of complementarities between SADC countries, which are abundant in mineral wealth and raw materials, and India which has the necessary

pool of technology, experience and entrepreneurs. In order to exploit the full potential of these complementarities, SADC should lead in providing appropriate institutional mechanisms. With such a strategy, the needs and objectives of the member states and India could be realised to the optimum. The problems of drought, food security, etc. could be addressed satisfactorily with the assistance of countries like India, which are self-reliant in food production and technology. The expertise of Indian agricultural sector could also be shared with SADC countries.

Similarly, problem of HIV/AIDS has been a major focus of attention of SADC where millions of people are infected with this virus. There are other epidemic diseases such as malaria, tuberculosis for which Indian drugs cost just a fraction of that of other multinational companies. Another area of focus is SMEs, where India could share its experiences to promote SMEs in the region.

India's excellence in the field of information technology is seen in the context of its collaboration with Mauritius, a member of SADC, in setting up a cyber city. Even collaboration in setting up of IT training facilities at regional level with SADC could be achieved. SADC could coordinate with NEPAD secretariat so that common projects that are of relevance to SADC and NEPAD could be identified for cooperation.

India and SADC are formalising the setting up of the India-SADC forum which will provide a mechanism for regular dialogue on issues of common interest. With such coordination, global issues of common interest can be addressed such as stand on agriculture issues in WTO.

(3) IMC (International Marketing Council):- The International Marketing Council is a public - private partnership mandated to position South Africa as one of the highly considered markets in terms of world trade, investment and tourism by 2010. The IMC promotes South Africa at several levels, but primarily through the media and business organisations. It promotes South Africa's international image as a prime destination for trade, tourism and investment in the context of the New Partnership for Africa's Development and the regional grouping, SADC. Its main objective is the marketing of South Africa through the 'Brand South Africa' campaign. In keeping with such commitments, IMC has opened its third office in Mumbai, other being at London and Washington. All information about South Africa is at the click of mouse, which is helping the entrepreneurs of both countries to expand their businesses. The opening of office in Mumbai, even when there is no such office in China or Brazil which are one of main partners of South Africa, shows the level of

importance attached to India. Both the countries are actively engaged in marketing themselves as a promising destination for business and investment.

(4) ITEC (Indian Technical and Economic Cooperation):- ITEC (instituted in 1964) is a bilateral programme of assistance of the Government of India. Prime Minister Jawaharlal Nehru was the main architect of the ITEC programme. It is the flagship programme of the Indian Government's technical cooperation effort for innovative forms of technical cooperation. It is about cooperation and partnership for mutual benefit. It is response-oriented and addresses the needs of developing countries. It is an integral part of India's South-South cooperation effort. ITEC programme has many objectives such as training (civil and defence) in India of nominees from ITEC countries; deputation of Indian experts abroad; aid for disaster relief, etc. In context of South Africa, ITEC has been a useful medium of promoting cooperation in development of human resources. ITEC mechanism is used for project support, feasibility studies and training, particularly SMEs. It has been recognised as useful tool for capacity building, empowerment and upgrading of skills. Information Technology is one of the most sought after courses. Various civil training courses in India allocate slots to South African people like other ITEC partner countries.

(5) In order to encourage trade and investment ventures, EXIM Bank has placed US\$10 million credit line with ABSA Bank for Indian exports. Furthermore, Market Access Initiative (MAI) is used for marketing surveys etc. 'Focus Africa' facilitates South African's visit to Indian trade events and other cooperation projects. Another forum to promote economic cooperation is India-South Africa CEO's forum. It enables CEO's of both countries to discuss issues of mutual interest.

(6) South African economy is marred by two grave problems i.e. unemployment and poverty. In order to eradicate these problems, the Government has made a commitment to have both of them eradicated by 2014. From it, originated AsgiSA. Accomplishing this depends on 6% growth per year by 2010. By 2004, economic growth was average 3% per annum of the first 10 years of post-apartheid economy. AsgiSA created a new system of priorities and new set of mechanisms to enforce decisions, lead by a team under the Deputy President. It is a national initiative supported by key groups in the economy- business, labour, state owned enterprises (SOEs), government economic agencies, entrepreneurs and all branches of government. A Joint Initiative on Priority Skills Acquisition (JIPSA) was established in March 2006 to address scarce and critical skills needed to meet AsgiSA's objectives.

India is cooperating South Africa in terms of skills acquisition, expansion of training programmes in fields of engineering, vocational training, etc. Indian expertise is also helpful in the Small and Medium Enterprise development projects and Black Economic Empowerment schemes as well.

TRADE & INVESTMENT

In an era of globalisation and open market policies, no nation could depend entirely on its own capital, and win the race of competitive advantage over other nations. Foreign Direct Investment (FDI) is required to boost the economic growth and utilise the resources to the optimum.⁷⁷ Bilateral trade between India and South Africa is also undergoing such process. South Africa requires foreign investment so as to exploit its natural resources and lead the country to the path of prosperity. India has emerged as an important source of FDI for South Africa. Indian investments into South Africa continue to grow in quantity as well as form, whereas investment flow into India from South Africa has been slow but it is gaining pace.

There are many investment destinations in South Africa such as Nelson Mandela Bay, Richards Bay, etc. where attractive offers are available. Some of the major players are:

- * TATA Automobiles and Information Technology; Headquarters of TATA for African operations known as TATA African Holdings is in South Africa.
- * UB group - beer and eco-tourism.
- * Pharmaceutical companies like Ranbaxy, Dr. Reddy's laboratories, Cipla, Cadila, Medicom -health information system.
- * Praj Industries (chemicals)
- * Elecom (Electrical Equipments)
- * Automobiles companies like TATA, Mahindra & Mahindra, Eicher (tractors); Ashok Leyland (Trucks); Kirloskar (diesel motors and pumps); etc.
- * Media groups like Zee TV, Sony, B4U, etc. have got a presence too.

The Foreign Direct Investment in South Africa is supported by the presence of Indian financial institutions and chambers, viz. State Bank of India; National Small Industries Corporation (NSIC); EXIM Bank; Confederation of Indian Industry (CII); Bank of Baroda; ICICI Bank; etc. Confederation of Indian Industry (CII) has opened its office in Johannesburg. It facilitates the trade and investment scenario in South Africa.⁸

References:

1. PHDCCI, South Africa : A Country profile, New Delhi, 1992, p. 62-63
2. Ibid, p. 18
3. Arvind Bhandari, South Africa and India : The Specifics, Prospect South, Johannesburg, p. 44-45
4. Year Book South Africa, 1999-2000, p. 121-122
5. Partnership 2005, South Africa & India, South African High Commission, New Delhi, p. 21
6. Partnership 2005, South Africa & India, South African High Commission, New Delhi, p. 32
7. Anne Krueger, "Trade Policies and Developing Nations", The Brookings Institute, 1995, p.XIII
8. Partnership 2005, South Africa & India, South African High Commission, New Delhi, p.22



Kamal Singh
Senior UGC Research Fellow
Department of Public Administration
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

“RAJIV GANDHI GRAMEEN VIDYUTIKARAN : A POLICY STUDY”

Introduction:-

In developing Countries infrastructural sector is very weak and it is affecting the development of the country Electricity is the main sources of development as most of the industrial and agricultural development is to depend upon the electricity. Although India is the world's seventh largest energy producer and three percent of world annual energy is produced by India, It is also the world's fifth largest energy consumer, accounting for about 3.45% of the world's total annual energy consumption in 2004. Since independence the country has seen significant expansion in the total energy use in the country with a shift from non-commercial to commercial sources. The share of commercial energy in total primary energy consumption rose from 59.7% in 1980-81 to 72.6% in 2006-07. It must be noted however, that India's per capita energy consumption is one of the lowest in the world. India consumed 455. Kilogram of oil equivalent (Kgoe) per person of primary energy in 2004, which is around 26% of world average of 1750 kgoe in the year. As compared to this, per capita energy consumption in china and Brazil was 1197 kgoe and 1323 kgoe, respectively.

In spite of this India's villages are in deep dark and most of the villages do not get electricity for more than 2 to 4 hour and it affects agriculture production and village, cottage industries. Therefore the government has focused its attention over village electrification to provide electricity to the poor villagers and to provide employment in the villages beside this, it was aimed to generate village migration to urban areas. This rural electrification planning has become a point of study in order to find out its impact upon the village economy. In this paper we have studied the Rajiv Gandhi Grameen Vidyutikaran Yojana in this paper. The paper is to emphasize upon the village electrification and its impact in the rural families. This paper is to highlight the importance of village electrification.

RAJVI GANDHI GRAMEEN VIDYUTIKARAN YOJANA (RGGVY)

The GoI launched RGGVY in April 2005 to provide electricity access to all rural households and extend free connections to all BPL households (estimated at 2.3 crore) by 2009. RGGVY subsidizes the capital cost by 90% through GOI grants. The approved capital cost estimate for RGGVYT is Rs 16000 crore with a subsidy component of Rs 14750 crore. The physical targets included electrification of 125000 un-electrified villages by creating rural electricity distribution backbone and village electrification infrastructure and last mile service connectivity to 10% households in the village at a rate of Rs 6.50 lakh per village. The target to give free connections to 2.34 crore BPL households was also include in the above estimates. Further, the estimated covered intensification works in already electrified villages at a rate of Rs one lakh per village for 4.62 lakh villages.

While approval was accorded to Phase –I of the scheme of Rural Electricity Infrastructure and Household Electrification, which was later renamed as RGGVY by CCEA in December 2004, it was decided that implementation of Phase-I of the scheme in the Tenth Plan, namely, 2005-06 and 2006-07. It was also decided that prior commitment of the States will be obtained, before grant of subsidy, for (i) deployment of franchisees for the management of rural distribution in projects financed under the scheme and (ii) the provision of the requisite revenue subsidies to the State utilities by the State Government as required under the Electricity Act 2003. CCEA also decided that the scheme is to be subject to concurrent evaluation and a view on modifications required for implementation during the Eleventh Plan may be taken after a comprehensive review towards the end of the Tenth Plan.

The target set by the MoP was electrification of 10000 villages in 2005-06 and the achievement reported was 9819 villages during the same period. In addition, intensification works were carried out in 350 already electrified villages. Against the total subsidy amount of Rs 1100 crore provided for 2005-06, an amount of Rs 1031.067 crore was released to the States. The total amount of funds released for RGGVY in 2005-06 was Rs 1616.24 crore which includes loans provided by Rural Electrification Corporation Ltd (REC) to meet the capital cost over and above the subsidy amount released for the scheme. The MoP had also reported that a total of 34003 households (including 16815 BPL households) were provided electricity access. The implementation of RGGVY in 2005-06 was mainly in the States of Bihar, Karnataka, Rajasthan, Uttar Pradesh, Uttarakhand, and West Bengal. However, the achievement of villages electrified in accordance with the revised definition of village electrification (requiring a mandatory coverage of at least 10% of the house

holds to be electrified in a village declared as electrified) is yet to be verified and reported by the MoP.

The MoP set a target to electrify 4000 un-electrified villages under RGGVY in 2006-07. An amount of Rs 3000 crore was provided in the budget of the MoP to meet the subsidy requirements of RGGVY during the year. As on 31st March 2007, the MoP had reported a cumulative achievement of electrification of 50402 villages during 2005-06 and 2006-07, which includes 11177 electrified villages where intensive electrification had been carried out. In other words, the number of un-electrified villages electrified during 2006-07 is limited to 27806 only, that is 72.64% of the set target of 40000 villages. The intensification works had been carried out in 11177 villages. In respect of electricity access provided to households, the cumulative achievement was 731527 households (including 672588 BPL households). During 2006-07, a total of 697524 households (including 655773 BPL households) were provided with electricity access. The total funds released for RGGVY during the Tenth Plan were Rs 5475.15 crore which includes 10% of the loan component over and above the Central subsidy provided at 90%.

An amount of Rs 3983 crore has been provided in the MoP budget for 2007-08 to meet capital subsidy under RGGVY for the Eleventh Plan has been approved by the Cabinet at the cost of Rs 28000 crore. A GoM has been appointed to look into enhancing the effectiveness of the scheme implementation.

The Rural Electrification component under the Bharat Nirman Programme envisaged electrification of all 125000 un-electrified villages and 2.3 crore households (out of total 7.8 crore un-electrified households in the country) by 2009. Thus the Rural Electrification component under Bharat Nirman Programme is the sub-set of RGGVY. The time frame for these two programmes coincides.

Policy Issues

The following are the policy issues :

- * Technology advancements and R&D have so far not been properly addressed. Major organizations such as NTPC, NHPC, Power Grid Corporation of India Ltd (POWERGRID) on the generation side and Bharat Heavy Electricals Ltd (BHEL), Asea Brown Boeri Ltd (ABB), and Sieman on the manufacturing side must enhance substantially their budget allocations for R&D activities and the manufacturing organizations should consider 3%-4% to be provided for technology development.

- * Ultra Super Critical boiler technology, IGCC technology, and oxy-fuel technology are well researched abroad but have to be developed for Indian coal. NTPC, the major Indian Central Sector utility should have its R&D centre strengthened to expedite the work started during the Tenth Plan on IGCC. This project may be given top priority.
- * There is a need to work with specialized S&T laboratories under CSIR and other space and nuclear establishments to develop material technology for advanced boilers, fuel cells, solar power, battery, and super conduction material application in power sector.
- * The project of national interest have to be taken upon collaborative research route. In future capital fund support for R&D projects.
- * R&D import should be exempted from custom duty to encourage indigenous R&D.
- * A High Power Committee in R&D should monitor R&D projects and regulate funds. This will avoid duplication and ensure competitive R&D

LEGISLATIVE AND POLICY ISSUES

The Electricity Act 2003 has put in place a liberal and progressive framework for the development of electricity sector in the country. Its main objectives are promoting competition, protection interest of consumers, supply of electricity to all areas, rationalization of electricity tariff, and ensuring transparent policies regarding subsidies.

The National Electricity Policy and the Tariff Policy have been notified under the provisions of the Act. The National Electricity Policy aims at providing access to electricity to all in the next five years by overcoming energy and peaking shortages and having adequate spinning reserves by the year 2012 for fully meeting the demand and supply of reliable and quality power of specific standards in an efficient manner and at reasonable rates. The Tariff Policy aims at ensuring financial viability of the sector and promoting transparency, consistency, and predictability in regulatory approaches. It also aims at promoting competition and efficiency in operation and meeting quality of supply. Further, the Integrated Energy Policy aimed at promoting overall development of the sector has been announced. The Electricity Tariff Policy based bidding is mandatory for all plants from January 2006 excepting for public sector plants which are required to do so by 2011.

The legal provisions of the Electricity Act 2003, National Electricity Policy, Tariff Policy, and the Integrated Energy Policy provide an appropriate legislative

and policy framework for the development of the power sector. The provisions of these policies must be implemented within the stipulated time in order to make power available at affordable cost to all by 2012. The major issues to be addressed in this regard during the Eleventh Plan are as follows.

Issues Related to Capacity Building

The issues related to capacity building are the following :

- * There is a need to streamline and standardize the procedure to shorten the time cycle for obtaining environmental/forest clearance for power projects.
- * The captive coal blocks development should be done in advance to match with commissioning schedule of power projects.
- * The number of agencies having authorization to undertake exploration of coal blocks also needs to be increased.
- * State governments should take suitable policy measures to make captive generation more attractive.
- * To encourage R&M of old power plants, CERC should set up benchmarks for capital expenditure on R&M.

Conclusion:-

The study of Rajiv Gandhi Grameen vidyutikaran yojana is to bring out the fact that India is lagging behind to other countries and is facing acute problem of electricity and the problem is not seemed to be resolved in near future, due to shortage of coal, transportation, water, wind technology and man power. More over the problem of electricity is to become critical due to theft, wastage or misuse. Electricity in the Twelfth five year plan is in the top priority but politics of electricity, such as free supply of electricity to villages or supply of electricity to vote bank, or electricity to industrial houses. In such situation it is doubtful whether the Rajive Gandhi Grameen electricity supply scheme would be useful. The government should encourage the private sector to participate in the scheme and to invest money in the electricity sector and take the distribution of electricity in its own hand. The solution of the problem lies in privatization. Government should take help of world bank, and other Industrial nations in. The village electrification the government should ensure the co-operation of the rich countries to develop electricity in the Indian villages. Lastly the government should publish a white paper on the status of village electrifications.

Dr. Ritu Johri
Head Deptt of Drg. & Ptg.
J.N. Vyas University
Jodhpur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

IDEA AND IMAGE OF LOTUS

The symbol of lotus has always been central to Hindu and Buddhist Mythology . In INDIA it has always been looked upon as the most beautiful flowers. Its bursting above the water made it a symbol for the birth of gods and the world . In the Rig Veda the God Agni is said to have been born from a Lotus . In The Brahmins and Aranyakas, the Lotus was the seat of the creator of Prajapati . The Lotus was particularly associated with the Goddess Sri Lakshmi , described in a late portion of RV as ,Lotus Born and holding a Lotus in her hand.¹

According to Coomaraswamy ..she and the Lotus represented to the earth , the waters (of life) and all the potential and creative energy latent in the waters : ‘ that wherein / whereon there is or can be manifestation.’²

The Lotus is symbol of life . While life and constituents of life originate from the source of heat, for the life to take birth and to be sustained it has to distance itself away just right enough , from the source of life . As we know that there is no life on the sun but the sun is the source of all planets and earth . Only earth ,away from the sun and at cooler temperatures than the sun , is able to sustain life and bear life . Scientifically the life giving spermatozoa in the mammals of the animal kingdom are placed in a scrotal sack just outside the body so that they are maintained at the right temperature away from the heat of the body .,to keep their life generating potential sustained.

This design in nature is truly a marvel. -³

Similarly in the Hiranyagarbha too, in the fight between Indra and Vrtra and the consequent explosion of the brahmand Visfotak (big –bang),Brahma forth life in this universe . The fact that life is not destroyed by the very fierceness in the process of creation is symbolically depicted in the form of

a Lotus growing adjusting its stalk and bending away to congenial conditions for life to sprout. Brahma himself, comes into being, only at the moment of the cosmic egg breaking open.

The ancient Indians have scientifically visualized the overall process of creation and very first form of NARAYAN. Etymologically, -naraha and ayana means waters and one who is resting, one who is passive and not doing anything. This concept of big bang is less than 100 years old in the modern scientific world, the vedic rishis not only seem to have divined this concept of Hiranyagarbha, but have explained its process of breaking open. Dr. Archana Sharma, A senior physicist at CERN, Geneva, Switzerland has described that the last 100 years we scientists have been conducting experiments....the big bang is the key that unlocked the secrets of universe.

Finding of science today on this creation of universe is Bosson Higgs, Particle the analysis shows that it must be the appearance and presence of this god particle which must have triggered the free floating massless particle in the cosmic soup to start acquiring mass and start interacting with one another to finally form the matter in the entire universe.... All our efforts to simulate conditions of the big bang, at the large Hadron Collider, though in a very miniscule scale, is with the hope that we can recreate such God particles just as we believe they should have appeared soon after the big bang. She sees a distinct similarity between PANCHIKARANAM PROCESS and the latest developments in physics.-All the constitutional particles were not bound by any force and were moving freely. The cosmic water is akin to a cosmic soup being discussed by modern cosmologists, which in description and characteristics seems similar to the vedic description of Apah, the cosmic waters, in the hiranyagarbha which in Puranic legends has also been expressed as KSHEER Sagar, the milky ocean, in which Narayan is at rest.-⁴

Have a look about Padmanabha:-

Padmanabha : - The dormant lying state of Narayan transformed and known itself to the Padmanabha state when the creation is to take place. Padam means Lotus and Nabha relating to the navel. Narayan is always depicted in a reclining form on the bed of a 5 hooded coiled snake called Adi Sesha. The 5 heads denote the 5 primordial state of matter or panchmahabhoot.

Padmanabha, the one who has a lotus emerging from his navel which is the energy center. Seated on this lotus is Brahma. The etymological root of the

word Brahma Brah means to expand or grow. Why is Brahma shown as sitting on a lotus flower and emanating from Padamnabha to create this prapanch or universe? What is the symbolic significance of lotus flower here? Lotus has got a long , flexible ,winding stem which supports the flower to bloom just on the surface of water Whether the water rises up or goes down in height, the stem adjusts itself in such a way that the flower does not drown itself in to the water and hold itself just above the water level so that the lotus bud can receive the energy from the sun and water. ⁵

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्
यदन्तस्तदन्वे टव्यं, तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ।।

Ch : Up VIII. 1.1)

Then, in this small lotus-like dwelling that is within the city of Brahman, there is a small space. That which exists in the space is to be known. That indeed has to be acquired into for realization.-⁶

(Tr. Gambhirananda)

LOTUS : THE MOUTH OF THE WOMB OF THE UNIVERSE

When the divine lip substance is about to put forth the universe, the cosmic waters grow a thousand-petaled lotus of pure gold, radiant as the sun. This is the door or gate, the opening or mouth of the womb of the universe. It is the first product of the creative principle, gold in taken of its incorruptible nature. It opens to give birth first to the demiurage creater Brahma. From its pericarp them issue the hosts of the created world.

According to the Hindu conception, the waters are female. They are the material, procreative aspect of the Absolute, and the cosmic lotus is their generative organ. The cosmic lotus is called ‘‘The highest form or aspect of Earth.’’ also ‘‘The Goddess Moisture’’, ‘‘The Goddess Earth. It is personified as the Mother Goddess through whom the absolute moves into creation.-⁷

LOTUS : TRANSCENDENCE OF THE PHYSICAL WORLD

Sarasvati is also typically shown seated in a lotus. Like the swan the lotus seat of the goddess suggests her transcendence of the physical words she floats above the muddy unperfections of the physical world, unsullied pure, beautiful. Although rooted in the mud (like man rooted in the physical world), the lotus perfects itself in a blossom that has transcended the mud. Sarasvati inspires people to live in such a way that they may transcend their physical limitations through the on-going creation of culture.-⁸

LOTUS : YANTRA**The Circle and the Lotus**

The lotus is the tantric flower par excellence and most yantras include lotus petals displayed around a circumference.

The seed (bindu) and the flower together reflect the never-ending cyclical process of seed to flower and flower to seed. The flower also represents the yoni seen as the incarnation of the organizing cosmic principle, Female creativity, in short, the source of all form. The lotus an equiatic flower, is a link to water, another female symbol.

A yantra placed inside a circle (instead of a square) is called a mandala. And a rotating circle forms a sphere.⁹

The Sanskrit words for ‘lotus’, Kamala and Padma, when provided with the long a ofa fencimine ending, denote the goddess who dwells in the lotus : Kamala Padma. Identical with Sri Laksmi, the wife of Vishnu, who is the creator and maintainer of the world, she is luck, prosperity, and good fortune incarnate.

The earliest literary document dealing with this goddess is a hymn, the so-called Sri-Sukta, in a small supplement of late verses appended to the ancient corp of the Rig-veda, wherein she is called ‘‘the one possessed of the lotus’’ (Padmini the one standing on the lotus’’ Padmesthita the lotus colored (Padmavarna). ‘‘The lotus born’’ (Padmasambhava).-¹⁰

LOTUS : GODDESS WITH LOTUS SYMBOL

In the apocryphal hymn appended to the Rig Veda the Lotus Goddess is already called by her two classic names, Shri and Lakshmi, and is associated in every possible way with the lotus symbol.

As the tutelary deity of the rice growing agriculture of native India, she is called. ‘‘The one possessing Dund (Krisini). Her two sons are Mud (Kardama) and Moisture (Ciklita).

The word ‘‘garlands of silver and gold. ‘‘She bestows health, long life prosperity, offspring and fame.

She is ‘‘made of gold (hiranyamayi ‘‘of golden hue’’ (Hiranyavarna).

This goddess padma or Lotus, stands above or is seated upon a lotus.

The mother was removed from her lotus and Brahma seated in her stead she herself relegated - as in the shrine of Vishnu Ananta shayin.-¹¹

LOTUS IN HAND : PADAMPANI / PRAJNA-PARMITA

A characteristic attitude of the goddess, that known as ‘lotus in hand, (Padmahasta, Padmapani), is taken over in the iconography of Mahayana Buddhism by the universal savior Padampani (Lotus in hand)

Thus our goddess Lotus the ageless Mother Earth, the Magna Mater of Antiquity, procreative energy and fortune on the physical plan, now transfigured under the aspect of prajna-Paramita.

The wisdom (Prajna) that leads to Nirvana is the highest virtue (Paramita) it is very essence of the Buddhas, the wholly enlightened ones, and the Buddha-in-the-making the Bodhisattva, must bring it to perfection.

Under the influence of mature Buddhism and late Hindu conceptions, the maternal goddess of earthly gods and happiness, of fertility and earthbound life, the wife consort and embodied energy of the cosmic sleeper-Vishnu, dreamer of the world has become here the highest representative of world. Transcending wakefulness, the most spiritual feminine symbol in all the iconographies of the East.

Prajna-Paramita is ‘‘The culmination of the virtue (paramita) of Enlightening transcendental wisdom (Prajna). Or, according to another etymological explanation sanctioned by the sacred commentaries, she is Enlightening wisdom (prajna) now gone to and abiding upon (ita) the other shore (para).’’ That other shore, or Farther Bank, is the realm of ultimate truth and transcendental reality in contradistinction to this shore-the bank on which we are standing, moving and talking, fettered by desire, subject to suffering steeped in ignorance - the realm of unenlightened beings.-¹²

Thus our goddess lotus, the ageless Mother-Earth, the Magna Mater of Antiquity, procreative energy and fortune on the physical plane, now transfigured under the aspect of prajna-parmita, has become the queen of the spiritual kingdom attained through enlightenment (bodhi), representing the extinction (nirvana) of both individualized consciousness and the cosmic manifold of biological, human, and godly being.

Prajna Paramita is the very essence of the Buddhas and of such ‘‘great Bodhisattva as Padampani - Avalokiteshvara, who, out of compassion for the world, postpone their own extinction in order to rescue countless beings from the round of rebirth. On the one hand, she represents the termination of delight in earthly or even celestial existence the extinction of every craving for individual duration, on the other hand she is the adamant, indestructible secret nature of all and everything itself devoid of all limiting, differentiating characteristic.

Aspect of lotus symbolic meaning is, indeed, that the enlightened person, like the lotus standing above the water, has overcome the world (of senses). While arising from the mud of worldly defilements, he grows beyond them and stands above the world of non-attachment.¹³

According to Buddhism of the medieval Tantric period, Adi-Buddha or Lokeshvara occupies much the same position as the Highest Being in Hinduism, just as the avatars go forth from Vishnu. And just as Lakshmi is the consort of the Hindu God, so is Prajna-Parmita the female aspect of the universal Buddha. As the active energy (Sakti) of the supreme wisdom that guides and enlightens, she is not only the consort of the Adi Buddha but the animating virtue of all redeemers.

The lotus symbol, which originally gave birth to beings and existences in unending succession, now carries the powerful wisdom of Nirvana.

THE LOTUS : ALEKHAN / DESIGN/ DECORATION

When continuity, as of a wave, is suggested in lotus form, its rhizome carries it. When origin is to be expressed, its bulbous root shape is used from which other shapes stem in turn. When 'total manifestation' is to be shown the open lotus flower conveys it in the fullness of its circular perimeter.

A plastic quality results that is as though carried by the living breath with which the image is filled; conducted by the smooth channels of **LOTUS AND ITS STEM, LEAVES WITH SOME BIRDS, SWAN, ELEPHANTS, YAKSHAS etc.** These smooth channels have a pristine glow and a continuity of outline as though what they hold were an equivalent of the breath of God. A number of examples found in Ajanta caves as beautiful and graceful as solid in feelings.

Domes of Architecture are often decorated with lotus designs and their circular plans resemble the circle of an open Lotus Flower. The central axis is symbolized, especially in early art of the centuries B.C., by the post, pillar or column with a lotus capital, or with lotuses on its faces, implies a central axis rising from the absolute depth of the generative waters in which the actual lotus roots lie hidden.

To Sum up :

As the goddess Lotus is characterized by the vegetable symbol beneath her and carries at her left the lotus flower. So Prajna-Parmita is invariably characterized by the Lotus seat, and the lotus as her left supporting the manuscript. As Lakshmi is Vishnu's consort representing his creative energy. So Prajna Paramita is the female consort of the transcendent universal Buddha and represents his nature, the nature

of eternal, blissful quietude in enlightenment limitation and individualization being extinguished. Lakshmi is the universal mother of life in her benevolent life-bestowing life increasing aspect, similarly, prajna-0paramita sends forth the rays of enlightening wisdom that give release from the relentless deadly round of rebirth - she sends forth transcendental life and reality, for she is its embodiment and source.

The root of the conception of the temple is again vedic cosmogony which begins from water the creative and fertile element. This is shown by the lotus petals surrounding the lower plinth (pintha or vedibandha) giving the impression that the whole structure is supported on a lotus springing from the primordial waters.

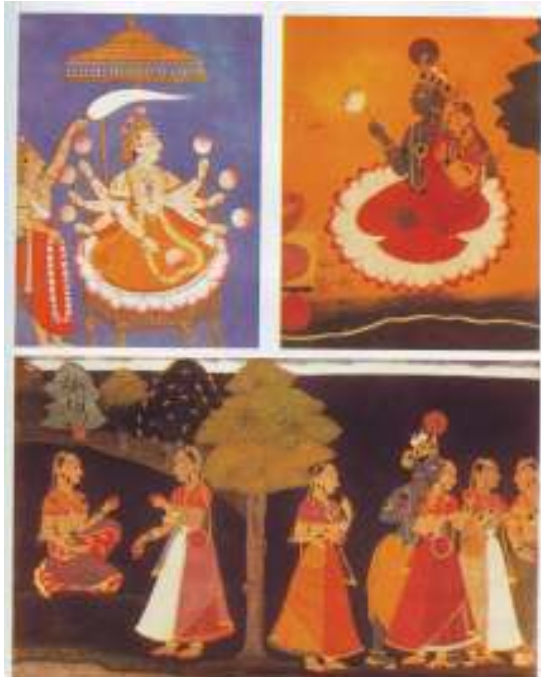
Some must say that the form of lotus is never lost in art, because one may say that according to ancient texts as we have seen lotus was forth in very beginning of creation, so it has the god partical in this form. Its my analysis, its possible and this may open the ways to research in art field and science field too.

I have collected some paintings which shows the lotus shapes to express artists creativity and the result is that they have successfully achieved their goal of aesthetic expression. (see plate 1 to 6)

Reference:

1. Karel Werner , Symbols in Art and Religion, Motilal Banarsidass, New Delhi , p.73
2. Anand Coomaraswamy, Elements Of Buddhist Iconography ,Cambridge, reprint Delhi , p.22
3. D. K. Hari and D k Hema Hari ,Creation ,Srishti Vignana publication- bharat gyan series , Sri Sri PublicationBanglore , p. 31
4. D. K. Hari and D k Hema Hari ,Creation ,Srishti Vignana publication- bharat gyan series , Sri Sri PublicationBanglore , p. 45
5. D. K. Hari and D k Hema Hari ,Creation , Srishti Vignana publication- bharat gyan series , Sri Sri PublicationBanglore , p. 24
6. tr. Gambhiranand, Chandogya Upnishad, KALA TATTVA KOSE, IGNSA, New Delhi
7. Henrich Zimmer , Myths and Symbols in Indian Art and Civilization, pub. Bpllingen Paperback Printing , 1972 , page no 90
8. David Kinsley , Hindu Goddesses ,Pub. Motilal Banarsidas, New Delhi ,1987 p.62
9. Andre Van Lysebeth , Tantra , The Cult of Feminine , pub., Motilal Banarsidass , New Delhi, P . 184
10. Zimmer , The Art of India, p.166
11. Henrich Zimmer, Myths and Symbols in Indian Art and Civilization, pub. Bpllingen Paperback Printing , 1972 , page no 91
12. Karel Werner , Symbols in Art and Religion, Motilal Banarsidass, New Delhi , , p.75
13. Henrich Zimmer , Myths and Symbols in Indian Art and Civilization , pub . Bpllingen Paperback Printing , 1972 , page no 98
14. Henrich Zimmer, Myths and Symbols in Indian Art and Civilization , pub . Bpllingen Paperback Printing , 1972 , page no 99





(Plate - 1)



(Plate - 2)



(Plate - 3)



(Plate - 4)



(Plate - 5)



(Plate - 6)

Mahendra Singh Surela
Research Scholar
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

DOLL MUSEUM- A UNIQUE COLLECTION

Million & millions of people visit museums every year in countries through out the world and the number of museums is increasing day by day . Their popularity is assured. Museums are the treasure houses of the human race. They store the memories of the world's people, their culture , dreams and hope.

According to ICOM definition, Museum is a non profit making permanent institution in the service of society and its development open to the public which acquires conserves, researches and exhibits, for the purposes of study education and enjoyment material evidence of man his environment.

DOLL MUSEUM-AN INTRODUCTION:

The Bhagwani Bai Sekhsaria guddia ghar is a doll museum which was inaugurated on 7th April 1779 which is administered by department of archaeology and museums , Government of Rajasthan . Located at deaf & dumb school , it is located at heart of Jaipur.

Collection:



The Museum has a beautiful collection of Doll from many countries like China, Nepal, Burma, USA, Mexico, Brazil, Hungary, Denmark, Germany, Poland, Ghana,

Uganda, Egypt, Israel, Jordan, Syria, Lebanon, Afghanistan, Netherland, Malaysia, Indonesia, Bulgaria, Russia, Belgium, Ireland, Spain, Norway, Sweden, England and many others.

Doll museum also has beautiful collection of Indian costumes related to the different states of India for e.g Punjab, WestBengal, Gujarat, Maharashtra etc.,. The traditional dresses of Rajasthan are displayed in various different sections .Dolls are displayed in traditional dresses, weddingdresses, dummyhorse, snakecharmer, fisher woman etc. of various parts of India like Nagaland, Tamilnadu, Kashmir, Assam and many tribal regions of India.

Documentation:

The museums has no records, which can show information about dolls as from whom and when these all dolls were collected . Though dolls themselves are more than enough to give an account of themselves and the region to which they belong.

Display Techniques:

In this museum the general technique is used for the display. The pedestal form of the stand use may showcase new techniques used for the display in the museum. The colour texture composition, scale, etc. are in proper manner. The florescent tube lighting system for the showcase makes the museum just more adorable.

This display technique has following advantages over other:

1. Display can reach a large number of different people at one time they thus tend to be very cost effective.
2. Display contains real objects . Visitors respond to the real thing with a special respect that they do not give to the printed word, photographs or to reproductions.
3. Visitors can use display at their own level of interest and speed.

Conservation:

The models are in good condition but need periodical maintenance, but maintenance of a doll museum is completely different from multipurpose museum. The museum has paretic paltry exhibits. Sometimes they might be out of order so periodically repair/maintenance is required .

Publication:

Museum does not publish it's journal or catalogue, book or guidebook etc. Though various scholars have published journal and desertation on Jaipur Doll Museum.

Admission:

The museum charges only nominal fees for entry. Timings of museum are from 10:00 AM to 17:00 PM .

Marketing:

In today's world even museums need marketing as modern generation is losing interest in museums which store our culture, heritage and history. For this purpose exhibitions may be organized from time to time and school students may be made to visit the doll museum so children can see our past and tradition of various parts of India under one roof. This will also go a long way in conservation of Doll museum and also ensure its longevity.

Conclusion:

Doll museum holds its important place in all museums in Rajasthan as most unique and beautiful. It makes us remember our forgotten art of doll making. Jaipur is a heritage city and without the Doll museum properly included in its list of must watch there will be a vacant space in every art lover's heart. We all including citizens of this great land along with our government should ensure that Doll museum gets its due place in heritage of Jaipur and more so in its list of illustrious museums.

Reference:

1. Dharma B.L.(1995): A guide to Jaipur and Amber.
2. Devour v.l. (1993-94):Modern display technique ,Jiomvol.xxxxxix-l,mai,New Delhi .
3. Bhawnikatul Chandra (2000):Museum marketing:means of making money, Jim, volxlii,mai New Delhi.
4. Banerjee n.r.(1990) : Museum and Cultureal Heritage in India, Agam Kale Prakashan,Delhi
5. Cornmeal Jams h.(1962): Exhibition Technique, Rain hold Publishing Corporation,New York.



Khushbu Kumawat
Research Scholar,
Department of E.A.F.M.,
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

CLAIMS SETTLEMENT IN LIFE INSURANCE

Life insurance is an emotional business. Unlike in general insurance, there are sentiments involved since it is the question of a human being whether he/she has a critical illness or a severe disability or he/she is dead. (is such a case for the family members). If insurers delays a claim, then the family is unnerved and frustrated because a person is suffering and the insurer has to keep commitment. If we pay then there is a feeling of gratitude, which can be personally seen in many eyes when they receive a cheque. If it is rejected then the family members (in case of death/disability) feel low and dejected because there is a sense of being cheated (though from an insurer's point of view he may be technically and legally correct). In case of an illness, the client feels that the purpose of his/her insurance is lost because the insurer has not paid his/her claim when required most. It cannot be expected of the client to step into the shoes of the insurance to see the correctness or fairness of the settlement . So either way (whether we pay or reject or keep it pending) there is always a very emotional outcome.

The primary role of an insurance company is to settle claims as that is the value add which is provided to the clients. However, this does not mean paying a claims promptly but rather to pay the genuine claims and reject the non genuine claims. Thus the most important aspect to be understood here is the word "Settle". Settling claim does not necessarily mean paying a claim. A claim can and should be rejected if it is not legally payable. If an insurer pays all claims irrespective of the eligibility criteria, then either it will not remain in business or have to increase the rates for other policyholders. By paying improper claims the pool of genuine policy holders is disadvantaged.

Claim settlement is not a straight forward process. The basic premise is to pay all right claims and reject all wrong claims. The most problematic aspect in majority of the cases is that the client doesn't know what he has purchased and what the benefits are. Very few people read the actual policy contract and understand its

requirement and implications, be it a literate class or otherwise. If problems in claim settlement were to be given a rating, then probably casual approach in proposal form filling would be rated at 99 percent. A life insurance proposal form is filled in like credit card application where just the basic address etc. is given and then signed off. Without even pondering over the other fields. Apart from ignorance, many times client does not want to disclose facts and problems. Hence purposely does not disclose information in the proposal form like suffering from illness at the time of the application itself. Smoking? Drinking not disclosed in the proposal form, family history not disclosed correctly etc. India consists of large part of rural areas. Hence, invariably some proportion of the insured clients belong to this rural population. However, doing business in the rural areas is not smooth roads, whether it is net business or claims.

The difficulties encountered are :

1. Illiteracy and lack of understanding of the contract?
2. Premium collection due to poor banking facilities or sometime' inability to bear cost regularly
3. Non-availability of medical facilities and records
4. Cost of doing business in these rural places
5. Information verification

Claims investigations becomes costly, time consuming and difficult affairs. Getting evidence in the rural areas is very difficult Issuance of death certificate by the local panchayats and the doctor is more from a human angle than from the factual angle, due to proximity of relations. Sometimes there are no authentication check: involved in the issuance of such certificates. In some cases, there are delays in notification of claims to the insurer, some times beyond more than six months after the events by which time the trail is very cold It is difficult to unearth frauds in the rural areas due to a small concentration of closed people who are suspicious of any outsiders Snake bites are a relatively common occurrence in the communities and if genuine would represent a proper claim. However, if a person dies from a non-disclosed illness but the body is bitten or is reported to have been bitten by a snake or any other animal then proving or disproving the same is an uphill task. There are claims where the policyholder has taken a number of policies from different insurers. There is a high risk and a big financial underwriting issue with people taking insurance covers from various insurers without disclosing the facts of the existing covers. Hence, sharing claims information is important.

Quality of medical records is another important factor in claims settlement. The developed countries around the world have Government health schemes which require public funding. Along with this go extensive computerized medical histories kept by the doctor's and the Government agencies. This is a critical tool in these countries for the discovery of non disclosures by insurance companies. This does not exist in India where the individual keep the records and not the doctor. The biggest problems in our county' is that we do not have proper medical record system. Hence, getting any medical history is very difficult. To prove non-disclosure of existing ailments, we have to rely on the client only to give his/her medical records. The policyholders or their nominees(in the events of death of the life assured) are insulated well by our judicial system. The clients can approach various forums for enforcing their rights viz. the insurance Ombudsmen, The District Consumer Forum, the State Consumer Forum, the National Consumer Forum or any court etc. in the event of their being not satisfied by the insurer's decisions (of course these facilities are over and above, the option available to the client to apply to the company for a reconsideration of the decision)

Man's economic problems have existed through the ages but today they are more complicated and more difficult to solve than ever before. As a result, life insurance now occupies the foremost space in the economic life of man . It has in reality become a prime necessity, because It provides food, clothing and shelter for the family if the breadwinner dies too soon. and for the breadwinner himself and the family if he lives too long. A Life Insured is a Life Assured : Not that life insurance can avert death. Nor can it prolong the normal duration of life . But it certainly takes away from death its bitter sling and the anxiety of the dying man about the plight of his family when he is gone. Life insurance solves one of the greatest problems of man by building up a provision for an uncertain future . It ensures economic security and domestic peace of mind and tranquility. It makes the family free from financial stresses and strains.

People buy life insurance to get their claims paid on times to fulfill a need. A life assurance office exists to pay claims . It is natural, therefore , that the promptness with which claims are settled should be considered as one of the major criteria for judging the efficiency of working of such an office.

A claim may occur under a policy either by the death of the life assured or by its maturity i.e. When the term of the policy is completed. At the time of the issue of (he policy or during the currency of the policy, the assured is advised to nominate some one to receive the policy moneys in the event of his premature death. He may

also assign the policy in which case all the rights under the policy are transferred to such assignee. In the event of death of the life assured the claim is paid immediately after submission of proof of death, age (if age is not already admitted) and title of the claimant to the policy moneys. In case of maturity claims, the office advises the policyholder well in advance so that necessary papers are completed in time and payment is received by the assured on the date of maturity itself. Generally, there are three types of claims- Maturity, Death and Survival Benefit during the term of the policy.

Claim by Maturity

The office is careful that maturity intimations are sent to claimants two months before the due date. It gives a copy of intimation to its agents. The agents help the policyholders in getting the formalities completed. He gets such claims settled on the day of maturity itself or maximum within a month. The customer-satisfaction brings new business to the agent. A repeat business from the family goes to prove the faith the people have in life insurance, sales efficiency of the agent and the alertness of the office.

Claim by Death

As soon as the intimation of death is received by the office, the office arranges to issue the claim forms to the claimant under advice to the agent. He helps in getting the claim form filled up. The agent service finds a full play at this time when the family is in difficult circumstances. He pursues the matter so that payment is made at the earliest and possibly within one month from the date of death. If the death claim involves investigation, the office ensures that the investigation is completed and the claim paid within a period of three months at the most. Then there are early death claims occurring within two years from the date of risk. In such cases the investigation and collection of facts take a longer time the office takes steps to see that such early claims are settled within six months from the date of receipt of claim paper at the office. In case of death claim where legal matters are involved or it is referred to a court of Law, it may take more time.

Survival Benefit

The intimation enclosing the discharge voucher is sent well in time. On receipt of the policy bond and the discharge certificate duly completed by the policyholder the office checks the latest premium position and ensures that the amount is paid preferably on the due date itself. The issue of intimation for survival benefit claims and their settlement, issue of intimation of ordinary maturity Claims two months be-

fore the date of maturity and issue of claims forms under death claims are to be attended to promptly by the various offices. The office may have the following objectives in the matter of settlement of claims

1. All maturity claims under In-force policies be settled within one month of the date of maturity.
2. Maturity claims under Paid-Up Policies be settled within three months
3. Death claims other than early claims involving investigation, be paid within a maximum period of three months.
4. Early death claims where investigation is necessary, be settled within six months
5. Claims should not remain pending over a year unless legal matters are involved

The basic policy of settling a claim on time is to give the clients the benefits as early as possible; and to serve the purpose for which they bought insurance. It is a redemption of faith which the people have reposed in insurance. The office is very vigilant in this vital aspect of its function. The insurer knows that just as it sold the policy, it is its responsibility to see that the fruits of the same are passed on to the policy holders/beneficiaries.

An insurer will, be judged by the promptness, efficiency and human touch with which the death claims are serviced and settled by him. On receipt of intimation of death, the claims department checks up the premium position of the policy. If the claim arises after the policy has been in force for three years and more and the title is clear the department sends the appropriate claims forms and advance discharges form with a request to return them duly executed along with the policy and proof of death of the assured. Normally proof of death is a certified extract from the municipal register of deaths or a certified extract from the register of local board or village panchayat. In addition, the attending physicians certificate completed by the doctor who certified the death also constitutes proof of death.

Claims official often face difficulties in procuring information from doctors and hospitals regarding treatment received by the deceased policy holder. When the life assured dies leaving no subsisting nomination or assignment under his policy the insurer should call for evidence of legal title to the estate of the deceased such as (a) Probate of last will with will attached (b) letters of administration (c) Succession certificate (d) A certificate issued by the administrator general. Thus any of these documents empowers the holder to collect the claim amount from the insurer in terms of the policy schedule where there is no subsisting assignment or nomination the insurer can insist upon evidence of legal title to the estate of the deceased

assured. However this entails considerable delays and expenses. The heirs of the deceased may also be in need of urgent money. Looking to all these matters the insurer considers payment on the strength of an indemnity bond executed by all the class of heirs in lieu of evidence of legal title subject to some condition. Nomination or assignment help the insurer in the settlement of claim. If a nomination has been executed at the back of the policy but it was sent to insurer for registering, such a nomination is not valid if it is not registered before the death of the life assured. If, however in the proposal from nominee is mention and the same was not included in the policy through oversight the omission can be rectified and claim payment made to the intended nominee. The last stage in the process of life insurance is the settlement of claims. In life insurance, all the policies are to be paid sooner or later, either on maturity of the policy or on the death of assured. This chapter describes the various aspects of settlement of claims.

Meaning of Claim

In the field of insurance, claim is the right exercised by the assured from a contract of insurance. It is the return promise against the premiums paid to the insurer. The claim may be made either on maturity of the policy or in case of death of assured, or on voluntary surrender of policy.

Definitions

1. According to Federation of Insurance Institutes of India, Mumbai, “A claim on the policy is the demand for performance of the promise made by the insurer at the time of making the contract.”

2. In the words of Angell, “The term ‘claim’ may for all the payments made by the company either against any loss, or on maturity or on voluntary surrender of policy.”

Pre-requisites of Claims

The following conditions are to be fulfilled for a claim to be valid:

The insured would have discharged his promise : Before a claim is made on the insurer, the assured must ensure that he has discharged his obligations under the contract, viz., full payment of premiums, presentation of proof of age, etc.

A liability arises against the insurer : It is also necessary to ascertain before the claim is made, whether the risk has been commenced on the part of the insurer and he is bound to pay the claim.

Determination of liability : Under the conditions of different policies, the claim is payable with or without profits, or in some cases by installments. As such, the nature and liability limits should be ascertained before the claim is presented.

The event stated in the policy for the claim has been passed : The claim is eligible to be presented only after the event has occurred; viz., after the maturity of the policy or on death, or accident, etc.

Whether the claimant has the authority to present the claim : The claim should be presented by a person who has the authority to do so.

Classification of Claims

The claims may be classified into two, in respect of life insurance.

(I) Maturity claims, and

(II) Death claims

Reference

1. Mishra, M.N., Insurance principles and practice, S. Chand and Company, New Delhi, 2004
2. Mc Gill, Dam, M., Life Insurance, Publisher Richard D. Irwin Inc., Homewood, 1959
3. Kutty, Shashidharan K., Managing Life Insurance, Prentic Hall of India, New Delhi, 2008
4. Ferrell, O.C. and Hartline, Michael D., Marketing stragegy, Indian edition, South-Western Publisher, Noida, 2007
5. Gupta, P.K., Insurance and Risk Management, Himalaya Publishing House, New Delhi, 2008
6. IRDA Journal, Hyderabad, April-2008
7. Ethics - A Hand Book for Insurance Agents and other Financial Services Professionals, Aberdeen, W., 2006
8. Piercy, Nigel F. and Lane, Nikala, Strategic Customer Management, Oxford University, Press, New York.



Dr. Shobha Chaturvedi
Assistant Professor,
Deppt. of ABST,
Agrawal P.G. College, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 2, Pt. B
Sr. 4, 2013
ISSN : 2277-419X

CORPORATE PLANNING AND ENVIRONMENT ANALYSIS

Corporate planning is the planning of the organisation as a whole. It aims at setting over all organisational objectives and formulating strategies to achieve these objectives. Its purpose is to identify new areas of business in a competitive environment and provide direction to the organisation to achieve its objectives. Corporate planning is sometimes called as strategic planning or comprehensive planning.

Meaning and Definitions:

Generally speaking, corporate planning is the planning of the organisation as a whole. It involves the determination of objectives of the organisation and the formulation of strategies and action plans to achieve them in the light of the probable changes in the environment. A few definitions of corporate planning are as follows:

According to David Hussey, corporate planning is “the process of developing objectives for the corporation and its component parts, evolving alternative strategies to achieve these objectives and doing this against a background of systematic appraisal of internal strengths and weaknesses and external environmental changes; the process of translating strategies into detailed operational plans and seeing that these plans are carried out.”

In the words of G.A. Steiner, “Corporate planning is the process of determining the major objectives of an organisation and policies and strategies that will govern the acquisition, use and disposition of resources to achieve these objectives.”

According to R.G. Anderson, corporate planning may be defined as ‘the systematic preparation of forward-looking strategic plans, defining the objectives to be pursued in the long, medium and short-term within the framework of corporate policy established by the board of directors for the business as a whole.’”

Thus, corporate planning is the process of determination of objectives of the organisation as a whole and formulation of strategies and action plans to achieve the

objectives in the light of strengths and weaknesses of the organisation and probable changes in its environment. Corporate planning is sensitive also called as 'Comprehensive planning, 'systematic planning', long-range planning, 'strategic planning.' Strategic, corporate and long-range planning-it may be noted that the term 'corporate planning' is rarely found in the modern management literature. In these days, term 'strategic planning' is most widely used. Strategic planning is considered to be a wider term than the corporate planning. However, both are closely linked because corporate planning also includes formulation of strategies. Some modern writers, therefore, do not distinguish between the two terms and consider them to be synonymous for all practical purposes.

Sometimes, corporate planning is equated with long-term planning and both are considered to be synonymous. In fact, corporate planning includes long-range as well as short-range planning. However, it should be noted that all corporate plans are definitely long-range plans but all long-range plans need not necessarily be corporate plans.

Characteristics/Nature:

The following characteristics/features of corporate planning that highlight its nature :

1. Formal process - corporate planning is a formal process. It so because it requires determination of objectives and formulation of strategies, plans and policies on the basis of formal documents, information and facts.

2. Systematic process - It is a systematic process because 'it is a whole planning process in a logical and sequential manner. It consists of a sequence of steps, e-ff-, analysing internal and external environment, setting corporate objectives, formulating strategies and plans and action plans, executing them and follow-up, and feedback.

3. Intellectual and rational process — It is an intellectual and a rational process. It requires the use of creativity, imagination, foresight and judgement.

4. Continuous process — Corporate planning is a continuous process. It goes on throughout the corporate life. It requires continuous review and feedback in the light of the changed internal and external environmental factors.

5. Long-term perspective - corporate planning has a long-term perspective. It goes beyond five years and in some cases it may extend beyond 15-20 years. However) short-range operating plans are formulated to execute the corporate plans.

6. Comprehensive and integrated - It is comprehensive because it deals with all types of plans. They include long and short-range, corporate, divisional, departmental functional, strategic and operational plans. It is integrated because all divisional and departmental/functional planning is based on corporate planning.

7. Future-oriented-Corporate - planning is future oriented. It deals with the futurity of current decisions. This means that it looks at the chain of cause-and-effect relations over time of every decision that a manager is going to make.

8. Consideration of varied factors - A variety of internal and external factors are considered in corporate planning. It considers strengths and weaknesses internal to the organisation. It also considers threats and opportunities in the external environment. It considers the world trends in business, the technological, the markets, the Government regulations and policies, the competitors etc.

In addition, the characteristics of planning discussed in the preceding chapter are also the features of corporate-

NEED FOR/IMPORTANCE OF CORPORATE PLANNING

The need for and importance of corporate planning is increasing recognised for the following reasons/factors :

1. Increasing size of business - During the past several years, the size of business has been increasing at a rapid speed. Even many small firms and companies have multinational operations. Hence, the need for corporate planning is being felt by all such business organisations.

2. Complexities of business -in recent years, business operations have become complex and complicated. The performance of such activities require services of many individuals, groups, and institutions. This requires comprehensive corporate planning.

3. Increasing competition — The competition in business is increasing day-after-day. It has squeezed return on investment. All the more, it is threatening the very existence of the organisations. Sound corporate planning go a long way in dealing with such a situation.

4. Environmental threats and Opportunities- Corporate planning is gaining increasing significance because of the environmental threats and opportunities. Competition, technological developments, economic liberalisation and globalisation, changing consumer preferences, etc. are providing threats as well as opportunities to business organisations. In order to deal with the threats and exploit opportunities, corporate plays a crucial role.

5. Limited resources-Modern business organisations are to work with limited resources. Useful human, physical, financial and informational resources are in limited availability. Some resources such as coal, petrol, diesel, electric power, transport facilities, raw-materials etc. are very limited in supply. Business organisations need to make effective corporate planning to use limited resources in the most efficient way.

6. Fluctuations—Change is a way of life but unexpected and unanticipated changes cause a lot of problems for business managers. Moreover, fluctuating situation is even more dangerous. Corporate planning may be useful in dealing with many unexpected and unanticipated events. In addition, corporate planning is important for all those reasons stated for importance of planning in the preceding Chapter.

FACTORS AFFECTING CORPORATE PLANNING/PLANS

Following are the main factors that affect or determine a corporate planning or plans :

1. Size of the firm -Size of the firm is one of the crucial factors that affect corporate planning. There is a marking difference in the planning system in large and small firms. A large firm can afford more time and money for corporate planning and can investigate more thoroughly various internal and external environmental factors. In such firms, planning process is mature and formal and it focusses on strategic planning. On the other hand, in small firms, the focus of corporate planning is on innovation and the task of strategic planning is left to the top executives.

2. Ownership pattern -ownership pattern greatly affects the corporate planning. In professionally managed companies the corporate planning is formal, depends on analytical methods, wide participation and formal set up. On the other hand, in family owned companies the process of corporate planning is informal centralised and less interactive. Such companies largely depend upon intuition, common sense, experience and entrepreneurial skills. Similarly, planning process differs between domestic and multinational companies (foreign companies in India). Multinational companies are pace setters in the field of formal and iterative planning. Likewise planning in public sector companies is less mature than the corporate planning in private sector.

3. Management philosophy —The philosophy of management exercises a great influence on plan formulation. In autocratic form of management, the plan formulation and goal setting is the) of top management which formulates plans without consulting subordinates whereas subordinates carry out the plans formulated by

their superiors and they work for their accomplishment. On the other hand, plan formulation, under democratic management, is an iterative process. There is wide participation of subordinates in goal setting and strategic plan formulation.

4. Planning skills -skills of the persons engaged in planning function do affect corporate planning process and quality of plans. In a company which is regularly engaged in corporate planning, a separate planning cell or department Corporate is created headed by a skilled and experienced person. This cell is assigned the task of making forecasts, collecting and analysing data reviewing the plans of various departments prepared by lower level management and advising the chief executive on the viability and adequacy of the plan. It also coordinates the planning efforts of divisional or functional groups. In other cases, where there is no such specialised cell, planning is the process of negotiations between departmental divisional heads and the chief executive.

5. Degree of diversification -in a single product single unit company, the corporate planning process can be a centralised process because there is no problem in collecting the necessary data required for planning. But where the company is a multi-product and multi-unit company, participative planning is necessary, because participation of various unit heads is essential in plan formulation. In such a case, plan data has to be collected from the operating units and plan formulation is dependent on information supplied by them. Because only product/unit managers are conversant with the interactive value of products in terms of price, market segments, competitiveness or complementarity etc.

6. Complexity of business —In a complex business, there are so many variables interacting each other. Therefore, it is very difficult to project correct estimates and make correct forecasts because it requires detailed analysis of different factors. In order to deal with such complexities, the corporate planner may require models of understanding and explaining the interactions among complex variables. For this purpose continuous interaction and feedback from operating managers may be necessary on current operations and problems.

7. Market dynamics -if the market for the company's products or services is not much fluctuating, the demand for company's products or services can be predicted with great accuracy. Therefore, plan formulation comparatively becomes a simple task. If, on the other hand, the market for company's product or service is fluctuating and uncertain, prediction of correct future demand becomes more difficult. Consequently, the corporate planning becomes a complex exercise. Accurate prediction of future demand in such a complex market requires much efforts and analysis. Thus, the dynamics of market plays an important role in plan formulation.

8. Nature of demand -where demand of the product of the company is direct in case of consumer goods items), the demand or sales forecasting is comparatively easy. It is so because, the company is in direct touch with the customers and it can forecast the future demand on the basis of customers, opinions, suggestions and complaints, consumer price index, analysis of income groups etc. On the other hand, company manufacturing and supplying intermediary goods, its demand is derived demand. In such a case, planning process becomes more complex. It becomes a multi-stage exercise because in such a case first the demand for ultimate product would have to be forecasted and then demand for intermediary industry is to be forecasted.

9. Nature of economic system and policy-The nature of economic system and policy has a great bearing on corporate planning. In a capitalist or mixed economy with liberal laws and policies, corporate planning can be done with great certainty. On the other hand, in a socialist or communist economy, corporate planning cannot be effectively done.

10, Technological change—Technological change also affects the corporate planning. Where the pace of technological change is very fast, corporate planning cannot be done accurately.

11. Time lag -when the time lag between plan formulation and its complementation is short or nominal, planning is very simple. It is so because in such a case, there is little chance of any change in the variables affecting the outcome of the decision. If the time lag between the two is very long. Plan formulation becomes complicated because of the possibility of change in various factors considered at the time of plan formulation. There are chances of reviewing and revising the decisions before it is fully carried out.

EIWIWONMENT ANALYSIS

Every business organisation works in its environment. It is a sub-system of the whole business environment. The business environment is the set of external conditions-economic, social, political, legal, institutional-in which business operations are conducted. It consists of all those things and forces to which a business organisation is exposed and by which it may be influenced directly and indirectly or details refer the Chapter entitled 'organisational invironment'. Environment analysis is the process of studying the environment and their impact on the organisation. It is a process of studying and identifying pportunities and threats to a business organisation in its invironment. It involves systematic collection and processing if data, facts and information about the environment.

FACTORS AFFECTING ENVIRONMENT ANALYSIS

Environment analysis is influenced by a large number of factors. A few such factors are as follows :

1. Size of business -Large organisations are interested in taking up new and new ventures and are exposed to greater risk. Therefore, they interact more frequently with the various environmental forces and require an intensive environmental scanning or analysis. The analysis is necessary to respond to various laws applicable to big enterprises. Small organisations are not influenced by such laws.

2. Nature of business -Environmental analysis and diagnosis depend on the present and intended type of activities of the organisation. An organisation which has no intention to expand its business activity requires little scanning of the environment. On the other hand, if an organisation intends to be a diversified or conglomerate entity. It will require broad scanning of environment.

3. Age of the enterprise - An old organisation with experienced management requires limited environmental scanning because it has a lot of information in store. It knows what and how much information is to be collected and how to reckon the environment. But a new organisation has no such information and the management has no such experience. Therefore, it requires a comprehensive analysis of environmental forces.

4. Geographical coverage -The area of operation of an organisation also influences its environmental scanning. A local organisation having its business activities only in particular region, need not analyse national or international environment. On the other hand, a multinational organisation has to appraise national as well as international environment.

5. Calibre of management -Professionally qualified managers rely more on environmental scanning than less qualified managers. One of the reasons why multinationals carry out a systematic and comprehensive study of environment is their rich technical knowledge and managerial expertise.

6. Managerial attitude -Attitude, belief and style of top management also determine the scope and significance of environmental analysis. Dynamic and enterprising chief executives with an open-mind and global perspective are in search for environmental opportunities. Similarly, forward looking managers attempt to predict the changes in the environment and to act before a threat occurs. Aggressive managers make strategic change a way of life and periodically review their strategy irrespective of performance.

7. Volatility of environment - A more intensive environmental search becomes necessary when the environment is turbulent and heterogeneous. But if the environment is homogenous and relatively stable, a limited search is adequate.

8. Influence of the enterprise -The more powerful enterprise is in relation to its environment, the lower is its need for scanning of the enterprise. An enterprise of monopolistic character need not analyse competitive environment. Similarly enterprises not dependent on fiscal and financial facilities of the government need not analyse the political environment.

Reference:

1. Kandamuru Seshaiyah (1999), "Human Resource Development – A Conceptual Frame", Managing Human Resource by Subash Garg and S. C. Jain, (Arihant Publishers, Jaipur).
2. Mathew, E.T. (1980), "University Finances in India : A Case Study of Kerala University" Sterling Publishers, New Delhi.
3. Narasimhan M.(1991), Narasimahan Committee Report on the Financial System, 1991, Standard Book Co., New Delhi.
4. Pandey, I.M., Break even Analysis with Non-linear Revenue and Cost function, Business Analyst, Vol. 7, No. 1, July -December, 1999
5. The Valuation of Growth Stocks, the Investment Opportunity Approach, Journal of Finance, 21, March, 2006
6. Mumeiy, Gelen A., Theory of Financial Structure, New York, Holt, Rinechart and Winston, 2006
7. Van Horne, James C., Financial Management and Policy, New Delhi, Prentice Hall of India, 1999
8. Buchan, Joseph and Ernest Koenigsberg, Scientific Inventory Management, Prentice Hall, Inc., 2006

